UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186478
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 634 V99 S   Accession No. G.H. 2853

Author व्यास, नारायण कुलीचन्द

Title साग-भाज की खेती १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

सत्साहित्य प्रकाशन

साग-भाजी की खेती

लेखक

डा० नारायण दुलीचंद व्यास

एल० ए-जी०, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०

पुस्तक भेंट के निमित्त है

१९६२

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

दसवीं बार : १९६२
मूल्य
साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
हीरा आर्ट प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

कृषि तथा अन्य ग्रामोपयोगी साहित्य की मांग हिन्दी में उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अंग्रेजी में ऐसा साहित्य काफी परिमाण में मिल जाता है; लेकिन हिन्दी में इसका एक प्रकार से अभाव-सा था। उसे अनुभव करके उसकी पूर्ति के लिए 'मण्डल' ने अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। ये पुस्तकें बहुत पसंद की गई हैं और सामान्य पाठकों को भी उनसे बहुत लाभ पहुंचा है।

कृषि-शास्त्र के सुप्रसिद्ध लेखक डा० नारायण दुलीचंद व्यास की इस पुस्तक का दसवां संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। विषय की उपयोगिता और पुस्तक की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से भी किया जा सकता है कि प्रत्येक संस्करण में नई-नई बातें जोड़ी गई हैं। निश्चित रूप से कह सकते हैं कि पुस्तक का वर्त्तमान कलेवर साग-भाजी की खेती करनेवाले अथवा इस विषय में रुचि रखनेवाले प्रत्येक पाठक के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा। हमारी राय में यदि ऐसी पुस्तकें राष्ट्रीय विस्तार खंड के अधिकारियों द्वारा अपने ग्राम-सेवकों को दी जायं तो जनता का बहुत हित हो सकता है।

हमें विश्वास है कि पाठक पुस्तक के इस संस्करण को भी चाव से अपनायेंगे।

—मंत्री

प्रस्तावना

मनुष्यों के भोजन में फल और तरकारी का होना प्राचीन काल से ही अनिवार्य माना गया है। वर्तमान समय में इसका महत्त्व और भी बढ़ता जा रहा है। मनुष्य चाहे बालक हो या वृद्ध, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, सबके आहार में एक प्रमाणित परिमाण में तरकारियां अवश्य होनी चाहिए। इनके उपयोग से पाचन-शक्ति तीव्र होती है, मनुष्य स्वस्थ बने रहते हैं, व्याधियां निकट नहीं आने पातीं और कई तरकारियां तो ऐसी हैं जिनके सेवनमात्र से कई प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं।

इनकी उपयोगिता की वृद्धि देख कई कृषकों का ध्यान इनकी खेती की ओर आकृष्ट हुआ है। इनकी खेती ही बहुतों के जीवन का आधार है। बहुत-से शिक्षित नवयुवक भी जीवन-संग्राम के इस युग में इस व्यवसाय को अपना रहे हैं और बहुत-से अपनाना चाहते हैं, परंतु उन्हें ऐसी संचित सामग्री नहीं मिलती कि जिससे वे चाहें उस प्रकार की तरकारी की खेती भलीभांति कर सकें। ऐसे सज्जनों के हितार्थ ही इस पुस्तक के लिखने का प्रयत्न किया गया है। यदि इससे पाठकों को किंचित लाभ पहुंचा तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

पाठकों से यह भी निवेदन है कि कृपा करके वे एक बार इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ लें और यदि कहीं कुछ त्रुटियां रह गई हों तो लेखक को उनकी सूचना दे दें, जिससे यदि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण देखने का सौभाग्य प्राप्त हो तो उसमें वे सुधार ली जायं।

इसके प्रकाशन की आज्ञा प्रदान करने के लिए पूसा-इंस्टीट्यूट के तत्कालीन डायरेक्टर डा० बी० ए० कीन, डी० एस-सी० तथा भारत-सरकार के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

इसकी तैयारी में मुझे कई मित्रों से सहायता मिली है जिनमें से श्रीमान्

हरदयालसिंहजी श्रीवास्तव, बी० एस-सी० विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

आवरण-पृष्ठ के ब्लाक का चित्र, चित्रकार, श्री पी० नारायणजी की कृपा का फल है और ऐसी पुस्तक के प्रकाशन की आवश्यकता की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय मेरे मित्र शंकरराव जोशी (डिप० एजी०, एफ० आर० एच० एस०) को है।

४–५–१९३३

आठवां संस्करण—वर्तमान समय में कृषि-सुधार की ओर वैज्ञानिकों तथा सरकार का ध्यान बहुत लगा हुआ है। सरकार की ओर से कृषि-विज्ञान-शालाओं को आर्थिक सहायता अच्छी मिल रही है, जिससे इस विषय की खोज भी दिनोंदिन आगे बढ़ती जा रही है। ऐसी खोज से हमारे पाठक लाभ उठा सकें, इससिए जैसा कि चाहिए, प्रत्येक संस्करण में नई खोजों का समावेश होता रहा। जहां पाठकों की ओर से कोई सुझाव आये उनका भी समावेश यथासमय किया गया। आशा है यह आठवां संस्करण पाठकों की योग्य सेवा कर सकेगा।

प्राय: सभी हिन्दी भाषा-भाषी प्रांतों के शिक्षा-विभागों ने इसे अपनाया है, इसलिए लेखक उनका विशेष आभारी है। इसी भांति प्रांतीय कृषि-विभागों तथा अन्य संस्थाएं, जैसे हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा विद्यापीठों ने इसे अपने पाठ्यक्रम में रखा, उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

नवां-दसवां संस्करण—संशोधित रूप में नवां संस्करण पाठकों को अर्पित करने के बाद यह दसवां संस्करण प्रस्तुत है।

—नारायण बुलीचन्द व्यास

विषय-सूची

प्रकरण	विषय	पृष्ठ

१. खेती के साधन ११

साग-भाजियों का चुनाव—११, स्थान का चुनाव—१२, क्षेत्रफल—१३, पूंजी—१३, मकान, पशु और अन्य वस्तुएं—१३, कुआं—१४, पशु—१४, स्थायी मजदूर या नौकर—१४, कृषि के औजार तथा अन्य वस्तुएं—१४।

२. भूमि की जाति और उसका सुधार १६

जमीन की जुताई—१८।

३. खाद १९

खाद के उपयोगी तत्व और तरकारियों पर भिन्न-भिन्न तत्वों का असर—२०, **कार्बनिक खाद** की नामावली—२१, **अकार्बनिक खाद की नामावली व तत्वों की मात्रा**—२२, खाद की मात्रा—२३, **नाइट्रोजन-प्रधान कार्बनिक खाद**, गोबर का खाद—२४, गोबर के खाद की मात्रा—२६, मनुष्यों का मल-मूत्र—२६, पक्षियों की विष्ठा का खाद—२७, मछली का खाद—२८, खली का खाद—२८, खलियों को सड़ाने की रीति—२८, खलियों के खाद की मात्रा—२९, हरा खाद—३०, हरे या सूखे पत्तों का खाद—३१, शहर का कूड़ा-कर्कट—३३, शहर की मोरियों का पानी—३३, **फासफोरस-प्रधान कार्बनिक खाद**—३४, हड्डियां—३४, पक्षियों की विष्ठा—३५, **पोटाश-प्रधान कार्बनिक खाद**—३५, **अकार्बनिक खाद**, नाइट्रोजन-पूर्ता—३६, फासफोरस-पूर्ता—३६, पोटाश-पूर्ता—३७, चूने का खाद—३८।

४. बीज और बोआई ३९

बीज का चुनाव—४०, बीज बोना—४२, नर्सरी—४२, नर्सरी बनाने की रीति—४२, पौधों के रोपने का समय और रीति—४४, प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता—४५, पौधों की दूरी और संख्या प्रति

एकड़—४६, संख्या बीज प्रति छटांक और आवश्यक बीज प्रति एकड़—४८।

५. निंदाई, निराई या सोहनी ५२

निंदाई का समय और उसकी रीति—५२, निंदाई के औजार—५३।

६. सिंचाई ५३

सिंचाई के लिए जल की प्राप्ति—५४, पानी उठाने के उपचार—५५, **मनुष्य की शक्ति से चलाये जानेवाले यंत्र** : टोकरी—५५, डोन—५६, ढेकुली—५६, चेनपंप—५६, सक्शन या फोर्स पंप—५७, किफायत रहट—५७, **पशु-शक्ति से चलाये जानेवाले यंत्र**—रहट—५८, मोट या चरस—५८, रामचंद्र वाटर लिफ्ट—५९, **वायु, विद्युत, वाष्प या तेल की शक्ति से चलाये जानेवाले यंत्र** : पवन चक्की—६०, पंप, एंजिन—६०, पानी की गणना—६०, सिंचाई की रीति—६१, पानी कब और कितना देना चाहिए—६३।

७. फसल की तैयारी तथा हेर-फेर ६३

फसल का हेर-फेर—६४।

८. साग-भाजी के शत्रु और उनसे बचाने के उपाय ... ६५

शत्रु की जातियां—६५, रक्षा के साधारण नियम—६६, कीट से होनेवाली व्याधियां—६८, हानिकारक कीट की मुख्य जातियां—७१, मुख्य-मुख्य तरकारियों को हानि पहुंचानेवाले कीट—७४ आलू के कीट—७५, शकरकंद के कीट—७७, पत्ते खानेवाले कीट—७७, प्याज, लहसुन आदि को हानि पहुंचानेवाले कीट—७८, पत्ता, डंडी और फूलवाली फसलों को हानि पहुंचानेवाले कीट—७८, फलीदार पौधों को हानि पहुंचानेवाले कीट—८०, फलवाली तरकारियों को हानि पहुंचानेवाले कीट—८१, कीटनाशक उपचार और औषधियां—८२, मुख्य-मुख्य औषधियां—८३, सूक्ष्म जंतुओं द्वारा होनेवाली व्याधियां—८६, औषधियां—८७, पाला—८८।

९. साग-भाजियों का विक्रय ८९
बिक्री की रीतियां—९०, सागभाजियों को संभालकर रखने की विधि—९२, सागभाजी को सुखाकर रखना—९४।

१०. साग-भाजियों का वर्गीकरण ९९
चौथे वर्गानुसार साग-भाजियों की सूची—१०१।

११. वे साग-भाजी जिनकी जड़ें काम में आती हैं ... १०३
गाजर—१०३, मूली—१०५, शलजम—१०८, चुकंदर—१०९ पारस्निप—१११, साल्सीफाई—११२, रूटाबागा—११२, स्किरेट —११३।

१२. वे साग-भाजी जिनके धड़ या शाखाएं काम में आती हैं ... ११३
आलू—११३, शकरकंद अलुआ—११९, टेपियोका—१२२; अर्वी, घुइयां—१२४, गराडू फर—१२५, सुथनी—१२७, सूरन, ओल—१२८, अरारूट—१२९; कच्चू—१३०, हल्दी—१३२ अदरक —१३४, एसपेरेगस—१३५, गांठ गोभी—१३८।

१३. वे साग-भाजी जिनके पत्ते और डंडियां काम में आती हैं १३९
प्याज—१३९, लहसुन—१४२, लीक—१४४, शेलाट,—१४५, शाइव—१४५, सीवाल—१४५, सलाद की फसलें : पार्सली—१४५, सेलरी—१४६, लेट्यूस—१४७, काशनी—१४८, शेरविल—१४९, क्रेस—१५०, कार्न सलाद—१५१, एंडाईव—१५१, कार्डून १५२, रूबर्ब–१५३, चार्ड—१५३, ओरेक—१५४, कोलार्डस—१५५, डेंडेलियन—१५५, बंधगोभी—१५५, चीनी गोभी—१५८, ब्रसेल्स स्प्राउट्स—१५८, केल—१५९, मेथी—१६०, खिसारी—१६१, कुसुम—१६२, सरसों—१६३, सफेद सरसों—१६४, राई—१६५, पालक—१६५, खट्टा पालक—१६६, बथुआ—१६६, साग—१६७, चौलाई—१६८, राजगिरा—१६९,

लुणिया या कुलफा साग—१६९, खसखस—१७०, पोई—१७१, सौंफ—१७२, बड़ी सौंफ—१७३, धनिया—१७३, पुदीना—१७४।

१४. वे साग-भाजी जिनके फूल की डंडी या फूल काम में आते हैं १७६
फूल गोभी—१७६, ब्रोकोली—१७८; ग्लोव आर्टिचोक—१७८, पटवा—१७९।

१५. वे साग-भाजी जिनके फल काम में आते हैं ... १८०
परवल—१८०, टमाटर—१८२, बैंगन—१८५, भिंडी—१८७, मिर्च—१८८, मोगरी—१९०, कद्दू, कदीमा, काशीफल—१९१, विलायती कद्दू—१९२, स्क्वाश—१९२, भूरा कद्दू, शिष कुम्हड़ा, पेठा—१९३, लौकी, आल, कदुआ—१९४, चिचड़ा—१९५, तरोई, झिगुनी—१९६, घिया तरोई, घिवरा—१९८, करेला—१९८, उच्चे—१९९, कुंदरू—१९९, चथैल, किंकोड़ा—२००, फूट—२०१, खीरा, ककड़ी—२०१, गोल खीरा—२०३, रेती ककड़ी, रेंता—२०३, खरबूजा—२०४, तरबूज कलिंगड़ा, हिंदवाना—२०६, दिलपसंद, टिंडा—२०८।

१६. दलहन वर्ग की साग-भाजी २०९
चंवली, बरबटी—२१०, ग्वार—२११, सेम, बालोर—२१३, चारकोनी सेम—२१४, ब्राडबीन—२१४, फ्रेंचबीन—२१५, स्कारलेट रनरबीन—२१६, लाईमा बीन—२१६, रहिरया सेम—२१७, उदासेम—२१७, कमच—२१७, मटर—२१८, किराओ—२२०, चना २२०, सॉयबीन—२२१, तूवर अरहर—२२२।

१७. अन्य साग-भाजी और मसाले २२४
मकई, मक्का—२२४, सिंघाड़ा—२२५, मशरूम, छत्रक, धरती फोड़, धरती फूल—२२६, केला—२२७, पपीता, पपैया, अरैण्ड ककड़ी—२२९, सहजन—२१०, सफेद जीरा—२३१, स्याह जीरा—

२३२, कलौंजी, मंगरैला—२३२, सोआ—२३३, अजवायन—२३४ लौंग—२३४, काली मिर्च—२३५, दालचीनी—२३६, तेजपात —२३७, छोटी इलायची—२३७, बड़ी इलायची—२३८, सिसरी —२३९, सेलेरिएक—२३९, लेवेंडर—२३९, सेवारी—२३९, उदो—२४०, ओका—२४०, ओका क्वीना—२४०, सोलेनम कामरसोनी—२४१ ।

परिशिष्ट १. वनस्पति-शास्त्रानुसार साग-भाजी का वर्गीकरण २४२

,, २. भिन्न-भिन्न राज्यों में मुख्य-मुख्य साग-भाजी बोने के समय का नक्शा २४४

,, ३. साग-भाजियों में रासायनिक पदार्थों की मात्रा २५०

,, ४. साग-भाजी और खाद्योज (विटामिस) ... २५६

,, ५. मीट्रिक प्रणाली में परिवर्तन की सरल तालिकाएं २६१

●

साग-भाजी की खेती

: १ :

खेती के साधन

साग-भाजियों का चुनाव—पहले भारतवर्ष में भिंडी, लौकी, कुम्हड़ा, तरोई, खीरा, पालक, मेथी, सेम, मटर, बैंगन, प्याज, शकरकंद आदि साग-भाजियां होती थीं; परन्तु ज्यों-ज्यों विदेशियों से हमारा संसर्ग बढ़ता गया, भांति-भांति की नई साग-भाजियों का आगमन भारतवर्षमें होता गया। फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी, मूली, शलजम, गाजर, आलू, टमाटर आदि का आगमन बाद में ही हुआ है। भारत में इन नई तरकारियों का सत्कार ऐसा हुआ कि व्यवसायियों का लक्ष्य इन्हींकी खेती की ओर विशेष होने लगा। पुरानी साग-भाजियां, जिनकी खेती पहले नगरों के निकट बहुतायत से हुआ करती थी, अब उन्हें ग्रामों में ही कहीं-कहीं स्थान मिल जाता है, नई साग-भाजियों का जमाव अब ऐसा हो गया है कि ग्रामों में इनकी खेती अच्छी तरह से होने लगी है।

गुणावगुण के हिसाब से देखा जाय तो कुछको छोड़कर नई साग-भाजियां बहुधा भारी अर्थात् देर से पचनेवाली होती हैं और पुरानी शीघ्र पच जाती हैं। ठंडे देशों या प्रांतों में गरिष्ठ साग-भाजियों का उपयोग अच्छा होता है, परंतु गर्म देशों में शीघ्र पचनेवालियों का ही उपयोग अधिक करना चाहिए। जहांतक बने, ऋतु के अनुसार दोनों का उपयोग ठीक होता है।

खेती की रीति का विचार किया जाय तो नई और पुरानी साग-भाजियों में निम्नलिखित विभिन्नताएं पाई जाती हैं। पुरानी बहुधा वर्षा

ऋतु बोई जाती हैं, इसलिए वर्षा ऋतु के बाद थोड़ी-सी सिंचाई से काम चल सकता है। इनके लिए खाद भी कम देना होता है। इनके विपरीत नई साग-भाजियों में खाद विशेष देना पड़ता है और सिंचाई भी अधिक करनी पड़ती है। महंगी बिकने के कारण पुरानी साग-भाजियों की अपेक्षा नई साग-भाजियों से प्रति एकड़ लाभ विशेष होता है।

साग-भाजी की खेती के लिए चाहे पुरानी साग-भाजियां चुनी जायं या नई, लाभ-हानि अधिकतर कृषक की योग्यता पर निर्भर है। जिन कृषकों का मुख्य व्यवसाय यही हो उन्हें दोनों प्रकारकी साग-भाजियां लगानी चाहिए।

साग-भाजी की खेती करनेवाले तीन प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं: एक वे रईस हैं जिनके खेतों या बगीचों में निजी उपयोग के लिए ही साग-भाजियां पैदा की जाती हैं। उनके यहां व्यय की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। वहां तो बगीचों की सुंदरता और वस्तुओं के उत्तमोत्तम होने का ही ध्यान रखा जाता है। दूसरे वे साधारण कृषक हैं जो अपने घरों के निकट या खेतों में इधर-उधर थोड़ी-बहुत साग-भाजियां लगा देते हैं, जिनमें से यदि निजी उपयोग के बाद कुछ बचीं तो बेच दी जाती हैं,और तीसरे वे मनुष्य हैं जिनका जीवन साग-भाजी की खेती पर ही निर्भर है। इन्हें आय-व्यय का बहुत विचार करना पड़ता है। स्थान का चुनाव, भूमि की जुताई, खाद, सिंचाई, फसल की तैयारी और बिक्री आदि सब कार्यों की ओर उन्हें बहुत ध्यान देना पड़ता है। उनका लक्ष्य यह होना चाहिए कि कम-से-कम व्यय से अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके। वैसे तो यह पुस्तक तीनों प्रकार की खेती करनेवालों के लिए उपयोगी है; परंतु लिखते समय इसी व्यवसाय पर निर्भर रहनेवालों के लक्ष्य की ओर विशेष ध्यान रखा गया है।

स्थान का चुनाव—वर्तमान समय में साग-भाजियों का व्यवसाय ग्रामों की अपेक्षा नगरों में अधिक होता है। इसलिए जहांतक हो सके जमीन नगरों के निकट ही प्राप्त करनी चाहिए। यदि नगरों के निकट न मिले अथवा महंगी मिले तो ऐसा स्थान चुनना चाहिए जो रेलवे स्टेशन के

निकट हो या सड़कों के किनारे हो कि जिससे बहुत जल्दी और आसानी से माल बाजार में पहुंचाया जा सके। सागभाजी की खेती में सिचाई की विशेष आवश्यकता होती है, इसलिए स्थान को चुनते समय यह प्रयत्न करना चाहिए कि जिसमें नहर से जल प्राप्त किया जा सके। यदि ऐसा संभव न हो तो ऐसी भूमि चुननी चाहिए जिसमें कुओं से काम चलाया जा सके। नगरों की निकटता और सिचाई की सुविधा के साथ-साथ यह भी देखना चाहिए कि मजदूरों के मिलने में कठिनाई तो नहीं होगी, क्योंकि इस खेती में समय-समय पर मजदूरों की आवश्यकता अधिक पड़ती है।

क्षेत्रफल—किसी भी व्यवसाय या जीविका के साधन के चुनाव से प्रथम यह सोचना पड़ता है कि किन-किन व्यवसायों से हमारी आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सकती है और भविष्य में उनकी उन्नति की क्या आशा है। इसी भांति साग-भाजी की खेतीवालों को भी पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए मासिक आय कितनी होनी चाहिए। साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि लगभग २००) की मासिक आय के लिए कम-से-कम दस एकड़ भूमि अवश्य होनी चाहिए जिसमें से मकानात, नर्सरी इत्यादि में आधा एकड़ और शेष आधा एकड़ के करीब सड़कों में लग जायगी।

पूंजी—आवश्यकीय पूंजी का अनुमान स्थानीय स्थितियों के आधार पर किया जा सकता है। जमीन का मूल्य या भूमि-कर, पशुओं का मूल्य, मजदूरी की दर तथा कृषि के औजारों की कीमत सब स्थानों पर एक-सी नहीं होती, इसलिए यहाँ दस एकड़ की साग-भाजी की खेती के लिए मकानात, कृषि के औजार, पशु तथा मजदूर और आवश्यकीय वस्तुओं की सूची दे देना ही ठीक होगा। इस सूची में स्थानीय दर को ध्यान में रखकर पाठक स्वयं अनुमान कर करते हैं।

मकान, पशु और अन्य वस्तुएं—प्रत्येक साग-भाजी की खेती के स्थान (फार्म) पर दो-एक मकान अवश्य होने चाहिए। एक मकान ऐसा हो, जिसमें पशु, खेती के औजार, खाद तथा बैलों के खाने का दाना रखा जा

सके। उसके निकट ही एक ऐसा मकान होना चाहिए जिसके एक हिस्से में चौकीदार रह सके और दूसरे में बीज और साग-भाजी आदि रखने का प्रबन्ध हो। दोनों ही मकान फूस के बनाये जा सकते हैं; परन्तु दूसरे को कच्चा-पक्का बना लेना अच्छा होता है।

कुआं—जहां सिंचाई नहर से हो वहां सिर्फ पीने का जल प्राप्त करने के लिए एक छोटा कुआं या नलकूप (ट्यूब वैल) होना चाहिए। परन्तु यदि कहीं निकट से ही स्वच्छ जल प्राप्त किया जा सके तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती। नहर के अभाव में दस एकड़ भूमि की सिंचाई के लिए एक कुआं ऐसा होना चाहिए, जिसका पानी दिन भर दो मोट चलाने पर भी न टूटे और टूटा हुआ पानी रात्रि में भर जाय। बड़े फार्म पर मोट का काम पम्प और एंजिन से भी लिया जा सकता है।

पशु—जहां मोट से सिंचाई न करना हो वहां दस एकड़ भूमि के लिए एक जोड़ी अच्छे बैलों से भलीभांति काम चल सकता है; परन्तु साग-भाजियों को बाजार में भेजने में असुविधा न हो इसलिए एक हल्की जोड़ी भी और रख लेनी चाहिए। जहां मोट से सिंचाई करना हो वहां तो दो जोड़ी अच्छे बैल अवश्य रखने चाहिए।

स्थायी मजदूर या नौकर—एक योग्य माली और तीन स्थायी मजदूरों से दस एकड़ की खेती अच्छी तरह से चल सकती है। काम की भीड़ के समय पर अस्थायी मजदूरों से काम लिया जा सकता। स्मरण रहे कि मालिक की जबान और आंख नौकरों के हाथ से अधिक काम करती है, इसलिए नौकरों का काम बराबर देखते रहना चाहिए और मधुर भाषण से उत्साह बढ़ाते हुए काम लेना चाहिए। समय-समय पर अच्छा काम दिखायें तो इनाम भी देना चाहिए।

कृषि के औजार तथा अन्य वस्तुएं—दस एकड़ की खेती के लिए निम्नलिखित औजारों का प्रबन्ध होना चाहिए :—

मोट रस्सियों सहित (यदि कुओं से पानी उठाना हो)	२
भमरा (चकरी) मोट की रस्सी जिसपर चलती है।	२

ताकरा[1] (रोलर) जिसपर सूंड की रस्सी चलती है	२
सादे हल	२
नाली बनानेवाला हल	१
बखर	२
पाटा या सोहागा ढेले तोड़ने के लिए	१
हाथ से चलनेवाले होज एक पहियेवाले	२
बोने का यन्त्र	१
गाड़ी	१
हाथ-गाड़ी	१
कांटे	२
कुदाल	६
कोदाली छोटी एक मुंहवाली	१
गैंती	१
खुर्पी	४
छुरी या चाकू	२
कैंची बड़ी	१
स्प्रिंगवाली कैंची	१
चलनी (नर्सरी के लिए मिट्टी और खाद के चालने के लिए	१
हजारे या झांझ	४
दतारी	२
कुल्हाड़ी	१
हंसुआ	२
आरी	१
बसूला	१
रुखानी	१
प्लायर्स	१
सब्बल	१
हथौड़ा	१
औजार तेज करने का पत्थर	१
सूखी औषधि फूंकने का यन्त्र	१
तरल औषधि छिड़कने का यन्त्र	१
कांटा बड़ा, वजन के लिए	१
जरीब १०० फुटवाली	१
तसले (तगारी) लोहे के	६
टोकरियां	१२
देवदार के बक्स इत्यादि	

[1] ताकरा के दोनों छोरों पर लोहे के कीले होते हैं जिन्हें आर कहते हैं। इन्हींके आधार पर ताकरा घूमता है।

: २ :

भूमि की जाति और उसका सुधार

स्थान के चुनाव के पश्चात् मुख्य कर्त्तव्य भूमि की पहचान का होना चाहिए, ताकि तरकारी की चाह के योग्य मिट्टी प्राप्त की जा सके या बनाई जा सके। वैज्ञानिक मिट्टी की पहचान[1] उसकी भौतिक और रासायनिक स्थिति तथा उसमें बसनेवाले सूक्ष्म जन्तुओं की संख्या और उनके कर्त्तव्य की जांच करके करते हैं। साधारण कृषक मिट्टी का नामकरण उसमें बालू की मात्रा पर करते हैं। जिसमें बालू अधिक होती है उसे बलुआ और जिसमें महीन मिट्टी अधिक होती है उसे मटियार कहते हैं। जिस मिट्टी में दोनों

---

[1] मोटे तौर पर मिट्टी की जांच निम्नलिखित रीति से की जा सकती है: खेत में चार-पांच जगह छः इंच लंबे-चौड़े और एक फुट गहरे गढ़े खुदवाये जायं और उनकी मिट्टी इकट्ठी करके खूब मिला लेनी चाहिए। उसमें से करीब पावभर मिट्टी लेकर उसे सुखा लेना चाहिए। बाद में लकड़ी के डण्डे से उसके ढेले तोड़कर वह ऐसी चलनी से चाल ली जाय जिसके छिद्र २ सम (cm) यानी १/२·५ इंच व्यास के हों। चली हुई मिट्टी से दस माशा मिट्टी लेकर एक चौड़े मुंह की बोतल में डाल दो। बोतल में १० सम (cm) की ऊंचाई तक पानी भर, रात भर रहने दो। दूसरे दिन लोहे के छड़ अथवा लकड़ी के चिकने छड़ से, जिसपर मिट्टी चिपकने न पावे, हिला दो और पांच मिनट तक ठहर जाओ। बाद में धीरे-से बोतल टेढ़ी करके पानी को इस तरह गिराओ कि नीचे बैठा हुआ हिस्सा जमा रहे। उस बोतल में १० सम तक फिर पानी भरकर हिला दो और पांच मिनट बाद फिर पानी फेंक दो। इसके बाद प्रति चार-चार मिनट ठहरकर पानी गिराते रहो जबतक कि ऊपर का पानी साफ न हो जाय। ऐसा न करने से गंदले पानी के साथ मिट्टी के

करीब-करीब बराबर भाग में होती हैं, उसे दुमट कहते हैं। बालू की मात्रानुसार साधारण मिट्टी पांच भागों में विभाजित की जा सकती है, जैसे बलुआ, बलुआ-दुमट, दुमट, मटियार-दुमट और मटियार। जिसमें ८० शतांश से अधिक बालू हो वह बलुआ माननी चाहिए। दूसरी में ६० से ८०, तीसरी में ४० से ६० और चौथी में २० से ४० शतांश भाग बालू का रहता है। मटियार में बालू का भाग २० शतांश से कम होता है।

तरकारियों के लिए सबसे उत्तम जमीन दुमट होती है, क्योंकि एक तो इसकी जुताई और सिंचाई सरलता से हो सकती है और दूसरी बात यह है कि ऐसी मिट्टी में सालभर तक एक-न-एक प्रकार की तरकारी पैदा की जा सकती है। बलुआ जमीन में सिंचाई अधिक करनी पड़ती है और यदि मटियार हुई तो उसकी जुताई में कठिनाई होती है। बरसात में ऐसी मिट्टी में पानी अधिक रहने के कारण तरकारियों में बीमारियां लग जाती हैं। दोनों प्रकार की मिट्टी के लिए दुमट मिट्टी की अपेक्षा खाद भी अधिक देना पड़ता है।

कंदवाली अर्थात् जो फसलें जमीन के अन्दर होती हैं उनके लिए बहुत भारी मिट्टी (मटियार) उत्तम नहीं होती। बढ़ते समय ऐसे कंद

दूसरे भाग निकल जायंगे और नीचे बालू रह जायगी। उस बालू को सुखाकर वजन कर लो। यदि वह बालू आठ माशे से अधिक हो तो वह मिट्टी बलुआ माननी चाहिए। यदि उसका वजन छः से आठ माशे हो तो वह मिट्टी बलुआ-दुमट होगी। दुमट में बालू का वजन चार माशे से छः माशे तक निकलेगा और मटियार-दुमट में दो से चार माशे तक होगा। यदि दो माशे कम बालू निकले तो उस मिट्टी को मटियार मानना होगा।

(A rapid method for the mechanical analysis of soils by Dr. N. D. Vyas and K. C. Batra Current, Science. Sept. 1944 p. 225-227 के आधार पर)

मिट्टी को दबाकर अपने लिए पूरा स्थान प्राप्त नहीं कर सकते। भारी मिट्टी पत्ते तथा फलवाली तरकारियों के लिए काम में लानी चाहिए।

यदि दुमट जमीन न मिले तो जैसी हो उसीको सुधारकर काम में लाना चाहिए। मटियार जमीन में बरसाती पानी जल्दी निकल जाय इसके लिए कुछ-कुछ दूरी पर खुली हुई नालियां बनवा देनी चाहिए। जहां अधिक आय की संभावना हो वहां कुछ व्यय करके कृषि-विभाग की सहायता लेकर मिट्टी के झिरझिरे नल (Porous tiles) खेतों में ढाई फुट से तीन फुट की गहराई पर और पंद्रहसे बीस फुट की दूरी पर लगवा देने चाहिए ताकि उनके द्वारा पानी जमीन से खींचा जाकर खेतों के ढाल की ओर बहाया जा सके। बलुआ और मटियार दोनों जमीन का सुधार हरे खाद या गोबर के खाद से भी हो सकता है। इनसे बलुआ जमीन में पानी रोकने की शक्ति बढ़ जाती है और जमीन हलकी हो जाती है।

जमीन के चुनाव में उसकी सतह का ध्यान रखना चाहिए। तरकारी की खेती के लिए ऊंची-नीची जमीन अच्छी नहीं होती, क्योंकि उसमें पानी ठीक से नहीं पहुंचाया जा सकता। जमीन समतल होनी चाहिए। जिधर से पानी की आय हो उधर से दूसरी ओर कुछ हल्का-सा ढाल उत्तम होता है। इससे जहां आवश्यकता हो वहां पानी सरलता से पहुंचाया जा सकता है।

जमीन की जुताई

यह तरकारी की जाति पर निर्भर है। जड़वाली या कंद के लिए अधिक गहरी तथा दूसरी तरकारियों के लिए कम गहरी होनी चाहिए। जड़ अथवा कंदवाली फसलों के लिए जुताई काफी होनी चाहिए ताकि जमीन ढीली होजाय, कंद ठीक से बैठें और सुन्दर आकार के हों। जब बड़े-बड़े कठोर ढेले खेतों में रह जाते हैं तो कंद का आकार टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है और बनावट भी उत्तम नहीं होती। बड़े बीजों की अपेक्षा छोटे बीजों के लिए ऊपर की मिट्टी बहुत महीन होनी चाहिए। प्रत्येक फसल के

लिए कम-से-कम दो बार हल और दो बार बखर से जुताई अवश्य करनी चाहिए। जहां सिंचाई करनी हो वहां अंतिम जुताई के बाद नालियां, क्यारियां इत्यादि बनवा लेना चाहिए। तरकारी की जाति के अनुसार जुताई का वर्णन भिन्न-भिन्न तरकारियों के विवरण में विशेष रूप से दिया गया है।

: ३ :

खाद[1]

जिस प्रकार जीवधारियों का पोषण आहार से होता है, उसी भांति पौधों का पोषण खाद से होता है। खाद द्वारा ही पौधों की बाढ़ होती है। पौधों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि ये कई प्रकार के तत्वों के मेलसे बने हैं, जिनमें से प्रधान तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटाश, खटिक, मेग्नेशियम, लोहा और गंधक हैं। इनमें से पहला तत्व, पौधे अपने पत्ते और हरे अंगों द्वारा वातावरण से, दूसरा और तीसरा कुछ वातावरण से और अधिकांश जल के रूप में जड़ों द्वारा मिट्टी

---

[1]. इस नये संस्करण में खादों के नाम केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय द्वारा जो वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली हाल में बनाई है; उसके अनुसार बदले गये हैं। नत्रजन का नाइट्रोजन, स्फुर का फासफोरस, पोटाश का पोटेशियम, सजीव का कार्बनिक, निर्जीव का अकार्बनिक नाम रक्खा गया है। नाइट्रोजन का सांकेतिक चिन्ह ना०, फासफोरस का फा० और पोटेशियम का पो० है। खाद में तत्वों की मात्रा नाइट्रोजन में नाइट्रोजन के रूप में फासफोरस की फासफोरस पेण्टा आक्साईड और पोटेशियम की पोटेशियम आक्साईड के रूप में दी जाती है जिसके सांकेतिक चिन्ह फा० पे० और पो० आ० रक्खे हैं।

से और शेष तत्व मिट्टी से ही जड़ों द्वारा प्राप्त करते हैं। इनमें से ना०, फा० और पोटाश भूमि में न्यूनाधिक होते हैं, इसलिए खाद द्वारा इन्हींके पहुंचाने का विचार रक्खा जाता है। अन्य तत्वों की मात्रा साधारण भूमि में काफी होती है। इन तीन तत्वों के सिवाय अम्लदार मिट्टी में अम्ल की शांति के लिए खटिक (चूना) का भी उपयोग किया जाता है। ये तत्व, तत्व के रूप में ही काम में नहीं लाए जा सकते। पौधे इनका उपयोग इनके नमक के रूप में करते हैं। भिन्न-भिन्न तत्वों का असर तरकारियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।

नाइट्रोजन—इससे धड़, शाखाएं और पत्तों की पुष्टि होती है, इसलिए जब पौधों की बाढ़ के दिन हों उन दिनों में इसकी चाह अधिक होती है। यह समय तरकारियों के बोने के कुछ समय बाद से फल आने तक होता है। इस तत्व की आवश्यकता करीब-करीब सब तरकारियों को होती है; परन्तु पत्तेदार और फूलदार को इससे विशेष लाभ पहुंचता है।

स्मरण रहे कि यदि ना० का खाद अधिक मात्रा में दिया जायगा तो पत्तेवाली को छोड़कर अन्य तरकारियां देर से तैयार होंगी और व्याधियों का आक्रमण भी विशेष होने की संभावना रहेगी।

फासफोरस—इससे पहले जड़ों की पुष्टि होती है और बाद में फल और बीज के लिए इसका उपयोग होता है। इससे फसलें कुछ जल्दी तैयार होती हैं। फल और बीजदार तरकारियों के लिए इस तत्व के पूरक खादों का उपयोग करना चाहिए।

पोटाश—इससे जड़ और कंदवाली तरकारी, जैसे—गाजर, मूली, चुकंदर, आलू और फलदार जैसे—बैंगन, टमाटर, मिर्च आदि तरकारियों को अच्छा लाभ पहुंचता है। भारतवर्ष की अधिकांश भूमि में इस तत्व की मात्रा काफी पाई जाती है, इसलिए ऐसे खाद से अधिकांश स्थानों में उपज में तो विशेष लाभ न भी हो; परन्तु रूप-रंग और आकार में तरकारियां अच्छी होंगी। पौधे भी स्वस्थ होंगे।

स्मरण रहे कि एक ही प्रकार के तत्व के डालने से पूर्ण लाभ नहीं हो

सकता। खाद द्वारा जहांतक हो तीनों तत्वों को खेतों में पहुंचाना चाहिए। सिर्फ मात्रा फसल की जाति-अनुसार, न्यूनाधिक होनी चाहिए।

ये तत्व कार्बनिक अथवा अकार्बनिक खाद के रूप में खेतों में डाले जाते हैं। भारतवर्ष में बहुधा कार्बनिक खाद का ही उपयोग किया जाता है और जहांतक मल सिके इसका ही उपयोग करना चाहिए। इसके बिना अकार्बनिक खाद के आधार पर ही काम नहीं चल सकता। अकार्बनिक खाद का उपयोग कार्बनिक खाद की कमी पूरी करने के लिए करना चाहिए। खटिक अर्थात् चूने-जैसे खाद की पूर्ति कार्बनिक खाद द्वारा नहीं हो सकती, इसलिए अकार्बनिक खाद द्वारा ही होनी चाहिए।

कार्बनिक अथवा अकार्बनिक खाद, जिनका उपयोग तरकारियों के लिए किया जाता है, निम्नलिखित हैं:—

कार्बनिक खाद

नाइट्रोजन-प्रधान—जिनमें फा० और पोटाश की मात्रा से ना० की मात्रा अधिक हो:—

(१) पशुओं का मल-मूत्र और पशुशालाओं के घास-पात का मिश्रण अर्थात् गोबर का खाद।
(२) मनुष्यों का मल-मूत्र।
(३) पक्षियों की विष्ठा।
(४) खली का खाद।
(५) हरा खाद।
(६) (क) सूखे तथा हरे पत्तों का खाद, (ख) 'काम्पोस्ट'
(७) शहर के कूड़ा-कर्कट का खाद।
(८) शहरों की मोरियों का पानी।

फासफोरस-प्रधान—जिनमें ना० और पोटाश से फा० की मात्रा अधिक हो :—

(१) हड्डियों का खाद।

(२) मछलियों का खाद ।

(३) पक्षियों की विष्ठा ।

पोटाश-प्रधान—जिनमें फा० और ना० की मात्रा की अपेक्षा पोटाश की मात्रा विशेष हो—

(१) समुद्र, नदी, नाले या तालब में उत्पन्न होनेवाले पौधे या सेवार ।

अकार्बनिक खाद

नाइट्रोजन-पूर्ता—जिनसे सिर्फ ना० ही प्राप्त होती है :—

(१) सोडियम नाइट्रेट	१५ शतांश ना०
(२) एमोनियम सलफेट	२० ,, ,,
(३) एमोनियम क्लोराइड	२५ ,, ,,
(४) सायनामाइड	२० ,, ,,
(५) कैलशियम नाइट्रेट	१३ से १६ ,, ,,

फासफोरस-पूर्ता—जिनसे फासफोरस ही की पूर्ति हो :—

(१) सुपरफासफेट	२० से ४० शतांश फा० पे०
(२) बेसिक स्लैग	१६ से १८ ,, ,, ,,

पोटाश-पूर्ता—जिनसे पोटाश की पूर्ति हो :—

(१) पोटेशियम सलफेट	लगभग ४८ शतांश पो० आ०
(२) पोटेशियम क्लोराइड	,, ५० ,, ,, ,,

नाइट्रोजन और फासफोरस मिश्रित—

	शतांश ना०	शतांश फा० पे०
(१) डाइमान फॉस	२१ ,,	५४ ,, ,,
(२) एमोफॉस	१३ ,,	४८ ,, ,,
(३) ल्यूनोफॉस	२० ,,	२० ,, ,,
(४) नाइसी फॉस नं० १	१४ ,,	४५ ,, ,,
नं० २	१८ ,,	१८ ,, ,,

नाइट्रोजन और पोटाश-मिश्रित—

शतांश ना० शतांश पो० आ०

(१) पोटेशियम नाइट्रेट १४ ,, ४८ ,, ,,

फासफोरस और पोटाश-मिश्रित—

शतांश फा० पे० शतांश पो० आ०

(१) राख २ ,, ,, ४ से ६ ,, ,,

नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश मिश्रित—

शतांश ना० शतांश फा० पे० शतांश पो० आ०

(१) नाइट्रोफोस्का १५ ,, १५ ,, , २० ,, ,,

(२) फासफोरस की मिट्टी।

(३) तालाब, कुएं आदि की मिट्टी।

उपर्युक्त सूची के सब खादों का विस्तारपूर्वक वर्णन यहां स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा सकता। मुख्य-मुख्य खादों का ही संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

खाद की मात्रा—खाद कितना देना चाहिए यह भूमि की उर्वरा शक्ति और तरकारी की जाति पर निर्भर है। इस पुस्तक में जो मात्राएं दी गई हैं वे साधारण उर्वरा भूमि के लिए हैं और जो कम व्यय से दी जा सकती हैं। बतलाई हुई मात्राओं से कुछ अधिक खाद देने पर तरकारियां और भी उत्तम प्राप्त की जा सकती हैं और प्रति एकड़ की आय भी विशेष हो सकती है। परंतु व्यय के प्रमाणानुसार आय नहीं होती।

वर्तमान समय में कृत्रिम खाद कई प्रकार के मिलने लगे हैं जिनमें खाद्य-तत्वों के सांकेतिक अंक ५-१०-५, २-८-१० इत्यादि रहते हैं। इन चिन्हों का अभिप्राय यह होता है कि प्रत्येक १०० भाग पहले खाद से आप को ५ भाग ना० दस भाग फा० पे० और पांच भाग पो० आ० मिलेंगे और दूसरे १०० भाग खाद से, २, ८ और १० भाग ना०, फा० पे० और पो० आ० मिलेंगे।

साधारणः पत्ते वाली साग-भाजी के लिए ५-१०-५, कंद और जड़

वाली के लिए २-८-१० और फली और फलवाली के लिए ४-८-८ के अंकों के लगभग अंकवाले खाद काम में लाये जायंगे तो अच्छा होगा।

१. **गोबर का खाद**—पशुओं के मलमूत्र और पशुशालाओं के घास-पात के मिश्रण को गोबर का खाद कहना चाहिए क्योंकि ये सब पदार्थ एक साथ ही रक्खे जाते हैं। इस खाद का उपयोग बहुत समय से चला आता है और प्रायः सभी कृषक इसके उपयोग का लाभ जानते हैं। यह एक ऐसा खाद है जिसके द्वारा तीनों तत्वों की प्राप्ति के सिवाय भूमि की दशा भी सुधर जाती है और न्यून तत्वों[1] की पूर्ति भी होती रहती है। भूमि चाहे बलुआ हो या मटियार, दोनों ही इससे अच्छी हो जाती हैं। इससे भूमि में सूक्ष्म जंतुओं की वृद्धि भी होती है जिनमें एक ऐसी जाति के जंतु भी होते हैं, जो वायु-मंडल से ना० लेकर भूमि में संचित करते हैं।

इस खाद का न्यूनाधिक गुण पशुओं की जाति और उनके भोजन[2] तथा खाद के रखने की रीति पर निर्भर है। गाय-बैल की अपेक्षा भेड़-बकरी का खाद विशेष लाभदायक होता है। किसी-किसी तरकारी के लिए घोड़े की लीद अच्छी मानी गई है। जिन पशुओं को भूसी के साथ अनाज या दाना खिलाया जाता है उनका मल-मूत्र केवल भूसी खानेवाले पशुओं के मल-मूत्र से अधिक गुणकारी होता है। इसलिए जब गोबर का

---

[1] वैज्ञानिक खोज से यह पता चला है कि पौधों की स्वस्थ बाढ़ के लिए भूमि में कुछ न्यून तत्वों (Minor elements) का होना भी आवश्यक है। उनके अभाव में पौधे व्याधिग्रस्त हो जाते हैं, लेकिन गोबर के खाद का उपयोग किया जाय तो बहुत अंश तक उनकी पूर्ति होती रहती है।

२. Study of the losses of fertilising constituents from cattle dung during storage and a method for their control. By N. D. Vyas, Agr. & Live-stock in India, Vol. 1. Part I. (January, 1931.)

खाद मोल लिया जाय तो इस बात का पता लगा लेना चाहिए कि वह खाद कैसे पशुओं का है और उसका पोषण किस प्रकार के आहार से किया गया है। इसके अलावा यह भी देखना चाहिए कि मल-मूत्र में घास-पात की मात्रा कितनी है। खाद के रक्खे जाने की रीति पर भी विचार करना चाहिए। सूर्य की तेजी से तपा हुआ या वर्षा के जल से धुला हुआ खाद छाया में रक्खे हुए खाद की अपेक्षा कम लाभदायक होता है। खाद का मूल्य ठहराने में इन सब बातों पर ध्यान रखना चाहिए।

खाद खेतों में डालते समय यह देखना चाहिए कि वह कितना सड़ा हुआ है और कितना सड़ा हुआ खाद किस तरकारी के योग्य होता है। बहुत-सी तरकारियां ऐसी होती हैं जिन्हें कम सड़े हुए खाद से लाभ की अपेक्षा हानि पहुंचती है और बहुत-सी ऐसी होती हैं जिन्हें ऐसे खाद से हानि नहीं पहुंचती बल्कि लाभ ही होता है। जड़ और फलदार तरकारियों के लिए सड़ा हुआ खाद ही देना चाहिए। हल्की मिट्टी में अच्छा सड़ा हुआ और भारी मटियार में कम सड़ा हुआ डाल सकते हैं। पत्तेवाली तरकारियां, जैसे गोभी, साग आदि के लिए कम सड़े हुए खाद का उपयोग किया जा सकता है। खाद डालने में ऋतु का भी ध्यान रखना चाहिए। कम सड़ा हुआ खाद यदि बरसात में डाला जाय तो विशेष हानि नहीं पहुंचाता, परंतु यदि जाड़े या गरमी में डाला जाय तो हानि करता है। घरेलू पशुओं का जो खाद रक्खा जाय उसे धूप और बरसात से बचाने के लिए छाया में रखना चाहिए। अन्य प्रकार की न हो तो फूस की छाया ही अच्छी होती है। खाद जब सड़ता है तो उसके प्रधान तत्व ना० की कुछ मात्रा वायु-मंडल में चली जाती है। यदि खाद की ढेरी पर एक शतांश यानि प्रति ढाई मन खाद के लिए एक सेर सुपरफासफेट छींट दिया जाया करे तो बहुत अंश तक उड़नेवाली ना० की रुकावट हो जाती है। खाद को इस तरह से रखना चाहिए कि जिसमें कुछ गढ़े में और कुछ ऊपर रहे। गढ़े के फर्श को मुरम से खूब पिटवा देना चाहिए जिससे खाद मिट्टी में न सोख जाय। दो जोड़ी पशुओं के गोबर के खाद

के लिए ८×८×४ फुट का गढ़ा काफी होता है। पशुओं का मूत्र वृथा न चला जाय, इसलिए पशुशालाओं के फर्श पर मिट्टी बिछाकर रखनी चाहिए, जिसको कुछ दिनों में खाद की ढेरी पर या खेतों में डालकर दूसरी मिट्टी पशु-शालाओं में बिछा देनी चाहिए। बहुधा यह देखा जाता है कि खेतों में खाद की छोटी-छोटी ढेरियां बहुत दिनोंतक वैसी ही पड़ी रहती हैं। ऐसा करने से धूप लगने के कारण खाद की उपज-शक्ति कुछ कम हो जाती है, इसलिए खेतों में डालते ही खाद मिट्टी में मिला देना चाहिए।

गोबर के खाद में प्रधान खाद्य तत्वों की मात्रा—ये मात्राएं खाद के रखने की रीति, पशुओं के खान-पान तथा खाद में कूड़ा-कर्कट के मिश्रण पर निर्भर हैं। साधारणतः बरसात और धूप से बचाये हुए एक साल के सड़े हुए खाद से ४० शतांश जल, ०·५ शतांश ना०, ०·३ शतांश फा० पे० और ०·६ शतांश पो० आ० मान लेना चाहिए।

गोबर के खाद की मात्रा—यह मात्रा तरकारी की जाति, उसकी पैदावार तथा मूल्य और जमीन के उर्वरापन पर निर्भर है। साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि देशी या देश-रंजित की अपेक्षा नई आगंतुक के लिए अधिक, पत्ते और फूलवाली से जड़वाली के लिए अधिक खाद डालना चाहिए। इसी भांति महंगी बिकनेवाली तरकारी के लिए भी अधिक खाद लाभदायक ही होगा।

मेथी, पालक, धनिया आदि के लिए १०० से १२५ मन; खरबूजा, ककड़ी, कद्दू आदि के लिए ११५ से १५० मन; विलायती मटर, फ्रेंचबीन आदि के लिए १५० से १७५ मन; बैंगन, टमाटर, परवल आदि के लिए १७५ से २०० मन; गाजर, मूली, शलजम आदि के लिए करीब ३०० मन प्रति एकड़ डालना चाहिए।

बहुत-से लोग प्रत्येक तरकारी को बार-बार खाद न देकर एक ही बार अधिक खाद दे देते हैं। यदि ऐसा करना हो तो वह बरसाती फसल को देना चाहिए।

२. **मनुष्यों का मल-मूत्र**—इस खाद का प्रचार चीन और जापान

में बहुत है। वहां इसे घृणा की दृष्टि से नहीं देखते। अब भारत में भी कुछ प्रचार हो रहा है। इसका उपयोग तीन रीति से किया जाता है। खेतों में नालियां बनाकर ताजा गाड़ देना या मिट्टी के साथ सड़ाकर खेतों में डालना या पानी में घोलकर पम्प द्वारा खेतों में पहुंचाना। तरकारी को खेती में पहली रीति काम में नहीं लाई जा सकती है, क्योंकि उसमें कुछ दिनों के लिए बिना फसल के खेतों को छोड़ना पड़ता है, जिनको इस व्यवसायवाले नहीं छोड़ सकते। दूसरी रीति में मैले को मिट्टी या राख के साथ सड़ाकर सुखाते हैं और फिर बेच देते हैं। ऐसे खाद को पुडरेट कहते हैं। इसकी मात्रा गोबर के खाद की मात्रा से आधी होनी चाहिए।

तीसरी रीति—आजकल बहुत-से शहरों में पैखाने आप-से-आप धुल जाते हैं और मैला बहकर शहर के बाहर एक स्थान पर चला जाता है, जहां रासायनिक क्रिया और सूक्ष्म कीटाणुओं द्वारा विच्छेदन होता है और फिर विच्छेदित पदार्थ के घोल से सिंचाई की जाती है। ऐसी सिंचाई से अच्छी तरकारियां पैदा की जाती हैं। बड़े-बड़े शहरों में आजकल सीवेज प्लांट (Sewage plant) लगाये जाते हैं। मैले और पानी के घोल में हवा देकर ऐसा विच्छेदन कर देते हैं कि दुर्गन्ध मिट जाती है। पानी साफ पानी-जैसा अलग हो जाता है, जिसे जितना हो सके उतना सिंचाई के काम में लाकर शेष नदियों में बहा दिया जाता है। गाढ़ा पदार्थ जिसे स्लज (Sludge) कहते हैं, सुखाकर खाद के काम में लाया जाता है। इसमें लगभग ३ से ५ शतांश ना०, २ से ३ शतांश फा० पे० और ०·५ से १·० शतांश तक पो० आ० रहता है।

३. पक्षियों की विष्ठा का खाद—मुर्गियां, कबूतर, बतख आदि पालतू पक्षी या अन्य पक्षियों की विष्ठा का खाद भी उत्तम होता है। सूखे हुए खाद में लगभग ४ शतांश ना०, २·२७ शतांश फा० पे० और १·२ शतांश पो० आ० रहता है। विष्ठा मिट्टी के साथ मिलाकर रखनी चाहिए, नहीं तो ना० वायु-मंडल में उड़ जाती है। यह खाद बहुतायत से नहीं

मिलता। थोड़ा-बहुत कहीं हुआ तो काम में ले आना चाहिए। मिट्टी के साथ मिले हुए इस खाद को लगभग दस मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए।

चमगादड़ की विष्ठा भी खाद के लिए अच्छी होती है। इसमें करीब ८ शतांश ना०, ३·८ शतांश फा० पे० और १·३ शतांश पो० आ० रहते हैं।

४. **मछलियों का खाद**—समुद्र के किनारे, जहां मछलियों का व्यापार बहुतायत से होता है, सड़ी-गली मछलियां फेंक दी जाती हैं, जो खाद के काम में लाई जा सकती हैं। जिन कारखानों में मछलियों का तेल निकाला जाता है वहां से भी यह खाद प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे खाद से विशेषतः फा० और कुछ ना० की पूर्ति होती है। ऐसे सूखे खाद में लगभग ८% ना०, ६% फा० पे० रहता है।

५. **खली का खाद**—बहुत जल्दी लाभ पहुंचानेवाला खाद सड़ी हुई खली का होता है। इसका गुण कई कृत्रिम खादों से भी अधिक होता है। भारतवर्ष में खली मिलती भी बहुत कम है, परन्तु इसके उपयोग के ज्ञान के अभाव के कारण इसका प्रचार बहुत नहीं हुआ है।

खलियां दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो पशुओं को खिलाई जाती हैं, दूसरी वे जो खिलाने के योग्य नहीं होतीं। जो खलियां पशुओं को खिलाई जाती हैं उनका भी बहुत-सा भाग रूप-परिवर्तनोपरांत गोबर और मूत्र के रूप में खेतों में पहुंच ही जाता है परंतु जो जहरीली होने के कारण नहीं खिलाई जातीं उन्हें सड़ाकर डालना चाहिए।

खलियों को सड़ाने की रीति[1]—१०० भाग खली, २७ भाग मिट्टी, ५ भाग कोयला और ६० से ७० भाग जल का मिश्रण बनाकर छाया में करीब तीन मास तक सड़ा लेना चाहिए। इस ढेरी को ढककर रखना चाहिए ताकि अधिक पानी उड़ने न पावे। कभी-कभी दस-पंद्रह दिन पीछे पानी

[1] Pusa Bulletin No. 176 by N. D. Vyas, 1928.

भी छिड़कते रहना चाहिए।

खलियों के खाद में फा० और पो० भी कुछ परिमाण में रहते हैं; परंतु इनका उपयोग ना० के विचार से ही किया जाता है। साधारण खलियों में ये तत्व निम्नलिखित परिमाण में पाये जाते हैं :—

(१) पशुओं को खिलाई जाने वाली खलियां—

नाम खली	शतांश ना०	शतांश फा० पे०	शतांश पो० आ०
मूंगफली	७·६	२·३	२·२
कुसुम	५·८	१·३	१·२
सरसों	५·६	१·९	१·४
अलसी	५·०	१·६	१·६
तिल	५·०	१·१	१·०
राम तिल्ली	४·५	२·०	१·९
नारियल	३·७	१·९	१·८
बिनोला(छिलका सहित[1])	२·६	१·६	१·१

(२) पशुओं को नहीं खिलाई जानेवाली खलियां—

	शतांश ना०	शतांश फा० पे०	शतांश पो० आ०
एरंडी	५·०	१·८	१·६
नीम	४·४	१·०	१·४
करंज	३·५	०·७	१·३
महुआ	२·६	०·८	२·८

खलियों के खाद की मात्रा—इनकी मात्रा ना० के आधार पर होनी चाहिए। करीब १० सेर से २० सेर ना० प्रति एकड़ पहुंचे इतनी खली तरकारी से प्राप्त होनेवाली आय का अनुमान करके, डालनी चाहिए। कभी-कभी गोबर की खाद और खली दोनों का उपयोग एक साथ किया जाता है। उस स्थिति में न्यूनाधिक परिमाण का अंदाज कर लेना चाहिए।

---

[1] छिलकारहित में उपर्युक्त मात्राएं करीब-करीब दुगनी होंगी।

६. हरा खाद—इस खाद का उपयोग साधारणतः तरकारी की खेती में विशेष नहीं हो सकता, क्योंकि चार-पांच महीने तक खेत बिना तरकारी के छोड़े जाने चाहिए सो नहीं छोड़े जा सकते। फिर भी यदि संभव हो तो इसका उपयोग कर सकते हैं। जहां मक्का की फसल ली जाती है वहां यदि उसके साथ उड़द बो दिया जाय तो अच्छा होता है। मक्का की फसल लेते ही उड़द को गाड़ देना चाहिए। ऐसा करने से फसल भी मिल जाती है और उड़द गाड़ देने से हरा खाद भी खेतों में पहुच जाता है। साधारणतः हरे खाद की फसल बरसात के प्रारंभ में बोई जाती है और जब दो-ढाई महीने की हो जाती है तो उसे उसी खेत में गाड़ देते हैं। ऐसी फसल के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए वर्षा ऋतु की समाप्ति के पूर्व ही गाड़ देनी चाहिए। बरसात के बाद गाड़ने से यह अच्छी तरह सड़ने नहीं पाती।

हरे खाद के लिए फलीदार, जल्दी बढ़नेवाली, ज्यादे पत्तेवाली और कोमल डंडीवाली फसल चुननी चाहिए। फलीदार फसलें इसलिए चुनी जाती हैं कि उनकी जड़ों पर एक प्रकार के सूक्ष्म जंतु रहते हैं जो वायु-मंडल की ना० का उपयोग कर उसे भूमि में संचित करते हैं और उसकी उर्वरा-शक्ति बढ़ाते हैं। फलीदार फसलें कई जाति की होती हैं जैसे सन, ढेंचा, ग्वार, चंवली, मूग, मटर, उड़द आदि। इनमें से सन, ढेंचा, ग्वार अथवा मक्का के साथ उड़द की फसल खाद के लिए काम में लाई जा सकती है। हरे खाद के लिए सबसे उत्तम फसल सन की होती है, क्योंकि इसकी बाढ़ बहुत जल्दी होती है। जहां बरसात अधिक हो वहां इसकी बाढ़ अच्छी नहीं होती, इसलिए ढेंचा का उपयोग करना चाहिए।

सन के खाद में खाद्य तत्वों की मात्रा[1] निम्नलिखित प्रमाण में मानी जा सकती है।

---

[1] Bombay Dept. Agri. Bul. No. 174, p.14. by Sahasrabudhe.

ना० ०·४६%, फा० पे० ०·३२%, पो० आ० ०·४१%, जल ७६%

मात्रा—जिस खेत में जितना हरा खाद पैदा हो उतना सब गाड़ देना चाहिए। हरे सन के खाद का वजन प्रति एकड़ २०० से ३०० मन उसकी बाढ़ के अनुसार हो जाता है।

७. **(क) हरे या सूखे पत्तों का खाद**—इनका खाद नर्सरी के लिए अच्छा काम देता है। पत्तों को मिट्टी के साथ मिलाकर पानी से गीला करके सड़ा लेते हैं। तरकारी की खेती में पौधों के पत्ते, डंठल आदि बहुत प्राप्त होते हैं, जैसे शलजम, गोभी आदि के पत्ते। जिन पत्तों को पशु खा सकें उन्हें तो खिलाना ही अच्छा है, नहीं तो सड़ाकर काम में लाना चाहिए। यदि अलग न रखे जा सकें तो कम-से-कम खाद की ढेरी पर डालते रहना चाहिए।

मात्रा—गोबर के खाद से ऐसे खाद की मात्रा कुछ कम होनी चाहिए।

(ख) आजकल भारतवर्ष में 'काम्पोस्ट' खाद बनाने पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। कई सज्जनों के प्रेषित पत्र भी मेरे पास इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए आये हैं, इसलिए इस विषय पर दो शब्द यहां दे देना उचित ही है।

यथार्थ में देखा जाय तो भारतीय कृषकों के लिए 'काम्पोस्ट' शब्द ही नया है, न कि काम्पोस्ट वस्तु। सूखे तथा हरे पत्ते, निंदाई के समय खेतों से निकाले हुए घास-पात, कड़वी, मक्का, ज्वार-जैसी फसलों की खूंटियां, भूसा, फसलों के डंठल, गन्ने के पत्ते, इत्यादि अनावश्यक कार्बनिक पदार्थों को थोड़े-से गोबर, मिट्टी और पानी के साथ सड़ाने से जो पदार्थ बनता है उसे काम्पोस्ट कहते हैं। कहीं-कहीं ऐसे मिश्रण को जल्दी सड़ाने के लिए उसमें एमोनियम सलफेट भी थोड़ा डाल देते हैं, जिससे मिश्रण में ना० की मात्रा लगभग १ शतांश हो जाय।

यह प्रथा विदेशों में प्रचलित हुई, क्योंकि वहां खेती मशीनों से होती है और अनाज की भूसी, कड़वी इत्यादि बहुत ज्यादा हो जाती है जिसको किसी-न-किसी तरह काम में लाने की समस्या को हल करने के

लिए काम्पोस्ट बनाया जाने लगा। हमारे यहां तो कड़वी, भूसी आदि पशुओं को खिलाने के लिए भी पूरी नहीं होती। जो कुछ पशुशालाओं में बिछाई जाती है अथवा पशुओं के खाने से बच जाती है, वह खाद की ढेरी पर पहुंच जाती है। वहां उसका काम्पोस्ट बन जाता है। फिर भी जहां-कहीं कार्बनिक पदार्थ प्राप्त हो सके वहां काम्पोस्ट बनाकर काम में लाना चाहिए।

जिन वस्तुओं का काम्पोस्ट बनाया जाता है वे तीन प्रकार की होती हैं। एक हरी—जैसे साग-भाजी के पत्ते, खेतों का घास-पात, दूसरी हरी लेकिन कुछ कठोर—जैसे काट-छांट द्वारा प्राप्त की हुई छोटी-छोटी टहनियां और तीसरी ऐसी वस्तुएं जो सूखी और कठोर हों—जैसे तूवर और कपास की डंडियां।

काम्पोस्ट बनाने के लिए पहली और दूसरी बराबर भाग में मिलानी चाहिए, लेकिन जब तीसरी प्रकार की वस्तु काम में लानी हो तो इसका एक भाग और पहली के दो भाग होने चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि तीसरी प्रकार की वस्तु जितनी बन सके उतनी टूटी हुई हो। पशुओं के चलने-फिरने से मार्ग में अथवा सड़कों पर जहां गाड़ियां चलती हों ऐसी वस्तु डाल दी जाय तो जल्दी टूट जाती है।

ऐसे मिश्रण को बरसात में ढेरी के रूप में और गर्मी में अथवा जहां पानी न गिरता हो वहां गढ़ों में बनाना चाहिए। ढेरी सात-आठ फुट चौड़ी और ढाई-तीन फुट ऊंची होनी चाहिए ताकि उलट-फेर आसानी से हो सके। ढेरी बनाते समय अथवा गढेमें भरते समय लगभग ५ शतांश के करीब पानी में घोला हुआ गोबर छींटा जाय और गोबर से दूनी मात्रा मिट्टी की मिलानी चाहिए। पानी आवश्यकतानुसार देना चाहिए। ऐसे काम्पोस्ट का प्रति मास उलट-फेर करना पड़ता है ताकि वह जल्दी सड़ जाय। उपर्युक्त रीति से तैयार किया हुआ काम्पोस्ट तीन-चार महीनों में तैयार हो जाता है। बरसात में खेतों की मेड़ों पर भी ऐसा काम्पोस्ट बनाया जा सकता है, ताकि खाद को गाड़ियों द्वारा हटाने का व्यय न पड़े।

मात्रा—गोबर के खाद के बराबर डालनी चाहिए।

इन्दौर में साधारण काम्पोस्ट के सिवाय एक दूसरी युक्ति भी निकाली है जिसमें मैले का उपयोग भी हो जाता है। ऐसे काम्पोस्ट को सेनीटरी काम्पोस्ट[1] कह सकते हैं।

इसमें १५ फुट चौड़ी, २ फुट गहरी और आवश्यकतानुसार लम्बी एक खाई, जिसकी फर्श मिट्टी या ईटों के टुकड़ों से पीटी हुई हो बना ली जाती है। इसमें एक गाड़ी घासपात (लगभग ३५ घन फुट) एक तरफ से डालकर उसे बिछा देते हैं जिसमें तीन-चार इंच की तह हो जाय। इसपर एक गाड़ी मैला (सात-साढ़े सात मन) गिरा दिया जाता है। इसके ऊपर फिर घासपात डालकर सबको दतारी से मिला देते हैं। इसी तरह से दो दिन में आठ तह बनाकर अंतिम तह घास-पात की दी जाती है। इसी तरह लंबाई की ओर भरते हुए चले जाते हैं।

पहले दिन के काम्पोस्ट को चौथे दिन दतारी से उलट-फेर करते हैं। और आवश्यकता होने से पानी भी देते हैं। आठ दिन बाद फिर उलट-फेर किया जाता है। तीसरी उलट-फेर दूसरी के १५ दिन बाद की जाती है और बाद में काम्पोस्ट की ढेरी बनाकर छोड़ देते हैं। ऐसा खाद तीन सप्ताह से लेकर आठ सप्ताह में तैयार हो जाता है।

८. **शहर का कूड़ा-कर्कट**—इसमें साग-भाजी के पत्ते, घरों का कूड़ा और राख, बर्तनों के टुकड़े, सड़कों पर का गोबर, लीद और फटे-पुराने कपड़े, कागज इत्यादि कई वस्तुएं रहती हैं।

मात्रा—ऐसी खाद को बरसात के पहले ५०-६० गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए। बन सके तो मोटे छेदवाले चालने से चालकर डालना उत्तम होगा।

९. **शहर की मोरियों का पानी**—बड़े-बड़े शहरों में तो मोरियों

---

[1] Institute of Plant Industry, Indore. Bulletin No. 1, 1934.

का पानी जमीन के अंदर नलों द्वारा बाहर ले जाया जाता है; परन्तु छोटे-छोटे शहरों में अब भी गंदा पानी खुली मोरियों द्वारा बहता रहता है जो अंत में छोटे नाले के रूप में बहने लगता है। ऐसे नाले के किनारे बहुत-से लोग सब्जियां लगाकर उनको नाले के पानी से सींचते है और अच्छी-अच्छीं तरकारियां पैदा करते हैं।

फासफोरस-प्रधान कार्बनिक खाद

१. हड्डियां—इनके खाद से फा० की मात्रा पहुंचाई जाती है परंतु इसमें थोड़ी ना० भी रहती है। (फा० पे० २० शतांश और ना० ३से४ शतांश)। इनका उपयोग तीन प्रकार से किया जाता है—चूर्ण करके, सडा करके या अम्ल से गला करके। चूर्ण का फा० पौधे जल्दी से काम में नहीं ला सकते। इसलिए इसे सड़ाकर या अम्ल से गलाकर खेतों में डालना चाहिए। सड़ाने की क्रियाएं कई प्रकार की हैं परंतु उनमें समय अधिक लगता है। गलाने की क्रियाएं कारखानों में ही होती हैं जहां गंधक या फा० के अमल से हड्डियाँ गलाई जाती हैं। वहां से तैयार खाद मिल सकता है परन्तु वह महंगा पड़ता है। एक ऐसी क्रिया[1] भी है जिसमें सड़ने और घुलने के दोनों कार्य एक साथ चलते रहते हैं। गंधक के अम्ल की जगह गंधक का ही उपयोग किया जाता है। छः भाग हड्डी का चूर्ण, छः भाग बालू, डेढ़भाग गंधक और एक भाग कोयले के चूर्ण का मिश्रण बनाकर पानी से गीला करके छः महीने तक सड़ाया जाता है। सूक्ष्म कीटाणु गंधक से उसका अम्ल बना देते हैं जिससे फा० घुलनशील हो जाता है।

इस प्रकार के खाद से मटियार भूमि में अच्छा लाभ पहुंचता है। फलीदार तथा फलदार और कंद के लिए गोबर के खाद के साथ इसका उपयोग करना चाहिए।

मात्रा—प्रति एकड़ तीन-चार मन हड्डी पहुंचे इतना खाद डालना चाहिए।

---

[1] Pusa Bull. No. 240 by N. D. Vyas. 1930

२. **पक्षियों की विष्ठा**—समुद्र के पक्षी किसी-किसी द्वीप में चट्टानों पर अपना निवास-स्थान बनाते हैं। उनके बैठने के स्थान पर जो विष्ठा गिरती है वह सूख जाती है। व्यवसायी लोग उसे लाकर बेचते हैं। यदि वह विष्ठा ऐसे स्थान की हो जहां पानी न गिरता हो तो उसमें ना० और फा० करीब-करीब बराबर मात्रा में पाये जाते हैं; परंतु जहां पानी गिरता है वहां की विष्ठा की ना० घुलकर बह जाती है। उसमें फा० ही रह जाता है। पहले प्रकार की विष्ठा में चार-पांच शतांश ना० और उतना ही फा० पे० रहता है। दूसरी में ना० नहीं होती, फा० पे० की मात्रा आठ शतांश तक होती है।

मात्रा—सात-आठ मन विष्ठा प्रति एकड़ डालनी चाहिए।

पोटाश-प्रधान कार्बनिक खाद—समुद्र के किनारे के निकट पानी में होनेवाले पौधों से अथवा सेवार से पोटाश के खाद की पूर्त्ति होती है। इनमें लगभग १·५ शतांश पो० आ० रहता है। कम गहरी सजीव नदियों में और तालाब में ये पौधे होते हैं, जिन्हे सेवार कहते हैं। इनका भी उपयोग लेखक के प्रयोग में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। मुलायम पत्तीवाला सेवार अच्छा होता है। सूखे सेवार में करीब १ शतांश ना०, ०·४ शतांश फा० पे० और लगभग २ शतांश पा० आ० रहता है।

अकार्बनिक खाद—इन खादों के उपयोग का अच्छा-बुरा फल बहुत-सी बातों पर निर्भर है। इनका उपयोग कार्बनिक पदार्थों के खाद की भांति नहीं कर सकते। बड़ी सावधानी से इनसे काम लेना चाहिए। इनके उपयोग के पूर्व निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए।

जब भूमि की जुताई अच्छी, महीन होती है तो ऐसे खाद विशेष लाभ पहुंचाते हैं। वर्षा आनेवाली हो तो उस समय इन्हें नहीं डालना चाहिए, क्योंकि ये पानी में घुलकर बह जाते हैं। इनके खेतोंमें डालने का समय भी ध्यान में रखना चाहिए। फा० और पो० के खाद बोने के कुछ दिन पहले डाल दिये जा सकते हैं, परन्तु ना० के कुछ खाद ऐसे हैं जिन्हें बोने के थोड़े ही समय पहले डालना चाहिए। बहुत-से खाद ऐसे हैं जिन्हें फसल

के कुछ बढ़ जाने पर डालना लाभप्रद होता है। इन्हें इस रीति से देना चाहिए कि ये फसल के पत्तों पर न गिरने पावें। पृथक्-पृथक् खाद में तत्वों की मात्रा का परिमाण न्यूनाधिक होता है। उनका भी ध्यान रखकर उपयोग करना चाहिए।

ना०-पूर्ता अकार्बनिक खाद

सोडियम नाइट्रेट जिसमें १५ शतांश और एमोनियम सलफेट जिसमें २० शतांश ना० रहती है सब फसलों के लिए काम में लाये जा सकते हैं इनसे पौधों को बहुत जल्दी लाभ पहुंचता है। यदि फसल पीली नजर आये और कमजोर हो तो सोडियम नाइट्रेट देने से आठ रोज में ही इसका अच्छा असर मालूम हो जाता है। गोबर के खाद की कमी इनसे पूरी का जा सकती है। गोबर के खाद के परिमाण को ध्यान में रखकर सवा मन से ढाई मन प्रति एकड़ के हिसाब से इन्हें डालना चाहिए। कार्बनिक खाद के बिना सिर्फ इनका ही प्रयोग ठीक नहीं होगा। इसमें सन्देह नहीं कि पहले कुछ सालों तक अच्छी फसलें मिलेंगी; परंतु बाद में भूमि खराब हो जाती है। उन कृषकों के लिए जिन्होंने थोड़े समय के लिए भूमि ली हो ऐसे खाद लाभप्रद होंगे, परंतु जिन्हें अधिक दिनों तक भूमि से लाभ उठाना है उन्हें अकार्बनिक खादों का उपयोग कार्बनिक खाद के साथ ही करना चाहिए। एमोनियम सलफेट फसल लगाने या बोने के कुछ दिन पहले भी खेतों में डाल सकते हैं। सोडियम नाइट्रेट फसल के कुछ बढ़ जाने पर ही डालना चाहिए।

अन्य ना०-प्रधान अकार्बनिक खादों का अभी विशेष प्रचार नहीं हुआ है।

फा०-पूर्ता अकार्बनिक खाद

सुपरफासफेट—गंधक या फा० के अम्ल के साथ जो फा० की मिट्टी या हड्डियां गलाई जाती हैं और जो पदार्थ बनता है उसे फा० पे० की

मात्रानुसार सुपरफासफेट या डबल सुपरफासफेट कहते हैं। इसका फा० घुलनशील होता है जिससे पौधों को जल्दी लाभ पहुंचता है। इसमें फा० की मात्रा २० से ४० शतांश तक रहती है।

मात्रा—२५ सेर से ३० सेर फा० पे० प्रति एकड़ पहुंचे, इस प्रमाण से इसे डालना चाहिए।

पोटाश-पूर्ता अकार्बनिक खाद

भारत की अधिकांश भूमि में इस तत्त्व की कमी नहीं है, इसलिए ऐसे खादों का प्रचार विशेष नहीं हुआ है। आवश्यकता प्रतीत हो तो मन-सवा मन के लगभग पोटेशियम सल्फेट या पोटेशियस क्लोराइड के रूप में इन्हें डाल सकते हैं। अधिकतर इसके लिए राख ही डाली जाती है, जिससे कुछ फा० पे० भी पहुंच जाता है।

उपर्युक्त खादों के सिवाय कुछ ऐसे खाद भी मिलते हैं जिनसे दो या दो से अधिक तत्व प्राप्त किए जाते हैं—जैसे डाइमन फास, एमोफास, न्यूनोफास और नाइसीफास से ना० और फा०; पोटेशियम नाइट्रेट से ना० और पोटाश; राख से फा० और पोटाश और नाइट्रोफोस्का से ना०, फा० और पोटाश मिलते हैं। फा० की मिट्टी का उपयोग यद्यपि फा० की पूर्ति के लिए किया जाता है, तथापि उसमें कुछ भाग ना० और पोटाश का भी रहता है। तालाब की मिट्टी में भी तीनों तत्व पाये जाते हैं।

फा० की मिट्टी भारतवर्ष के सिंहभूम, हज़ारीबाग, त्रिचिनापली, नेलोर, मसूरी, के और राजस्थान के कुछ स्थानों में पाई जाती है। इसके छोटे-छोटे ढेले होते हैं, जिन्हें पीसकर खेतों में डालते हैं या उनसे सुपरफास-फेट बनाते हैं। ऐसी मिट्टी में २० से ४० शतांश तक फा० पे० रहता है। पीसकर खेतों में डालने से इसके फा० के अघुलनशील होने के कारण जल्दी लाभ नहीं होता परंतु धीरे-धीरे लाभ होता है।

मात्रा—पांच-छः मन प्रति एकड़ डालनी चाहिए।

अन्य कृत्रिम खाद के तत्वों की मात्रा का प्रमाण पहले दिया जा चुका है। उससे गणना करके इन्हें डाल सकते हैं। इसका उपयोग गोबर के खाद के साथ करना चाहिए। उनके द्वारा १०-१५ सेर ना० और २५ से ३० सेर फा० पे० प्रति एकड़ पहुंच जाना चाहिए।

राख में ४ से ६ शतांश पो० आ० रहता है और करीब २ शतांश फा० पे० भी रहता है। इससे गाजर, मूली, चुकंदर, आलू, शकरकंद, प्याज, बैंगन, मिर्च, मक्का आदि को अच्छा लाभ पहुंचता है। राख को बरसात से बचाकर रखना चाहिए नहीं तो पोटाश घुलकर बह जाता है।

मात्रा—आठ-दस मन राख प्रति एकड़ डालनी चाहिए।

खटिक अर्थात् चूने का खाद—अम्बलदार मिट्टी में अम्ल की शांति के लिए डालते हैं क्योंकि ऐसी मिट्टी में तरकारियां अच्छी नहीं होतीं। इसकी मात्रा के लिए कृषि-विभाग के किसी रसायनज्ञ से मिट्टी की जांच करा लेनी चाहिए और उसकी सम्मत्यनुसार इसे डालना चाहिए। जहां ऐसा करने की सुविधा न हो वहां कम-से-कम १०-१५ मन बुझाया हुआ चूना प्रति एकड़ डालकर देखना चाहिए। यदि इतने से भी लाभ न हो तो कुछ और डालना चाहिए।

हार्टवेल[1] साहब के प्रयोग में जिन-जिन तरकारियों को चूने से लाभ हुआ, उनका ब्योरा यह है :

(१) बीन, आलू, मूली, टमाटर, शलजम, शिकोरी, मक्का, पार्सली आदि को चूने की आवश्यकता नहीं होती या थोड़ा दे सकते हैं।

(२) गाजर, खीरा, गांठगोभी, मटर, कुम्हड़ा, एंडाइव, केल ब्रसेल्स स्प्राउट्स, चार्ड, कोलार्डस डेंडेलियन, रुबर्ब, स्क्वेश आदि को कुछ चूना चाहिए।

(३) ब्रोकोली, पत्तागोभी, फूलगोभी, बैंगन, खरबूजा, सरसों आदि को कुछ विशेष चूने की आवश्यकता होती है।

(४) एसपेरेगस, चुकन्दर, लीक, प्याज, लेट्यूस, पारस्निप, मिर्च,

[1] Rhode Island Bull. No.166 by Hartwell and Damon.

सेलेरी, साल्सीफाई, स्पिनेक आदि को अधिक चूने से अच्छा लाभ पहुंचता है।

इस खाद के वर्णन में खाद की मात्राएं प्रति एकड़ दी गई हैं, परंतु आजकल कोठियों तथा बंगलों के घेरों में छोटी-छोटी क्यारियों में भी साग-भाजी बहुत लगाई जाती है। ऐसे स्थानों के लिए निम्नलिखित मात्राएं डालनी होंगी :

गोबर का खाद तीन सेर प्रति वर्ग गज या खली का खाद दो छटांक प्रति वर्ग गज या सोडियम नाइट्रेट या एमोनियम सलफेट आधी छटांक प्रति वर्ग गज डालना चाहिए।

सुपरफासफेट—सुपरफासफेट पहले तीनों के साथ-साथ डाल सकते हैं। मात्रा १ छटांक प्रति वर्ग गज होनी चाहिए।

: ४ :

बीज और बोआई

तरकारी का अच्छा-बुरा होना अच्छे-बुरे बीज पर भी निर्भर है। बीज ऐसे होने चाहिए जो जल्दी अंकुर फेंक सकें, जिनमें दूसरे बीजों का समावेश न हो, जो कीट और व्याधिरहित और ठीक जाति-अनुसार तरकारियां पैदा कर सकें।

जिन बीजों से अंकुर जल्दी फेंके जाते हैं उनके पौधे स्वस्थ होते हैं और फसल भी जल्दी तैयार हो जाती है। दूसरी जाति के बीज मिले हुए होने से अनावश्यक पौधे खेतों में जम जाते हैं,जिससे निराई का व्यय बढ़ जाता है और मुख्य पौधों की बाढ़ में रुकावट होती है। कीटादि शत्रुओं से हानि पहुंचाये हुए बीज शक्तिहीन हो जाते हैं। ऐसे बीज या तो अंकुर फेंकते ही नहीं और यदि फेंक भी दें तो पौधे स्वस्थ नहीं होते। पौधों की बहुत-सी व्याधियां ऐसी होती हैं जिनके जंतु बीज के ऊपर या अंदर

रहकर खेतों में पहुंच जाते हैं और जब पौधे बड़े जाते हैं तो उनपर आक्रमण करते हैं। इसलिए जब बीज एकत्र किये जायं तो अच्छे स्वस्थ पौधों के बीज ही रखने चाहिए। जिस प्रकार की फसल पैदा करनी हो वैसी ही फसल देने योग्य बीज होने चाहिए। जहांतक हो सके, जिन फसलों के बीज भली-भांति तैयार किये जा सकें, उन्हें अपने बगीचों में ही तैयार करके सम्हालकर रखना चाहिए। बाहर से मंगाये बहुत-से बीज स्थानांतर और जलवायु के हेर-फेर से ठीक नहीं जमते और कई बार निराश होना पड़ता है। जिन तरकारियों के बीज निज के बगीचों में तैयार नहीं किये जा सकते उनके बीज के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए यदि खरीदे जायं तो बहुत ही भरोसेवाले व्यवसायी से खरीदना चाहिए।

बीजों के अंकुर फेंकने की शक्ति उनके परिपक्व होने, उनकी आयु तथा उनके रखने की रीति पर निर्भर है। अच्छे परिपक्व बीज पुष्ट अंकुर फेंकते हैं। पुराने बीजों की अपेक्षा नये बीजों में उत्पादन-शक्ति अधिक रहती है। कुछ तरकारियों के बीज एक साल से अधिक आयु के होने से जमते ही नहीं। जो बीज सावधानी से रखे जाते हैं उन्हें कीटादि शत्रु या वातावरण की तरी से हानि नहीं पहुंचती। वातावरण की तरी से बीजों को बचाना भी किसी-किसी जाति के बीजों के लिए अत्यंत ही आवश्यक है। इससे बचाने के लिए अच्छे बीज सुखा करके सूखे बंद बर्तन में रखने चाहिए। विशेष सावधानी के लिए बीज को सूखी राख या कोयले के चूर्ण में मिलाकर रख सकते हैं। कीटादि शत्रुओं से बचाने के लिए नेफ्थलीन की गोलियों का या गंधक के चूर्ण का उपयोग अच्छा होता है। सेरभर बीज के लिए दो-तीन और मनभर के लिए ५०-६० (करीब ३ छटांक) गोलियां ठीक होती हैं। जब गंधक का चूर्ण डाला जाय तो एक मन बीज में एक सेर चूर्ण डालना चाहिए। जिन बर्तनों में बीज रखे जायं उनके मुंह मोम या मिट्टी से बंद कर देने चाहिए ताकि हवा का अवागमन न हो।

बहुत-सी तरकारियां जैसे तरोई, लौकी, भिंडी आदि ऐसी हैं जिनके बीज फलों के साथ ही सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जिन तरकारियों के बीज न बोकर अन्य अंग बोये जाते हैं उनको सुरक्षित रखने की रीति तरकारियों के वर्णन में दी गई है।

स्मरण रहे कि सुरक्षित बीज भी सदा के लिए जीवित नहीं रह सकते। कौन-कौन-सी तरकारियों के परिपक्व सुरक्षित बीजों में कितने दिनों तक अंकुर फेकने की शक्ति बनी रहती है, यह निम्नलिखित ब्योरे से ज्ञात होगा :

१ वर्ष—प्याज, लीक, पार्सली, पारस्निप, साल्सीफाई।

२ वर्ष—गाजर, मटर, मिर्च, मक्का, एण्डाईव, पालक, खट्टा, पालक ग्लोब, आर्टिचोक, कोलार्डस।

३ वर्ष—एस्पेरेगस, बीन, सेम, गोभियां, ब्रोकोली, ब्रसेल्स स्प्रउट्स, केल, भिंडी, टमाटर, ककड़ी, सेलेरी।

४ वर्ष—चुकंदर, कद्दू, लेट्यूस, चार्ड, कशनी, मूली, शलजम, स्क्वेश।

५ वर्ष—बैंगन, ककड़ी खरबूजा, तरबूज।

अधिकांश जाति के बीज के अंकुर आठ-दस दिन में भूमि के बाहर निकल आते हैं। एस्पेरेगस, गाजर, पार्सली, पारस्निप इत्यादि के बीज कुछ समय अधिक लेते हैं, इसलिए उपर्युक्त अवधि में बीज न निकलते दिखाई दें तो अधिक समय नष्ट न कर दूसरे बीज गिरा देने चाहिए।

अंकुर फेंकने की शक्ति के सिवाय फसल की पैदावार बीज के आकार पर निर्भर है। अच्छे-बड़े बीजों से फसल जल्द तैयार होती है और पैदावार भी अधिक होती है। इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि बीज के लिए पौधे पहले से ही चुनकर छोड़ दिये जायं। उनमें से फल तरकारी के लिए नहीं तोड़ना चाहिए। बहुत-से लोग ऐसा करते हैं कि अच्छे-अच्छे फलों की तरकारी बना लेते हैं और बचे हुए जो कठोर हो जाते हैं या अन्य कारणों से तरकारी के योग्य नहीं होते उन्हें बीज के लिए छोड़ देते हैं। ऐसे फलों के बीज अच्छे पुष्ट नहीं होते और उनके बोने से तरकारियां

अच्छी नहीं होतीं।

बीज बोना—बहुत-सी तरकारियों के बीज खेतों में ही बोये जाते हैं और कुछके बीज थोड़ी-सी जमीन (नर्सरी) में पहले घने बोकर फिर जब पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं तो स्थानांतर कर देते हैं अर्थात् उस स्थान से हटाकर खेतों में लगा दिये जाते हैं। कुछ तरकारियां ऐसी भी होती हैं जैसे आलू, अर्वी, शकरकंद, परवल आदि जिनके बीज न बोकर पौधों के अन्य अंग ही लगाये जाते हैं। ऐसी तरकारियां सीधी खेतों में ही लगाई जाती हैं।

नर्सरी—स्थानांतर करने के पूर्व जिन तरकारियों के बीज थोड़ी-सी जमीन में घने बोये जाते हैं उस स्थान को नर्सरी कहते हैं।

नर्सरी क्यों बनाई जाती है ? जिन तरकारियों के पौधे बाल्यावस्था में कोमल होते हैं और जो खेतों की शीतोष्णता सहन नहीं कर सकते अथवा कीटादि शत्रुओं से अपना संरक्षण नहीं कर सकते, उन्हींकी रक्षा के लिए नर्सरी की आवश्यकता होती है। नर्सरी में उनका पालन-पोषण और उनकी रक्षा कृत्रिम उपायों से भली-भांति की जा सकती है। जब पौधे कुछ शक्तिशाली हो जाते हैं तब उन्हें खेतों में स्थान देते हैं। इसके सिवाय दूसरा लाभ यह होता है कि जिन खेतों में पौधे लगाने होते हैं उनकी जुताई के लिए समय अधिक मिल जाता है। इससे जुताई अच्छी हो जाती है और यदि कोई फसल खेत में हुई तो वह भी हटा ली जाती है।

नर्सरी बनाने की रीति—नर्सरी के लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। यदि मटियार हो तो उसमें बालू और यदि बलुआ हो तो उसमें मटियार मिट्टी मिला देनी चाहिए। इस मिट्टी में चाला हुआ सड़े पत्तों का खाद देना होता है। यदि मिट्टी में दीमक या अन्य कीट के होने की संभावना हो तो उसपर घास और पत्ते डालकर जला देना चाहिए ताकि वे कीट, उनके अंडे या कोष हों तो जल जायं। फिर कंकड-पत्थर चुनवा-कर फिकवा देने के बाद उस मिट्टी से नर्सरी बनानी चाहिए। यदि बीज बरसात में बोना हो तो नर्सरी की मिट्टी आसपास की भूमि से नौ-दस

इंच ऊंची होनी चाहिए। अगर मिट्टी काली हो और अधिक फटनेवाली हो तो ऐसी भूमि में नर्सरी ऊंची बनानी चाहिए और पानी बगल से नालियों द्वारा देना उत्तम होगा। ऐसा करने से मिट्टी फटेगी भी कम और रोपने के पौधे अच्छे मिलेंगे। जब नर्सरी बन जाय तो हजारे से पानी देकर छोड़ देनी चाहिए।

फिर दूसरे या तीसरे दिन ऊपर की दो-तीन-इंच मिट्टी दतार (रेक) से ढीली करके उसमें या तो पंक्तियों में या वैसे ही बीज छीटकर मिट्टी के साथ इस तरह मिला देना चाहिए कि वे ढक जायं। बरसात में नर्सरी के ऊपर छाया की आवश्यकता होती है कि जिससे पानी हानि नहीं पहुंचावे। गर्मी में यदि कड़ी धूप हो तो उससे बचाने के लिए छाया करानी चाहिए। बहुधा बोने के पश्चात् बीज पत्तों से ढक दिए जाते हैं ताकि वे गर्मी से जल्दी अंकुर फेंक दें। अंकुर फेंक देने के पश्चात् पत्ते हटा दिए जाते हैं। इसके बाद आवश्यकतानुसार निंदाई और सिंचाई करते रहना चाहिए। जाड़े या गर्मी में जो नर्सरी बनाई जाय वह बरसात की अपेक्षा कम ऊंची होनी चाहिए।

नर्सरी का आकार आवश्यकतानुसार होना चाहिये। प्रत्येक कार्य में सहूलियत हो, इसलिए लगभग चार-पांच फुट चौड़ी होनी चाहिए, जिससे दोनों किनारे से बीच की भूमि तक हाथ पहुंच सके। लंबाई आवश्यकतानुसार हो सकती है। दो नर्सरियों के बीच में एक फुट से डेढ़ फुट का मार्ग छोड़ना चाहिए, जिसमें फिरकर पौधों की देखभाल भली-भांति की जा सके और पानी आसानी से दिया जा सके। ऐसे मार्ग में बैठकर निंदाई और पौधों की छंटनी का कार्य भी अच्छी तरह हो सकता है।

बहुधा ऐसा भी होता है कि देवदारु के बक्स में या मिट्टी की कढ़ाइयों में बीज गिराये जाते हैं। ऐसे बक्स तीन-चार इंच गहरे होने चाहिए और उनमें चार भाग बलुआ मिट्टी और एक भाग सड़े पत्तों का खाद मिलना चाहिए। छोटे-छोटे बागीचों के लिए इस रीति से बीज गिराकर पौधे तैयार करना अच्छा रहता है। आवश्यकतानुसार बक्सों को

धूप या छाया में हटा सकते हैं और कीटादि शत्रु से बचाने के लिए उनपर कपड़े की जाली भी लगाई जा सकती है।

पौधों के रोपने का समय और रीति—साधारणतः नर्सरी में जब पौधे दो-तीन इंच ऊंचे हो जाते हैं तब उन्हें खेतों में लगाते हैं। कुछ तरकारियों के लिए न्यूनाधिक ऊंचाई रखी जाती है। किसी-किसीके पौधे दो बार नर्सरी में लगाए जाते हैं। गोभी के पौधों को कुछ लोग नर्सरी से निकालकर पंद्रह दिन के लिए दूसरे स्थान में नर्सरी की अपेक्षा कुछ विशेष अंतर पर लगाते हैं और फिर उस स्थान से उठाकर खेतों में लगाते हैं। ऐसा करने से पौधे और भी बलिष्ठ हो जाते हैं।

पौधों को एक स्थान से उखाड़ने पर उनमें निर्बलता आ जाती है। उस निर्बलता की स्थिति में व्याधियां उनपर आक्रमण करने लगती हैं। इसलिए उस समय उनकी रक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्हें धूप से बचाने का प्रबन्ध करना चाहिए। कोमल पौधों को रोपने के पश्चात् दो-चार दिनों के लिए उनपर पत्तों से छाया कर देनी चाहिए। रोपने के लिए संध्या का समय अच्छा होता है। इससे रातभर में पौधे कुछ सम्भल जाते हैं और दिन की धूप सहन करने योग्य हो जाते हैं। जहां बहुत ज्यादा रोपना हो वहां हो सके तो बादलोंवाला दिन अच्छा होता है। रोपते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधों की जड़ों के साथ डंडी का थोड़ा-सा भाग मिट्टी में जाने पावे। अधिक गहरा रोपना हानिकारक होता है। प्याज के जैसे पौधों को रोपते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्याज बननेवाले भाग का आधा हिस्सा बाहर और आधा मिट्टी के अंदर रहे।

सीधी खेतों में बोई जानेवाली तरकारियों के बीज कब, कितने, कितनी दूरी पर और कितनी गहराई पर बोने चाहिए ?

बीज से बीज और पंक्ति से पंक्ति का अंतर पौधों की ऊंचाई और उनके फैलाव पर निर्भर है। अच्छी उपजाऊ जमीन में बाढ़ अच्छी होती है, इसलिए दूरी कुछ बढ़ा देनी चाहिए। हल्की जमीन में कुछ नजदीक रोपना चाहिए। इसी तरह से जमीन की जाति, उसकी तरी और बीज के आकार का भी

ध्यान रखना चाहिए। जिस जमीन में तरी पूरी हो उसमें बीज कम गहराई पर बोना चाहिए। भारी मटियार में कम गहराई पर और बलआ में अधिक गहराई पर बोना ठीक होता है। बोने की गहराई बीज की जाति तथा उनके आकारानुसार पाव इंच से डेढ़ इंच तक होनी चाहिए। छोटे बीज कुछ ऊपर और बड़े कुछ गहरे बोना चाहिए।

आलू, हल्दी, शकरकंद, लहसुन आदि के बीज नहीं बोए जाते, बल्कि पौधों के अन्य अंग लगाए जाते हैं। इनके लगाने की रीति में बहुत भेद है। इसलिए प्रत्येक तरकारी के विवरण में ही उसे देखना चाहिए।

प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता—तरकारियों के बीज इतने छोटे-बड़े होते हैं कि सिर्फ अनुमान से काम नहीं चल सकता। बहुत-सी तरकारियों के बीज बड़े महंगे बिकते हैं और ऐसे बीज आवश्यकता से कम या अधिक नहीं खरीदे जायं, इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए। बीज का अन्दाज पौधों की दूरी, उनके वजन और गिनती के हिसाब से किया जा सकता है। इनके साथ-साथ बोने की रीति और बीज के अंकुर फेंकने की शक्ति का भी ध्यान रखना चाहिए। स्मरण रहे कि सब-के-सब बीज अंकुर नहीं फेंकते और जो फेंकते हैं उनमें सब-के-सब पौधे स्वस्थ नहीं होते और जो स्वस्थ होते हैं उनमें से कुछको कीटादि शत्रु हानि पहुंचाने में नहीं चूकते, ऐसी स्थिति में कम-से-कम बीस शतांश बीज अधिक मंगवाना चाहिए। कुछ तरकारियां ऐसी भी हैं जिनके पचास-साठ शतांश बीज ही पौधे देते हैं। इनमें से कुछ कीट वगैरा काट देते हैं। ऐसी स्थिति में बीज बहुत बोने पड़ते हैं। गोभी, टमाटर, बैंगन, मिर्च इत्यादि के बीज की गणना उपर्युक्त श्रेणी में की जा सकती है।

कुछ तरकारियां ऐसी भी होती हैं जिनके बीज सीधे खेतों में भी बोए जा सकते या नर्सरी में भी लगाये जा सकते हैं। ऐसे बीजों के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि जब बीज खेतों में बोये जायं तो नर्सरी में बोये जानेवालों से अधिक बोना चाहिए।

पौधों की गिनती और बीज का अनुमान जल्दी से ज्ञात हो जाय

इसके लिए आगे दो सारणियां दी जाती हैं ;

पौधों की दूरी और संख्या प्रति एकड़

पंक्ति से पंक्ति का अन्तर		पौधे से पौधे का अन्तर		संख्या प्रति एकड़
फुट	इंच	फुट	इंच	
०	६	०	६	१,७४,२४०
०	९	०	९	७७,४४०
१	०	०	६	८७,१२०
१	०	१	०	४३,५६०
१	६	०	६	५८,०८०
१	६	१	०	२९,०४०
१	६	१	६	१९,३६०
२	०	०	६	४३,५६०
२	०	१	०	२१,७८०
२	०	१	६	१४,५२०
२	०	२	०	१०,८९०
३	०	०	६	२९,०४०
३	०	१	०	१४,५२०
३	०	१	६	९,६८०
३	०	२	०	७,२६०
३	०	२	६	५,८०८
३	०	३	०	४,८४०
४	०	०	६	२१,७८०
४	०	१	०	१०,८९०
४	०	१	६	७,२६०
४	०	२	०	५,४४५

पंक्ति से पंक्ति का अंतर		पौधे से पौधे का अंतर		संख्या प्रति एकड़
फुट	इंच	फुट	इंच	
४	०	३	०	३,६३०
४	०	४	०	२,७२२
५	०	५	०	१,७४२
६	०	६	०	१,२१०
८	०	८	०	६८०
१०	०	१०	०	४३५

निम्नलिखित सूत्र से यह गणना सरलता से की जा सकती है।

$$\text{संख्या पौधे प्रति एकड़} = \frac{४३५६०}{\left.\begin{matrix}\text{पंक्तियों का अंतर}\\ \text{फुट में}\end{matrix}\right\} \times \left\{\begin{matrix}\text{पौधों का अंतर}\\ \text{फुट में}\end{matrix}\right.}$$

उदाहरण— $\frac{४३५६०}{२ \times २} = \frac{४३५६०}{४} = १०८९०$ पौधे प्रति एकड़

संख्या बीज प्रति छटांक और आवश्यक बीज प्रति एकड़ और प्रति १०० फुट लंबाई

नाम तरकारी	संख्या बीज प्रति छटांक	आवश्यक बीज	
		प्रति एकड़	प्रति १०० फुट
अजवाइन	६०,०००	५ सेर	१ तोला
अदरक		१२ मन	१५० टुकड़े
अरारूट		२० मन	१०० टुकड़े
अर्वी		१०-१२ मन	५० गांठें
आर्टिचोक ग्लोब	१,०००	५ से ६ छटांक	१ तोला
,, जेरुसेलम (कच्चू)		५-६ मन कच्चू के टुकड़े	१०० टुकड़े
आल (लौकी)	४५०	१ सेर	१ तो०
आलू		२० मन (पहाड़ी)	३ सेर
		१२ मन (देशी)	२ सेर
उच्चे		३ सेर	२ तो०
एण्डाईव	२७,०००	१ सेर	१ तो०
ऐस्पेरेगस	२,०००	२ से ३ सेर	१ तो०
ककड़ी (रैंता)	२,०००	१ सेर	१ तो०
कद्दू	४५०	२ सेर	२ तो०
,, विलायती		२ सेर	२ तो०
,, भूरा(शिशकुम्हड़ा)	८००	१ सेर	१ तो०
करेला	४००	३ सेर	२ तो०
कलौंजी	२४,०००	१० सेर	२ तो०
किराओ	९००	२० सेर	२ छटांक
कुसुम	१,८००	१० सेर	२ तो०
कुलफा		३ सेर	१ तो०
केल	१०,०००	१० छटांक	२ तो०
केला		४०० पौंच	१० पौंच
कोलाड्स	१७,०००	३ छटांक	२ तो०
क्रेस	१,००,०००	३ सेर	१ तो०
खरबूजा	२,४००	१ सेर	१ तो०

नाम तरकारी	संख्या बीज प्रति छटांक	आवश्यक बीज	
		प्रति एकड़	प्रति १०० फीट
खसखस	१२,००,०००	२ सेर	१ तो०
खिसारी	१,१५०	१ मन	१ छ०
खीरा	२,०००	८ छटांक	२ तो०
खीरा गोल		,,	२ तो०
गराडू		१०-१५ मन	४० टुकड़े
गाजर	५०,०००	१ सेर ८ छटांक	१ तो०
गोभी गांठ	१४,०००	२ सेर	१ तो०
,, चीनी	४०,०००	३ छटांक	१ तो०
,, फूल	१६,०००	२ छटांक	१ तो०
,, बंधा	१०,०००	२ छटांक	१ तो०
ग्वार	१,७५०	८ सेर	१ छ०
चना	५००	१ मन	१ छ०
चंवली	४५०	८ सेर	१ छ०
चिचड़ा		४ सेर	२ तो०
चुकंदर	३,५००	३ सेर	२ तो०
चौलाई	७०,०००	३ सेर	१ तो०
जीरा सफेद	१,४००	७ सेर	२ तो०
,, स्याह		६ सेर	२ तो०
टमाटर	१५,०००	२ छटांक	१ तो०
तरबूज	४५०	१ सेर ८ छटांक	१ तो०
तरोई	८००	२ सेर	१ तो०
घीया तरोई	८००	२ सेर	१ तो०
तूवर अरहर	६००	१० सेर	१ छटांक
दिलपसन्द (टिंडा)		२ सेर	१ तो०
धनिया	८,०००	८ सेर	२ तो०
पटुआ		५ सेर	२ तो०
पपैया (पपीता)		४०० पौधे	१० पौधे
परवल		१०० लता के टुकड़े	२० टुकड़े

नाम तरकारी	संख्या बीज प्रति छटांक	आवश्यक बीज	
		प्रति एकड़	प्रति १०० फीट
पारस्निप	५,६००	२ सेर	१ तो०
पालक	६,०००	४ सेर	२ तो०
,, खट्टा		३ सेर	२ तो०
पार्सली	३५,०००	२ सेर	१ तो०
प्याज़	२०,०००	२ सेर ८ छटांक	१ तो०
फूट	२,०००	८ छटांक	१ तो०
बथुआ		४ सेर	१ तो०
बैंगन	१०,०००	५ छटांक	१ तो०
ब्रसेल्स स्प्राउट्स	१३,०००	३ छटांक	१ तो०
ब्रोकोली	१४,०००	२ छटांक	१ तो०
भिण्डी	८५०	५ सेर	१ छटांक
मटर	२०० से ३००	२० सेर देशी	३ छटांक
मक्का	३५०	१० सेर	२ छटांक
मिर्च	१०,०००	१०-१२ छटांक	१ तो०
मूली	,,	४ सेर	१ तो०
मेथी	६,५००	१५ सेर	२ तो०
मोगरी		२ सेर	१ तो०
रतालू		१५ मन	३० टुकड़े
राई	३२,०००	५ सेर	१ तो०
रुटे बागा	२२,०००	१ सेर	१ तो०
रूबर्ब	३,६००	२ सेर	१ तो०
लहसुन		१० मन गांठें	१०-१२गांठें
लीक	१६,०००	२ सेर	१ तो०
लेट्यूस	३२,०००	२ सेर	१ तो०
शकरकंद		२०,००० लता के टुकड़े	७० टुकड़े
शलजम	२२,०००	१ सेर ८ छटांक	१ तो०
शिकोरी	५०,०००	२ सेर	१ तो०
शेरविल		२ सेर	१ तो०

नाम तरकारी	संख्या बीज प्रति छटांक	आवश्यक बीज	
		प्रति एकड़	प्रति १०० फीट
सरसों पीली	१४,०००	५ सेर	१ तो०
,, सफेद		६ सेर	१ तो०
साग कुलफा		३ सेर	१ तो०
,, मरसा	७०,०००	३ सेर	१ तो०
,, लाल	,,	३ सेर	१ तो०
सायबीन	१,२००	१० सेर	१ छटांक
साल्सीफाई	६,०००	४ सेर	१ तो०
सेम	२००	१० सेर	१ छटांक
,, फ्रेंच बीन	२००	१५ सेर	१ ,,
,, बकला बीन		१५ सेर	२ ,,
,, ब्राड बीन	२५	२० सेर	४ ,,
,, स्कारलेट रनर बीन	२४	१५ सेर	४ ,,
सुथनी		१२ मन	१०० गांठें
सूरन (ओल)		७५ मन प्रथम	वर्ष में[1]
सेलेरी	१००,०००	३ छटांक	१ तो०
सोआ		१० सेर	१ छटांक
सौंफ बड़ी		८ सेर	१ ,,
,, छोटी		५ सेर	१ ,,
स्वेश गर्मीवाली	८००	२ सेर	२ तो०
,, जाड़ेवाली	८००	२ सेर	२ ,,
हल्दी		१२ मन हरी गांठें	१०० गांठें

[1] इस बीज से दूसरे साल में लगभग ५ एकड़ और चौथे में १० एकड़ जमीन रोपी जा सकेगी।

: ५ :

निंदाई, निराई या सोहनी

निंदाई का मुख्य अभिप्राय खेतों में से घास-पात निकालने और ऊपर की मिट्टी को कुछ ढीली करने से है। खेतों में अनावश्यक पौधे होने ही नहीं देना चाहिए। उन्हें तरकारियों के शत्रु समझना चाहिए क्योंकि जो पानी और खाद्य पदार्थ खेतों में तरकारियों के लिए रहता है उसमें वे हिस्सा बटाते हैं, पौधों की बाढ़ को रोकते हैं और उन्हें हानि पहुंचाने-वाले कीटादि शत्रुओं को शरण देते हैं। प्रकाश तथा वायु के हेरफेर में भी इनकी उपस्थिति से अंतरागमन होता है। ऊपर की मिट्टी ढीली रखने से हवा का आवागमन होता रहता है। जमीन का पानी जल्दी से उड़ने नहीं पाता और यदि कहीं थोड़ी वर्षा होजाय तो वह पानी जमीन में सोख लिया जाता है, बहकर वृथा नहीं चला जाता। कुछ अंश तक पौधों का भोजन भी इस क्रिया से तैयार होता है।

निंदाई का समय और उसकी रीति—जब फसल के पौधे छोटे रहें तब निंदाई कम गहरी और जल्दी-जल्दी करनी चाहिए। ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ते जायं निंदाई का समय और गहराई भी बढ़ाई जा सकती है। छोटे-छोटे पौधों के समय यदि निंदाई में देर की जाय तो दूसरे अनावश्यक पौधे अधिक बढ़ जाते हैं। इन्हें निकालने के लिए फिर गहरी निंदाई करनी पड़ती है, जिससे छोटे-छोटे पौधों की जड़ों को हानि पहुंचती है।

निंदाई के समय जंगली पौधों के उखाड़ने या जमीन की पपड़ी तोड़ने से ही काम नहीं चलता। तरकारी के पौधे जो आवश्यकता से अधिक हों उनकी छंटनी भी करनी चाहिए। फसल में किसी प्रकार की व्याधि या कीड़ा लग जाय तो उसकी ओर ध्यान रखकर उचित चिकित्सा करनी चाहिए। असाध्य व्याधि हो तो रोगग्रस्त पौधों को नष्ट ही कर देना उचित है। जिन पौधों को सहारे की आवश्यकता हो उनके लिए बांस की टट्टियां

या सूखी टहनियां लगाने का प्रबन्ध करना चाहिए। जो लताएं इधर-उधर फैल रही हों उन्हें टट्टियों पर या पारियों पर चढ़ाना हो तो चढ़ा देना चाहिए। बहुत-सी पत्तियां यदि जमीन पर बिना हिलाये-डुलाये छोड़ दी जायं तो वे जगह-जगह जड़े फेंक देती हैं, जिससे पैदावार कम हो जाती है। ऐसी पत्तियों को कभी-कभी उठाकर देख लेना चाहिए। बार-बार उठाते रहने से ये जड़ें फेंकने नहीं पातीं। जिनमें पौधों पर मिट्टी चढ़ाने की आवश्यकता हो उनपर मिट्टी चढ़ाना, जिनमें बढ़ती हुई शाखा के ऊपरी भाग को तोड़ना हो उन्हें तोड़ने या जिनमें पत्ते या डंडियां सफेद (Bleaching) करनी हो तो उसका प्रबन्ध करना इत्यादि सभी क्रियाओं की ओर निंदाइ के समय ध्यान रखना चाहिए।

निंदाई के औजार

घास-पात निकालने के लिए अधिकतर खुर्पी काम में लाई जाती है। जहां पौधों के बीच का अंतर थोड़ा हो वहां खुर्पी से काम लेना चाहिए। परंतु जहां अंतर अधिक हो वहां हाथ से चलानेवाला हो (Hoe) अच्छा काम देता है। तरकारी की खेतीवालों के लिए यह बहुत ही उपयोगी है। इससे काम बहुत जल्दी होता है। मिट्टी चढ़ाने के लिए कहीं-कहीं छोटे हलों का भी उपयोग किया जाता है। थोड़ी जगह पर मिट्टी बढ़ाने के लिए कुदाला या कांटे भी अच्छे होते हैं।

: ६ :

सिंचाई

तरकारी की खेतीवालों के लिए सिंचाई का पूर्ण प्रबन्ध करने का प्रश्न बड़ा ही महत्त्व का है। इस व्यवसाय की सफलता या असफलता अधिकतर सिंचाई के ऊपर ही निर्भर है। बरसाती जल के आधार पर यह कार्य नहीं छोड़ा जा सकता। भारतवर्ष में बिहार और बंगाल-जैसे प्रांतों

में कुछ स्थान ऐसे हैं जहां की उपजाऊ जमीन में तरी अच्छी रहती है और बहुत-सी तरकारियां बिना सिंचाई के पैदा की जा सकती हैं; परंतु फिर भी कुछ तरकारियों को पानी देना ही पड़ता है। इस पुस्तक में जितनी तरकारियों का वर्णन है उनमें से लगभग ८० शतांश तरकारियां पूसा[१] के निकटवर्त्ती स्थानों में बिना सिंचाई के ही पैदा की जाती हैं। परंतु ऐसी स्थिति अन्य स्थानों में नहीं है। कई स्थान तो ऐसे हैं जहां बिना सिंचाई के कोई भी तरकारी पैदा नहीं की जा सकती।

सिंचाई के लिए जल की प्राप्ति—इस कार्य के लिए जल चार रीति से प्राप्त किया जा सकता है :—

(१) वृष्टि से।

(२) नहर द्वारा, नदी-नाले, प्राकृतिक झरने या तालाब से।

(३) कुओं से।

(४) शहरों की मोरियों से।

(१) यद्यपि वृष्टि के ऊपर कृषकों का अधिकार नहीं है, तथापि वृष्टि द्वारा प्राप्त किये हुए जल को उचित प्रकारों से भूमि में संचित रखना मनुष्याधीन है। वृष्टि की जब संभावना हो उससे पहले ही भूमि जोत-जुताकर ऐसी तैयार रखनी चाहिए कि जिसमें जल जल्दी से सोख जाय और बाहर बहने न पाये। जब वृष्टि समाप्त होजाय और सूर्य की तेज़ी से भूमि के जल का उड़ना प्रारंभ हो तो उस समय भूमि की पपड़ी तोड़-कर ऊपर की कुछ मिट्टी ढीली कर दी जाय तो पानी का उड़ना कुछ कम हो जाता है। इस प्रकार की सिंचाई को स्वाभाविक सिंचाई कहना चाहिए। दूसरी युक्तियां, जो जल प्राप्त करने की हैं, वे कृत्रिम हैं।

---

[१] सन् १९३६ तक भारत-सरकार की मुख्य कृषि-प्रयोगशाला (Imperial Agricultural Research Institute) पूसा (बिहार) में थी और अब दिल्ली में है। सन् १९४६ से Imperial शब्द के स्थान पर Indian कर दिया गया है।

(२) कृत्रिम रीतियों में यदि पानी नदी, नाले, तालाब या प्राकृतिक झरनों से नहरों द्वारा प्राप्त किया जा सके तो अच्छा ही है; परंतु यदि ऐसा न हो सके तो एंजिन और पम्प द्वारा ऐसे स्थानों से प्राप्त करना चाहिए।

(३) जहां पानी की सतह नज़दीक हो और दस-पांच फुट पर ही पानी निकल आये तो थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुएं खुदवाकर मजदूरों द्वारा ढेकुली से सिंचाई करायी जा सकती है। परंतु यदि पानी गहरा हो तो अच्छा पक्का जलाशय बनवाना चाहिए। एक अच्छे कुएं से दस एकड़ की सिंचाई अच्छी तरह से हो सकती है।

(४) शहरों में आजकल मैला और मोरियों का पानी नलों द्वारा शहर से बाहर ले जाया जाता है और वहां पर कुछ रासायनिक उपचार और सूक्ष्म जंतुओं द्वारा जल-मिश्रित पदार्थों का विच्छेदन कराकर उससे तरकारियां सींची जाती हैं।

पानी उठाने के उपचार—नहरों से जहां सिंचाई होती है वहां बहुधा भूमि की सतह पानी की सतह से नीचे होती है। जिससे पानी खेतों में भली-भांति दौड़ जाता है। कहीं-कहीं जहां भूमि ऊंची होती है वहां इन नहरों से भी जल ऊपर उठाना पड़ता है। गहरे कुएं या नदी-नालों से पानी कई युक्तियों से ऊपर उठाया जा सकता है जिनमें की प्रधान युक्तियां निम्नलिखित हैं, जो पानी की गहराई तथा सिंचाई के क्षेत्रफलानुसार काम में लाई जा सकती हैं :

पानी ऊपर उठाने के लिए मनुष्य, पशु, वायु, विद्युत, वाष्प या तेल की शक्ति काम में लाई जा सकती है।

मनुष्य की शक्ति से चलाये जानेवाले यंत्र

टोकरी, डोन, ढेकुली, चेन पम्प, सक्शन या फोर्स पम्प, और किफायत रहट।

टोकरी—यह एक सूपाकार टोकरी होती है, जिसके चारों कोनों पर रस्सियां बांध दी जाती हैं। दो आदमी आमने-सामने ऊंची जमीन पर खड़े

होकर अपनी-अपनी ओर की रस्सी पकड़े रहते हैं और बार-बार पानी वाले गढ़े में टोकरी को डुबाकर पानी को ऊपर फेंक देते हैं जहां से बहकर वह खेतों में चला जाता है। एक टोकरी में करीब २० सेर पानी रहता है और प्रत्येक मिनिट में यदि ठीक से काम किया जाय तो २० टोकरी पानी बाहर फेंका जा सकता है। सात-आठ फुट की ऊंचाई तक इससे पानी उठाया जा सकता है।

डोन—यह नौका-जैसी लोहे या लकड़ी की बनी हुई होती है जिसका एक मुंह खुला रहता है जो जमीन की सतह पर दो खूंटों से ढीली रस्सी से बांध दिया जाता है। दूसरे मुंह पर, जो बन्द रहता है, एक रस्सी बांध दी जाती है जिसका दूसरा छोर एक बांस के मुंह से बंधा रहता है। इस बांस के बीच का भाग एक मोटी गाड़ी हुई लकड़ी पर घूमता रहता है और दूसरे मुंह पर कुछ वजन बांध देते हैं ताकि भरी हुई डोन आसानी से उठ सके। एक आदमी पानी की सतह के निकट तख्तों पर खड़ा रह-कर पांव से डोन को बार-बार पानी में डुबो देता है। बांस के दूसरी ओर के वजन से वह ऊपर उठ जाती है और खुले हुए मुंह की ओर से पानी बाहर फेंक देती है। इस युक्ति से पांच-छः फुट तक का पानी उठाया जा सकता है और यदि आदमी अच्छा काम करता रहे तो एक घंटे में सौ मन पानी फेंक सकता है।

ढेकुली—डोन से जिस प्रकार काम लिया जाता है उसी भांति इससे भी लेते हैं। जिस रस्सी से डोन का मुंह बांधा जाता है उसमें एक लोहे का बर्तन गोल और नोकीली पेंदीवाला बांध देते हैं ताकि जमीन पर रखते ही लुढककर खाली हो जाय। एक आदमी बर्तन को बार-बार पानी में डुबो देता है और फिर उठाकर थाले पर रख देता है जहां लुढक-कर वह खाली हो जाता है और पानी खेतों में बह जाता है। यह युक्ति १५ फुट की गहराई तक काम दे सकती है। एक घंटे में पचास-साठ मन पानी उठाया जा सकता है।

चेन पम्प—इसमें एक नल करीब तीन इंच व्यास का जमीन की सतह

से पानी में डुबता रहे इतना लंबा लगाया जाता है। उस नल के बीचसे एक जंजीर एक चक्के पर चलती रहती है और अपने साथ पानी खीचकर ऊपर ले आती है। चक्का धुरी पर घूमता रहता है जिसे एक या दो आदमी घुमाते रहते हैं। जंजीर में कहीं-कहीं लकडी और चमड़े के टुकड़े लगे रहते हैं जो पानी को वापस गिरने से रोककर ऊपर ले आते हैं। इस नल का मुंह सूप के आकार-जैसे चौखटे में खुलता है जिसके द्वारा पानी बहकर खेत की राह लेता है। इस पम्प से प्रति घंटा करीब १५० मन पानी आठ-दस फुट की गहराई से उठाया जा सकता है।

सक्शन या फोर्स पम्प—इनसे २५ से ३० फुट की गहराई तक का पानी उठाया जा सकता है। इनमें आदमी पम्प के दस्ते को चलाया करते हैं जिससे पानी ऊपर उठ आता है। ऐसे पम्प कई प्रकार के होते हैं और नित्य-नये बनते रहते हैं। इसलिए कितने घंटे में कितना पानी उपर उठेगा इसका अनुमान यहां नहीं किया जा सकता। इसकी जानकारी पम्प-विक्रेता से प्राप्त करनी चाहिए।

किफायत रहट[1]—इस यंत्र में लगभग एक सौ छोटी-छोटी बाल्टियां

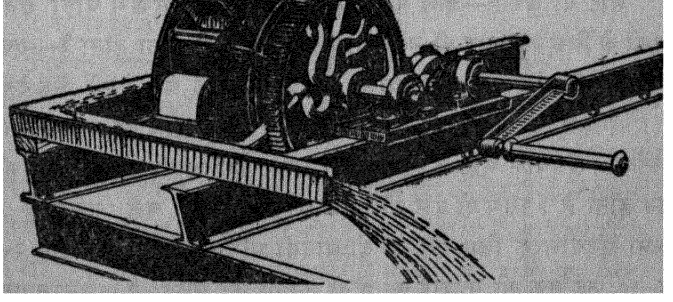

लगी रहती हैं प्रत्येक बाल्टी में करीब सवा सेर जल रहता है। इस यंत्र

[1] किफायत रहट किर्लोसकर बंधु से प्राप्त किया जा सकता है।

द्वारा चालीस फुट की गहराई का पानी एक घंटे में करीब एक सौ मन बाहर फेंका जा सकता है। छोटे बगीचों के लिए यह बड़े काम का यंत्र है।

पशु-शक्ति से चलाए जानेवाले यंत्र

(१) चेन पम्प (२) सक्शन पम्प (३) रहट (४) मोट या चरस।

चेन पम्प और सक्शन पम्प ऐसे ही होते हैं जैसे हाथ से चलानेवाले; पर ये कुछ बड़े होते हैं। इनके चलाने में शक्ति कुछ विशेष लगती है, इसलिए पशुओं की शक्ति का उपयोग किया जाता है। गियर नाम की एक कल द्वारा ये चलाये जाते हैं जिसे ऊख पेरने की चरखी की भांति दो जोड़ी बैल से चलाते हैं।

रहट—यह एक प्रकार का लकड़ी या लोहे का पहिया होता है, जिसपर रस्सी से बंधी हुई मिट्टी या धातु की बाल्टियां लटका दी जाती हैं। खाली बाल्टियां उल्टी लटकती हुई पानी में चली जाती हैं और भरी हुई ऊपर आते ही उलटकर अपना पानी एक चौखटे में डाल देती हैं जहां से वह बहकर खेत की ओर चला जाता है। इसमें एक या दो पशु की आवश्यकता होती है। इससे तीन-तीन फुट का पानी भली-भांति ऊपर उठाया जा सकता है। यदि पानी थोड़ा और रहट छोटा हुआ तो आदमी भी चला सकते हैं।

मोट या चरस—अन्य यंत्रों की अपेक्षा हमारी समझ में थोड़ी खेती वालों के लिए यह बहुत ही उपयोगी है। यह दो प्रकार का होता है—एक सूंडदार और दूसरा बिना सूंडवाला। सूंडदार अपने आप पानी फेंक देता है। बिना सूंडवाले को खाली करने के लिए एक आदमी की आवश्यकता होती है। सूंडवाले मोट के उपयोग में समय कम लगता है और व्यय भी कम होता है। इसमें दो बैल और एक आदमी से काम चल सकता है। बिना सूंडवाले के लिए एक या दो आदमी अधिक लगते हैं। मोट से २० से ८० फुट तक की गहराई का पानी उठाया जा सकता है। मोट बहुधा चमड़े का होता है परंतु अब कहीं-कहीं लोहे का भी बनाया जाता है।

मोट से कितना पानी उठाया जा सकता है यह मोट के आकार तथा

जल की गहराई पर निर्भर है। साधारण मोट में करीब चार मन पानी समा सकता है, जिसका एक चतुर्थांश के लगभग हिलने-डुलने और चू जाने से ऊपर आते तक फिर कुएं में लौट जाता है। इस हिसाब से करीब तीन मन पानी प्रति मोट बाहर फेंका जाता है। कहीं-कहीं मोट इतना छोटा होता है कि जिसमें सिर्फ तीन मन पानी समाता है और कहीं-कहीं इतना बड़ा होता है जिसमें आठ मन पानी आ जाता है। ऐसे बड़े मोट के लिए दो जोड़ी बैल की आवश्यकता होती है। साधारण मोट से पचीस-तीस फुट का पानी उठाना हो तो एक दिनमें आधे से पौन एकड़ तक की सिंचाई हो सकती है। मोट के आकार, जल की गहराई तथा बैल की चाल से पाठक स्वयं इसका अनुमान कर सकते हैं।

आजकल लोहे की चद्दर के मोट भी बनते हैं। ये भी दो प्रकार के होते हैं। एक गोलाकार जिसकी पैंदी में चमड़े की सूंड लगानी होती है और दूसरा आयताकार लेकिन एक ओर से तिरछा होता है। जहां चमारों का अभाव हो मोट के फटने पर सीने से कठिनाई मालूम हो वहां लोहे का मोट अच्छा होता है। चमड़े के मोट से यह सस्ता भी पड़ता है।

मोट की देखभाल—बरसात के दिनों में मोट पर तिल का तेल अवश्य लगाना चाहिए और जब काम में लाया जाय उस समय भी लगाना चाहिए। नये मोट के लिए करीब चार सेर और पुराने के लिए दो सेर तेल की आवश्यकता होती है।

रामचन्द्र वाटर लिफ्ट—यह पानी उठाने का ऐसा यंत्र है जिसमें चरस की जगह एक लोहे की डोल लगी रहती है और चरस की भांति चकरी पर चलाई जाती है। इसमें बैलों को आगे-पीछे या मुड़कर नहीं चलना पड़ता। बैलों के चलने के ढालू मार्ग में रेल की पटरी जैसी लगाई जाती है। इसपर चार चक्के वाली एक ट्राली रहती है, जिसमें लकड़ी के तख्ते जड़े होते हैं। जब डोल भर जाती है तो बैल को ट्राली पर खड़ा कर दिया जाता है। बैल के वजन से ट्राली नीचे चली जाती और डोल ऊपर आकर खाली हो जाती है, जब बैल ट्राली पर से उतर जाता है तो

डोल धीरे-धीरे फिर पानी में चली जाती है। बैल पास के मार्ग से ऊपर आकर फिर ट्राली पर खड़ा हो जाता है। ट्राली चल पड़ती है और भरी हुई डोल ऊपर आ जाती है।

वायु, विद्युत, वाष्प या तेल की शक्ति का उपयोग

जहां हवा बराबर चलती रहती है वहां पम्प द्वारा पवन-चक्की से पानी ऊपर उठाया जा सकता है। परंतु इसका प्रचार भारतवर्ष में विशेष नहीं हो सकता क्योंकि यहां हवा नियमित रूप से नहीं चलती।

विद्युत, वाष्प या तेल की शक्ति के उपयोग के लिए एंजिन की आवश्यकता होती है। ऐसे एंजिन और पम्प द्वारा सौ-डेढ़ सौ फुट का पानी ऊपर उठाया जा सकता है। इनका मूल्य इनके विक्रेता से मालूम किया जा सकता है। उन्हें निम्नलिखित बातों की सूचना दे देने से वे उचित पम्प और एंजिन की सलाह दे सकते हैं :—

(१) कुएं की लंबाई-चौड़ाई या व्यास और गहाई का ब्योरा। (२) गर्मी में पानी की सतह कितनी नीची रहती है। (३) बरसात में पानी कितनी ऊंचाई तक आ जाता है। (४) कुएं के मुंह से पानी कितना ऊपर फेंकना होगा। (५) पम्प में मोड़ कितने लगने होंगे। (६) यदि एंजिन हो और पम्प मंगाना हो तो एंजिन के शक्तिसंचालन, पहिये का व्यास और प्रति मिनट वह कितने चक्कर लगाता है इसका ब्योरा देना चाहिए।

(७) प्रति मिनट पानी कितना फेंकना होगा।

पानी की चाह कितनी होगी यह निम्नलिखित रीति से निकाली जा सकती है :—

सिंचाई के लिए एक बार में कम-से-कम आधा इंच और अधिक-से-अधिक दो-ढाई इंच पानी दिया जाता है। एक इंच पानी देना हो तो एक एकड़ के लिए एक सौ टन पानी होता है। इस हिसाब से एक दिन में कितने एकड़ सींचने होंगे इसका निश्चय करके पानी की चाह का अनुमान कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए समझिए, किसी व्यक्ति को दस एकड़ जमीन पर एक इंच पानी नित्यप्रति देना है तो उसे नित्य १००० टन पानी चाहिए। मान लिया जाय कि पम्प १० घंटे रोज चलता है तो प्रति मिनट $\frac{१०००}{१०\times६०}=\frac{५}{३}$ टन या ३७३.३ गैलन पानी मिलना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को पम्प मंगाते समय यह लिखना चाहिए कि ऐसा पम्प हो जो करीब ३७५ गैलन पानी प्रति मिनट बाहर फेंक सके। (एक गेलन पानी लगभग पांच सेर होता है।)

दस एकड़ के बगीचे के लिए मोट ही उत्तम होता है; परंतु फिर भी यदि किसी की इच्छा हो तो ऊपर लिखी हुई रीति से गणना करके पम्प मंगवा सकते हैं। ऐसे बगीचों में प्रतिदिन एक एकड़ की सिंचाई काफी होगी।

सिंचाई की रीति—सिंचाई चार प्रकार से की जा सकती है :

(१) ऊपर से जल का छिड़काव।

(२) क्यारियों में जल देना।

(३) नालियों द्वारा सिंचाई करना।

(४) मिट्टी के अंदर दबाए हुए झिरझिरे (porous) नलों द्वारा।

पहली रीति भारतवर्ष में सिर्फ नर्सरी या गमलों की सिंचाई के काम में लाई जाती है जिसमें हजारे से पानी दिया जाता है। अमरीका में कहीं-कहीं खेत-के-खेत इस रीति से सींचे जाते हैं। खेतों में पांच-छः फुट की ऊंचाई पर नल लगाए जाते हैं जिनमें छिद्र रहते हैं। उन्हीं छिद्रों द्वारा बहुत महीन जल की धाराएं फव्वारे की भांति उड़ती रहती हैं। नल इतनी दूरी पर लगाए जाते हैं कि जिसमें दोनों ओर की धाराओं से बीच की सब जमीन की सिंचाई हो सके। इस प्रकार की सिंचाई में जल का व्यय तो कुछ अधिक होता है, क्योंकि कुछ भाग हवा में उड़ जाता है, परंतु लाभ यह है कि पौधों के आसपास की हवा कुछ ठंडी हो जाती है और पौधे धुल

जाते हैं जिससे उनकी बाढ़ अच्छी होती है। विशेष लाभ यह है कि जमीन यदि ऊंची-नीची हो अर्थात् समतल न हो तो इस प्रकार की सिंचाई से अच्छा काम चलाया जा सकता है।

दूसरी रीति से नालियों द्वारा क्यारियों में जल पहुंचाया जाता है और वे भर दी जाती हैं। क्यारियां साधारणतः पंद्रह-बीस फुट लंबी और आठ-दस फुट चौड़ी होती हैं। परंतु जमीन के ढालानुसार इनका आकार बढ़ाया-घटाया जा सकता है। इस रीति से जहां पानी दिया जाता है वहां की भूमि समतल होनी चाहिए। अधिक ढालू जमीन में यह रीति काम नहीं दे सकती। इस प्रकार की सिंचाई में पानी का व्यय भी कुछ विशेष होता है।

तीसरी रीति में तरकारियां पारियों पर या नालियों में लगाई जाती हैं और नालियां पानी से भर दी जाती हैं। इस रीति में पानी कुछ कम देना पड़ता है। यह समतल तथा ऊंची-नीची जमीन में भी काम में लाई जा सकती है। इसमें इतना ध्यान रखना चाहिए कि पानी देनेवाली नालियां ढाल से समकोण पर रहें। ढाल के समानांतर यानी ऊंचाई से निचाई की ओर रक्खी जायगी तो पानी नीचे की ओर जमा हो जायगा और ऊपर-वाले पौधों को पूरा जल नहीं मिलेगा।

उपर्युक्त दोनों रीतियों में से किसे काम में लाना चाहिए यह जमीन के ढाल या तरकारी की जाति पर निर्भर है। साग, मेथी, धनिया आदि क्यारियों में लगाना ठीक होता है। गोभी, मूली, आलू, आदि पारियों पर अच्छे होते हैं। खरबूजा, ककड़ी आदि नालियों में लगाए जाते हैं।

चौथी रीति का उपयोग निजी बगीचों में जहां की भूमि दुमट या बलुआ-दुमट हो और पानी की कमी हो वहां काम में लाई जा सकती है। इसके लिए एक निश्चित दूरी पर मिट्टी के झिरझिरे नल जमीन के अंदर दो-ढाई फुट की गहराई पर लगा दिए जाते हैं। इन नलों की कतारें एक बड़ी नाली या नलों की नाली से जगह-जगह मिला दी जाती है। बड़ी नाली में पानी छोड़ देते हैं और झिरझिरे नल उस पानी से भर जाते हैं जिनसे

मिट्टी आवश्यकतानुसार जल प्राप्त कर पौधों का पोषण करती है। इस प्रकार की सिंचाई में पानी कम लगता है, क्योंकि मिट्टी के अंदर रहने से वायुमंडल में पानी विशेष उड़ने नहीं पाता। पौधों की जड़ों के पास जहां पानी की आवश्यकता होती है वहीं रहता है। खेतों में ऊपरी सतह में पानी कम होने से खरपतवार भी जमने नहीं पाते।

पानी कब और कितना देना चाहिए—इसके लिए कोई खास नियम नहीं बनाया जा सकता। तरकारी और भूमि की जाति तथा ऋतु के अनुसार पानी देना चाहिए। देशी या देश-रंजित तरकारियों की अपेक्षा बाहर से आई हुई को पानी विशेष देना पड़ता है। बलुआ जमीन में मटियार की अपेक्षा जल की अधिक आवश्यकता होती है। अतः बलुआ में पानी जल्दी-जल्दी देना पड़ता है। एक साथ अधिक पानी भी ऐसी जमीन में नहीं देना चाहिए, क्योंकि बहुत-सा पानी नीचे चला जाता है और पौधों की पहुंच के बाहर हो जाता है। इन सब कारणों से तरकारियों के वर्णन में यही कहा गया है कि आवश्यकतानुसार जल देना चाहिए। यहांपर यह कह सकते हैं कि प्रत्येक सिंचाई के समय तरकारी की जाति के अनुसार एक इंच से ढाई इंच तक पानी देना चाहिए। तरकारियां स्वयं अपनी मांग दर्शा देती हैं। जब जमीन फटने लगे और तरकारियां कुछ मुर्झाने लगे तब पानी देने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। थोड़े-से अनुभव से पानी का समय ज्ञात हो जाता है।

: ७ :

फसल की तैयारी तथा हेर-फेर

कुछ तरकारियां ऐसी होती हैं जो बोने के समय से तीन-चार सप्ताह में उपयोग के योग्य हो जाती हैं। अधिकांश ऐसी हैं जो तीन-चार महीने बाद तैयार होती हैं। कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें सात-आठ महीने लगते हैं

और दो-चार ऐसी भी हैं जिनकी तैयारी में दो साल से चार-पांच साल की आवश्यकता होती है। ऐस्पेरेगस दो साल के बाद काम के योग्य होता है और फिर वर्षों तक लगा रहता है। पूरा बाढ़ पाया हुआ सूरन चार साल के परिश्रम से तैयार होता है। जो फसलें उचित समय से आगे-पीछे लगाई जाती हैं उनमें कुछ समय अधिक लगता है।

तरकारी के व्यवसायवालों को फसल की तैयारी और अमुक फसल कितने दिनों तक तैयार होने के पश्चात् खेतों में या पौधों पर छोड़ दी जा सकती है, इसका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। बहुत-सी तरकारियां जैसे भिंडी, तरोई आदि तैयार हो जाने पर दो-चार दिन के लिए छोड़ दी जायं तो कठोर हो जाती हैं। गोभियां फूट जाती हैं और उनका स्वाद नष्ट हो जाता है। टमाटर, फूट आदि फूट जाते हैं, इसलिए ऐसी तरकारियां ज्यों ही तैयार होजायं ठीक समय पर बाजार में भेज देनी चाहिए। कुछ तरकारियां जैसे आलू, शकरकंद, सुथनी आदि ऐसी हैं कि जिन्हें कुछ समय तक रख सकते हैं। ऐसी फसलों का भाव ठीक चढ़ जाय उस समय तक रखने में कोई हानि नहीं है। मूली, चुकंदर, गाजर आदि को ठीक उसी समय उखाड़ना चाहिए जब उनकी बाढ़ पूरी होजाय पर कोमलता नष्ट न हो। कच्ची उखाड़ने से वे अच्छी स्वादिष्ट नहीं होतीं।

जमीन से ऊपर होनेवाली फसलों की तैयारी उनके रूप, रंग और आकार से भली-भांति जानी जा सकती है परंतु जो मिट्टी के अंदर होती हैं उनके पहचानने में कुछ कठिनाई होती है। ऊपरवाली फसलें जैसे-जैसे तैयार होती जायं उन्हें तोड़ सकते है परंतु जहां खोदकर निकालना होता है वहां ऐसा नहीं कर सकते। एक पौधे को खोदने से निकट के दूसरे पौधे को कुछ-न-कुछ हानि पहुंच ही जाती है। ऐसी फसलों की खेती इस रीति से करनी चाहिए कि जिसमें एक बार उठाने से इतनी फसल एक साथ ही तैयार हो जाय। जमीन के अंदर होनेवाली फसलों की तैयारी उनके पत्तों के रंग बदलने तथा मुर्झाने से जानी जा सकती है।

फसल का हेर-फेर—एक ही स्थान में प्रतिवर्ष एक ही तरकारी नहीं

लगानी चाहिए। इसमें हेर-फेर होना ही चाहिए। ऐसा न करने से पैदावार अच्छी नहीं होती और भूमि द्वारा तथा कीट द्वारा होनेवाली व्याधियों की वृद्धि होती रहती है। एक ही जाति की तरकारी के लिए एक ही प्रकार की जुताई करनी पड़ती है जिससे भूमि की रासायनिक और भौतिक स्थिति भी बिगड़ जाती है। खाद के तत्त्वों की मात्रा का परिणाम भी ठीक नहीं रहता, क्योंकि एक ही तरकारी के लगाने से कुछ तत्वों का व्यय विशेष हो जाता है और कुछ की मात्रा बढ़ जाती है। इन सब कारणों से तरकारियों के लगाने में हेर-फेर अवश्य करते रहना चाहिए।

तरकारियों के हेर-फेर में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गहरी जड़वाली फसलों के बाद उथली जड़वाली, अधिक खाद चाहनेवाली के बाद कम खाद चाहनेवाली, नाइट्रोजन की खाद चाहनेवाली के बाद फास-फोरस और पोटाश का खाद चाहनेवाली, जड़वाली अथवा कंद के बाद पत्तेवाली और फलदार के बाद फलीवाली फसलें लगाई जायं।

: ८ :

साग-भाजी के शत्रु और उनसे बचाने के उपाय

साग-भाजी के शत्रु भी बहुत होते हैं। इनके आक्रमण से बचाने की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। नहीं तो खेत-के-खेत नष्ट हो जाते हैं। निंदाई, सिंचाई तथा और किसी वक्त भी तरकारियों के खेतों को देखते रहना चाहिए।

साग-भाजी के शत्रु दो प्रकार के होते हैं—एक वे जो बिना किसी यंत्र की सहायता के दिखलाई दें और दूसरे वे जिनकी पहचान के लिए यंत्रों की सहायता लेनी पड़ती है। पहले प्रकार के शत्रुओं में मनुष्य, पशु-पक्षी और कीट हैं। दूसरे में सूक्ष्म जंतु हैं। इनसे भी तरकारियों को हानि पहुंचती है, इसलिए इनसे बचाने के उपचार भी होने चाहिएँ।

मनुष्यों से बचाने के लिए कांटेदार घेरा या रखवाला रखने के सिवाय अन्य कोई युक्ति नहीं है। बड़े पशुओं से बचाने के लिए घेरा, रखवाला, रोशनी और ढोल या किसी बर्तन की आवाज से काम निकालना चाहिए। बहुत-से पशु रोशनी से डरकर निकट नहीं आते। बन्दरों को बंदूक की आवाज, गुलेल या पत्थरों से भगाना चाहिए। चूहों को पिंजड़े में पकड़कर या विषैली औषधियों से मार डालना चाहिए। किसी खाने के पदार्थ में विष मिलाकर खेतों में जगह-जगह रख देने से चूहे उसे खाकर मर जाते हैं। गिलहरी और पक्षी टीन की आवाज या पत्थर से भगाये जा सकते हैं। लकड़ियों पर रंगे हुए फटे-पुराने कपड़े बांधकर मनुष्याकृति बना देने से भी बहुत-से पशु-पक्षी निकट नहीं आते हैं।

पशुओं में सुअर और साही कंद को, गीदड़ और साही मक्का को बहुत हानि पहुंचाते हैं। पक्षियों में सुग्गा मक्का को और मैना मटर को बहुत खाती है। मटर के निकलते ही कोंपलों को और फलियां आते ही बीज निकालकर मैना खा जाती है।

कीट और सूक्ष्म जन्तुओं से होनेवाली व्याधियों से बचाने के लिए ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिसमें उपस्थित कीट वा जन्तु मर जायं और दूसरे बाहर से आकर वंश-वृद्धि करने न पावें।

निम्नलिखित साधारण नियमों की ओर ध्यान रक्खा जाय तो फसलों का बचाव बहुत-कुछ हो सकता है :—

(१) **फसल का हेर-फेर**—बहुत-सी व्याधियों के कीट और जन्तु जमीन में रहते हैं। इनमें कुछ ऐसे होते हैं जो किसी मुख्य फलस को ही हानि पहुंचा सकते हैं। यदि एक ही खेती में एक ही प्रकार की फसल लेते रहें तो व्याधिकर्ता कीट और जन्तुओं की वृद्धि होती रहती है; क्योंकि उन्हें बराबर भोजन मिलता रहता है। फसल के हेर-फेर से उचित भोजन के अभाव के कारण वे नष्ट हो जाते हैं।

(२) **कूड़ा-कर्कट**—घास-पात और कम सड़े हुए पत्तों में भी कीट और व्याधि के जन्तु रहते हैं, इसलिए इन्हें खूब सड़ाकर खेतों में डालना

चाहिए और जो व्यधिग्रस्त पौधे हों उनको तो जला ही देना चाहिए।

(३) **जुताई**—बार-बार की जुताई से बहुत-से कीट बाहर निकल आते हैं जिन्हें पक्षी खा जाते हैं या वे धूप से मर जाते हैं। उनके अंडों और कोष का भी धूप से नाश हो जाता है। इसके सिवाय खेतों में घास-पात जमने नहीं पाते, जिनमें बहुत-से कीट छिपे रहते हैं और फसलों के अभाव में उनसे अपना पोषण करते हैं।

(४) **व्याधि और कीट-रहित बीज**—बहुत-से कीट और जन्तु बीज के साथ खेतों में पहुंच जाते हैं, इसलिए सुरक्षित, व्याधि और कीट-रहित बीज ही बोना चाहिए। यदि ऐसे बीज न मिल सकें तो उन्हें व्याधि और कीट-रहित करके बोना चाहिए। पारे के नमक (Mercuric Chloride) के घोल से धोने से बीज जन्तु-रहित और कार्बन-बाई-सलफाइड (Corbon-bi-Sulphide) की धूनी से कीट-रहित किये जा सकते हैं। उपर्युक्त औषधियों के उपयोग की रीति आगे दी गई है।

(५) **भूमि को जन्तुहीन करना**—बहुमूल्य बीज जब नर्सरी में बोये जाते हैं तो उनके बीज बोने के पहले नर्सरी की मिट्टी को भी जन्तु-रहित कर लेते हैं। इस क्रिया को 'स्टरिलाइजेशन' कहते हैं। इसके लिए भाप या फार्मेलीन का उपयोग किया जाता है। जब भाप का उपयोग करते हैं तो मिट्टी पर एक कढ़ाई उल्टी रखकर उसके नीचे भाप छोड़ देते हैं। दो घंटे तक जो मिट्टी इस रीति से गरम की जाती है वह बहुत-कुछ जंतु और कीट-रहित हो जाती है। तब फार्मेलीन को पचास भाग पानी में मिलाकर खूब महीन जुताई की हुई मिट्टी में मिलाना चाहिए। एक वर्ग फुट भूमि की मिट्टी में पांच सेर मिश्रण मिलाना चाहिए। मिलाने के बाद मिट्टी को किसी चीज़ से ढककर रखना चाहिए। आठ-दस दिन बाद उसे खोल देना चाहिए।

भूमि कीट-रहित करने के लिए क्रेसायलिक (कार्बोलिक एसिड) भी अच्छी औषधि है। ३९ भाग जल में ९ भाग औषधि मिलाकर एक वर्ग गज भूमि पर बीस-पच्चीस सेर मिश्रण छींटना चाहिए।

(६) **नर्सरी की रक्षा**—नर्सरी में पौधों को एक प्रकार के छोटे-छोटे कवच पंखी कीट (Flea beetles) बहुत हानि पहुंचाते हैं। जब पत्तों में बहुत-से छेद नजर आयें तब समझना चाहिए कि यह ऐसे कीट की करतूत है। इनसे बचने के लिए मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख पौधों पर छिड़कते रहना चाहिए। जमीन पर रेंगनेवाले कीट से बचाने के लिए नर्सरी के आस-पास खाई बनवा देनी चाहिए, ताकि वे खाई में गिर जायं और मारे जा सकें।

(७) खेतों में लगाने के पश्चात् यदि फसल पर कीट का आक्रमण हो जाय तो इन्हें विष से मार देना चाहिए। विष दो प्रकार के होते हैं—एक आंतरिक अर्थात् जिनके खाने से कीट मर जायं और दूसरे स्पर्शक अर्थात् जिनके कीट के बदन पर लगने से कीट का नाश हो जाय। कुछ औषधियां ऐसी भी हैं जिनकी बास से कीट भाग जाते हैं।

(८) **घातक कीट का संरक्षण**—कुछ कीट ऐसे भी होते हैं जो फलों को हानि पहुंचानेवाले कीट का नाश करते हैं। ऐसे कीट की रक्षा करनी चाहिए। ऐसे कीट का वर्णन आगे दिया है।

(९) **कीट-भक्षक पक्षियों का पालन या संरक्षण**—कौवे, नीलकंठ, तीतर इत्यादि ऐसे पक्षी हैं जो कीड़े खाते हैं। ऐसे पक्षियों का संरक्षण भी लाभदायक होता है।

सूक्ष्म जन्तु द्वारा होनेवाली व्याधियों से बचाने के लिए भी ऐसे उपचार किये जाते हैं।

कीट से होनेवाली व्याधियां—कीट से करीब-करीब सब तरकारियों को हानि पहुंचती है। इनसे बचाने का एक मुख्य उपाय यह है कि हानि पहुंचाते हुए देखते ही इन्हें मार डालने का प्रयत्न करना चाहिए। छोड़ देने से या देरी करने से उनकी वंशवृद्धि हो जाती है और फिर फसल का बचना बहुत कठिन हो जाता है।

बहुत-से कीड़ों का जीवन-चरित्र ऐसा विचित्र है कि उन्हें पहचानना सरल नहीं है। उनके बाल-कीट के रहन-सहन तथा खान-पान के ढंग तरुण-

कीट के ढंग से बिल्कुल ही निराले होते हैं, जिनसे साधारण मनुष्य यह नहीं कह सकता कि अमुक कीट अमुक जाति के कीट का बाल-कीट है। जबतक इस बात का कुछ ज्ञान न होजाय, उनसे मुक्त होना भी कठिन है, क्योंकि यदि हानिकर्ता बाल-कीट मार भी दिये जायं तो उनके जन्मदाता तरुण-कीट उन्हें फिर उत्पन्न कर देते हैं। इसलिए सभी अवस्था में उनके नाश करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य के लिए कीटों का कुछ जीवन-रहस्य भी अवश्य जानना चाहिए।

यहांपर स्थानाभाव के कारण विस्तार-पूर्वक जीवन-रहस्य नहीं दिया जा सकता। कुछ मुख्य-मुख्य कीट, जिनसे तरकारियों को बहुत हानि पहुंचती है, उन्हींके जीवन-रहस्य का संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है कि जिससे कृषकों का काम चल जाय और वे कीट पहचान सकें। विशेष जानकारी की इच्छा हो तो पाठकों को चाहिए कि 'फसल के शत्रु'[1] नाम की पुस्तक का अवलोकन करें।

कीट सब अंडज अर्थात् अंडों से पैदा होते हैं। साधारण कीट दो विभागों में विभाजित किये जा सकते हैं। एक वे जिनके जीवन में रूपांतर होता है। जिनमें बाल-कीट का रूप तरुण-कीट के रूप से बिल्कुल ही निराला होता है और दूसरे वे जिनमें रूपांतर नहीं होता। इस विभाग के तरुण-कीट बाल-कीट से बड़े होते हैं। लेकिन उनका रूप नहीं बदलता। परिवर्तन सिर्फ यही होता है कि बाल-कीट के पर नहीं होते। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं पर आते जाते हैं। किसी-किसी कीट के पर नहीं भी आते हैं। इस वर्ग में कुछ कीट ऐसे होते हैं जो तरकारियों को मुंह से काटकर खाते हैं और कुछका मुंह नली के आकार का होता है जिसके द्वारा वे रस चूसते हैं।

तितली, गोबरीला, फलों की मक्खी, रेशम के कीट आदि की गणना रूपांतर करनेवालों में हैं। टिड्डी, दीमक, झींगुर, तिलचट्टा, लाख के कीट आदि दूसरे वर्ग के हैं।

१. लेखक : शंकरराव जोशी।

रूप बदलनेवाले कीट के बाल-कीट गोल, लम्बे तथा कई रंग के होते हैं। किसी-किसीके बदन पर बाल भी होते हैं। किसी जाति के बाल-कीट के बहुत-से पांव होते हैं और किसी-किसीके होते ही नहीं। इस अवस्था में ये कीट बहुत जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। खाद्य-पदार्थ को मुंह से काटकर भोजन करते हैं और जब तरुण अवस्था प्राप्त होने को होती है तो खाना-पीना छोड़ देते हैं, आकार छोटा हो जाता है और अपने ऊपर पतली या मोटी झिल्ली (कोष) बनाकर कई दिनों तक बिना खान-पान के उसमें रह जाते हैं। इस झिल्ली के अंदर रूपांतर होता है। बिल्कुल नया रूप बन जाता है। इसी अवस्था में पर भी निकल आते हैं। और पांव भी बन जाते हैं। किसी-किसीका मुंह नली के जैसा बन जाता है जिससे वे सिर्फ रस ही चूस सकते हैं जैसा कि तितलियों का मुह होता है और किसी-किसीका मुंह ऐसा भी रहता है कि वे काटकर ही खाते हैं, जैसे गोबरीले कीट की जातिवाले कीट। रूपांतर करनेवाले कीट की तरुण अवस्था बहुत कम दिनों की होती है। इनका मुख्य कर्त्तव्य प्रजोत्पत्ति का होता है। नर-मादा का जब मेल हो जाता है तो नर तो बहुधा उसी समय प्राण त्याग देता है और अंडे देने के पश्चात् मादा का भी प्राणांत हो जाता है।

खान-पान की रीति अनुसार वर्ग-निर्माण किया जाय तो हानि पहुंचानेवाले कीट के दो वर्ग होंगे। पहले वर्ग में वे होंगे जो मुंह से काटकर खाते हैं और दूसरे में वे जो सिर्फ रस चूसते हैं।

तितलियों के बाल-कीट (Caterpillars), टिड्डे (Grasshoppers), कवच पंखी (Beetles) आदि पहले वर्ग के और तितलियों के तरुण-कीट, तरुण-मच्छर और खटमल की जातिवाले कीट दूसरे वर्ग के उदाहरण हैं।

कीट के खान-पान की रीति का ज्ञान हो जाने से उनके नष्ट करने के उपायों में सरलता होती है। उसी ज्ञान के आधार पर विष प्रयोग किया जाता है। खानेवालों के लिए आंतरिक और रस चूसनेवालों के लिए स्पर्शक विष देना चाहिए। आंतरिक विष पौधों पर पानी में घोलकर छींटे

दिये जाते हैं या अन्य किसी प्रकार के खाद्य-पदार्थ में मिलाकर खेतों में रख देते हैं जिनके खाने से कीट मर जाते हैं। स्पर्शक विष कीट के ऊपर छिड़का जाता है जिससे उनका नाश हो जाता है।

स्मरण रहे कि विष ऐसे हों जो कि यदि धोये जायं तो तरकारी पर से धुल जायं ताकि मनुष्यों को हानि नहीं पहुंचे।

हानिकारक कीट की मुख्य जातियां—टिड्डे की जातिवाले कीट (Grasshoppers, Crickets, Locusts)—इन कीटों से सब तरकारियों को हानि पहुँचती है। ये बहुधा पत्ते आदि हरे भागों को खाते हैं। यदि ध्यान न रखा जाय तो कोमल पौधों को बिल्कुल ही खा जाते हैं। ये जमीन में अंडे देते हैं और बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक बराबर हानि पहुंचाते ही रहते हैं। अंडों का नाश खेतों की जुताई से और कीट का नाश आंतरिक विष से करना चाहिए। जब तक इनके पर नहीं आते ये फुदकते रहते हैं। ऐसे अवसर पर यदि कपड़े की जाली पौधों पर घुमाइ जाय तो उसमें फुदकनेवाले कीट आसानी से पकड़े जा सकते हैं।

तितलियां और पतंगे (Butterflies and Moths)—इस जाति के कुल कीट ऐसे होते हैं जो दिन में बाहर निकलते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो रात्रि में ही बाहर आते हैं। विशेषतः तरुण-कीट में यह भिन्नता पाई जाती है। दिन में दिनवाले (तितलियां) और रात्रि में रात्रिवाले (पतंगे) इधर-उधर उड़ते रहते हैं और नर-मादा के मेल के पश्चात् पौधों पर या उनके निकट जमीन में अण्डे दे देते हैं, जिनसे बाल-कीट निकलकर पौधों पर धावा करते हैं। इस जाति के बाल-कीट ही अपरोक्ष रूप से हानि पहुंचाते हैं। तरुण-कीट की एक तो आयु कम होती है, दूसरे वे सिर्फ फूलों का रस चूसते हैं। इससे हानि नहीं होती; परंतु वे अंडे देकर हानिकर्त्ता बाल-कीट की संख्या बढ़ाते हैं, इसलिए परोक्षरूप से हानिकारक हैं। ये कीट बरसात के बाद विशेष हानि पहुंचाते हैं।

इनके नाश का उपाय यह है कि जब बहुत-से बाल-कीट एक ही पौधे पर पाये जायं तो उस समय चुनवाकर मरवा डालना चाहिए ताकि वे

फैलने न पावें। यदि बहुत फैले हुए हों तो आंतरिक विष का प्रयोग करना चाहिए। तरुण-कीट अंडे न देने पावें, इसलिए उनको रात्रि में रोशनी पर आकर्षित कर मार डालना चाहिए। इस जाति के बहुत-से तरुण-कीट रोशनी की ओर बहुत आकर्षित होते हैं। तरकारियों की क्यारियों में कहीं-कहीं चौड़े बर्तनों में थोड़ा पानी भरकर उसपर मिट्टी का तेल डाल करके रखना चाहिए। उन बर्तनों पर यदि रोशनी रक्खी जाय तो कीट आकर्षित होकर आते हैं और तेल में गिरकर मर जाते हैं। तितलियां जो दिन में उड़ती हैं लेकिन रात्रि में नहीं आतीं उन्हें छोटी-छोटी कपड़ों की जालियों में पकड़ सकते हैं। विशेषतः तितलियां इतनी हानिकारक नहीं होतीं जितने पतंगे होते हैं।

कवच पंखी कीट की जातिवाले कीट (Beetles)—इस जाति के बाल-कीट और तरुण-कीट दोनों ही हानि पहुंचाते है; क्योंकि रूपांतर होने पर भी इनके खान-पान की रीति नहीं बदलती। ये दोनों अवस्था में खाद्य-पदार्थ को काटकर खाते हैं। शकरकंद का घुन और पौधों की कठोर डंडियों को छेदनेवाले कीट इसी जाति के हैं। इस जाति के कीट पौधों की डंडियों पर या जमीन में और कूड़ा-कर्कट या गोबर में अंडे देते हैं। अंडों से निकलते ही बाल-कीट भोजन की खोज में चल पड़ते हैं। जिन्हें पौधों की डंडियों का या कंद का भोजन करना होता है, वे कीट भोज्य पदार्थ पर या उसके निकट ही अंडे देते हैं कि जिसमें उनके बाल-कीट को शीघ्र ही भोजन प्राप्त हो जाय। डंडियों के छेदनेवाले जब उनमें प्रवेश करके भोजन करना प्रारंभ करते हैं तो कुछ दिनों में पौधे या शाखाएं मर जाती हैं। जब कोई पौधा या टहनी मरी हुई दिखे तो उसे चीरकर देखना चाहिए और यदि उसमें से कीट निकले तो उसे जला देना चाहिए। जब बाल-कीट के रूप-परिवर्तन का समय आता है तो वह उसी डंडी में भोजन त्यागकर कोष बनाता है और रूपांतर करता है। तरुण-कीट कोमल पत्ते और फूलों की पंखड़ियों को खाते हैं। ऐसे कीट रोशनी की ओर आकर्षित करके मारे जा सकते हैं।

दीमक (White ants)—इनका जीवन बड़ा रहस्यमय है। ये झुंड

बनाकर रहती हैं। इस झुंड में एक मादा होती है। वही बहुत-से अंडे देती रहती है। वह इतनी मोटी हो जाती है कि उसके लिए चलना-फिरना कठिन हो जाता है। वह एक ही स्थान पर बैठी हुई अंडे दिया करती है। कीट-वैज्ञानिक इसे रानी के नाम से संबोधित करते हैं। इसके महल में कुछ नर ऐसे रहते हैं जिन्हें भोजन करने और प्रजोत्पत्ति के सिवाय कोई काम नहीं करना पड़ता। इन नरों के मेल से रानी अंडे देती है। एक रानी करीब तीन साल तक अंडे देती रहती है। उसके बाद दूसरी रानी उसका स्थान ले लेती है। अंडों में से जो कीट निकलते हैं उनमें बहुत-से मजदूर और कुछ सैनिक होते हैं। थोड़े-से प्रजा उत्पन्न करनेवाले नर और कुछ मादा होती हैं। जब इन नर-मादों के पर आ जाते हैं तो वे बाहर निकलते हैं और दूसरे स्थान में अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। ये बहुधा बरसात में बाहर निकलते हैं और दूसरे स्थान में पहुंचने से पहले ही बहुत-से मेंढ़क, चमगादड़ और छिपकली आदि के भक्ष्य बन जाते हैं। मजदूर और सैनिक का कार्य रानी, उसके प्रेमी और बच्चों की सेवा तथा रक्षा का है। वे उनके लिए भोजन लाते हैं, महल बनाते हैं और रानी के पास से अंडों को दूर ले जाकर अपने नगर के किसी सुरक्षित भाग में रखकर उनका पालन करते हैं। मजदूर-दल के व्यक्ति तरकारियों को हानि पहुंचाते हैं। सिर्फ इनका नाश करने से ही काम नहीं चल सकता। प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि जिसमे इनके नगर को खोदकर रानी मार दी जाय या नगर में विषैली वायु भर दी जाय जिससे सब-के-सब मर जायं।

लाही, मोला (Aphis) -- इस जाति के कीट छोटे-छोटे होते हैं जो चंवली, सरसों आदि में लग जाते हैं और जब बहुत हो जाते हैं तो फलियों पर इतने घने दिखालई पड़ते हैं कि फलियां बिल्कुल ढक जाती हैं। ये रस चूसकर खाते हैं। बहुधा जाड़े के दिनों में जब थोड़ी वृष्टि हो जाती है और बादलों से आसमान घिर जाता है तो इनकी उत्पत्ति बहुत हो जाती है। इनके नाश के लिए पौधों पर सूखी या मिट्टी के तेल से भीगी हुई राख छिड़कते रहना चाहिए कि जिससे तरी कम हो जाय और वे बढ़ने न पावें।

तम्बाकू का काढ़ा भी इन कीटों को मारने के लिए उत्तम होता है। इनका शत्रु एक कीट, सोना-पांखरा (Lady-bird beetle) होता है। यह कीट कवच पंखी कीट की जाति का होता है। तरुण-कीट बड़ी रहर या देशी मटर इतना बड़ा होता है। इसके पर चमकीले सुनहरी रंग के होते हैं, जिन-पर छः काले-काले धब्बे होते हैं। जहां लाही का आक्रमण दिखाई दे वहां थोड़े-से सोन पांखरों को लाकर छोड़ देना चाहिए। फिर ये शीघ्र प्रजोत्पत्ति कर अपना कार्य संभाल लेते हैं। लेसविंग फ्लाई (Lacewing fly) और सिरफस फ्लाई (Syrphus fly) नाम के दो और शत्रु होते हैं। दोनों के बाल-कीट लाही का रस चूसकर उसका नाश करते हैं। पहला लाही के कीट का रस चूसकर उसके खोखलों को पीठ पर लादे फिरता है। दूसरा दृष्टिहीन होने के कारण लाही को टटोलकर रस चूसता है।

खटमल की जाति के कीट (Bugs)—इस जाति के कुछ कीट होते हैं जो पौधों का रस चूसते हैं। इनसे कुछ विशेष हानि नहीं होती, लेकिन यदि अधिक संख्या में होकर हानि करते दिखलाई दें तो चुनवाकर इन का नाश करा दिया जा सकता है।

फलों की मक्खी (Fruit fly)—फूट आदि फलों में इसके बाल-कीट बहुत पाये जाते हैं। मक्खी जाकर फलों के छिलकों में छेद करके अंडे देती है, जिनसे बाल-कीट निकलकर अन्दर के गूदे से अपना पोषण करते हैं और जब रूप-परिवर्तन का समय आता है तो फल से बाहर निकलकर मिट्टी में कोष बनाते हैं और कुछ समयोपरांत मक्खियों के रूप में निकल आते हैं।

इनके नाश का एकमात्र उपाय यह है कि जिन फलों में ये पाये जायं उन्हें जला देना चाहिए ताकि आगे इनकी वृद्धि न हो। मादा बहुधा बहुत पके हुए फलों पर ही अण्डे देती है। इसलिए फल ज्योंही पकते जायं तोड़ते जाना चाहिए।

मुख्य-मुख्य तरकारियों को हानि पहुंचाने वाले कीट—कंदवाली फसलों में आलू और शकरकंद की खेती बहुतायत से होती है और इनको

ही कीटों से अधिक हानि पहुंचती है। दूसरी फसलों पर विशेष आक्रमण नहीं होता।

यहांपर यह बतला देना अनुचित नहीं होगा कि कीटों के हिंदी नाम स्थानास्थान पर भिन्न-भिन्न होते हैं और सब नाम यहां देना असंभव हैं, इसलिए अंग्रेजी नाम ही दिये जाते हैं। कीट के रूप-रंग तथा उनके कर्तव्य के वर्णन से पाठकों को पहचानने में असुविधा न होगी। इनका स्थानीय नाम स्थानीय कृषकों से मालूम किया जा सकता है।

आलू के कीट

(१) **पौधों को काट डालनेवाली इल्ली** (Greasysurface caterpillar)—यह तितली की जातिवाला कीट है। इसके बाल-कीट रात्रि में आकर पौधों को काट देते हैं। इनकी बाल्यावस्था लगभग एक महीने तक रहती है। बाद में कोष में रूपांतर होता है और कुछ दिनों में काले रंग के तरुण कीट निकल आते हैं। ये रात्रि में उड़ते रहते हैं। तरुण-कीट को रोशनी से और बाल-कीट को कटे हुए पौधों के नीचे की भूमि में खोजकर नाश किया जा सकता है। दिन में ये मिट्टी में छिपे रहते हैं और रात्रि में निकल आते हैं। किसी भोज्य पदार्थ में संखिया मिलाकर खेतों में रख देने से भी इनका नाश किया जा सकता है।

यह कीट चना, मटर, खसखस, गोभी आदि पर भी पाया जाता है।

(२) **पत्तों को हानि पहुंचानेवाले कीट** (Tobacco Caterpillar)—यह कीट भी तितली की जाति का होता है जिसके बाल-कीट आलू के पत्ते खाते हैं। तरुण-कीट रात्रि में निकलता है। अंडे पत्तों पर दिये जाते हैं और बहुत-से इकट्ठे ही पाये जाते हैं, सो चुनवाकर उनका नाश करा देना चाहिए। बाल-कीट भी प्रारंभ में इकट्ठे ही पाये जाते हैं, इससे सरलता से चुनवा दिये जा सकते हैं।

यह कीट गोभी, चना, मटर, शकरकंद आदि पर भी पाया जाता है।

(३) (Epilachna) यह गोबरीले कीट की जाति का पीले रंग का

कीट होता है। इसकी पीठ पर २८ काले धब्बे रहते हैं। इसके बालकीट और तरुण-कीट दोनों ही पत्ते खाते हैं। अंडे पत्तों पर पाये जाते हैं। ये सभी अवस्था में आसानी से चुने जा सकते हैं। करेला, खीरा, बैंगन आदि के पत्ते भी इसके भोज्य हैं।

(४) **गोदाम में हानि पहुंचानेवाला कीट (आलू का पतंग)**—यह आलू का पक्का शत्रु है। खेत में भी यह कुछ हानि पहुंचाता है। गोदाम में तो इसके प्रवेश से गोदाम-के-गोदाम नष्ट हो जाते हैं। यह आलू को काट-कर उसमें प्रवेश कर जाता है जिससे बाद में आलू सड़ जाते हैं। यह कीट भी तितली की जाति का होता है। बालकीट सफेद रंग और काले मुंह का करीब एक जौ के बराबर लंबा होता है। इसकी मादा आलू की आंखों में अण्डे देती है। बालकीट दस-पंद्रह दिन तक आलू के अंदर ही रहता है। पूर्ण बाढ़ के बाद बाहर निकलकर रूपांतर करता है। तरुण-कीट फिर दूसरे आलू पर अंडे दे देते हैं। खेतों में मादा आलू पर अंडे देने न पाये, इसलिए यदि कहीं आलू खुला हुआ दिखलाई दे, तो उसे मिट्टी से ढक देना चाहिए। फसल को उठा लेने के बाद आलू को अच्छे हवादार मकान में किसी सूखे पदार्थ से ढककर रखना चाहिए कि जिसमें मादा आलू पर अंडे न दे सके। इसके लिए बालू अच्छी समझी गई है परंतु लेखक के प्रयोग में लकड़ी के कोयले का चूर्ण[1] और भी अच्छा पाया गया है। बीजवाले आलू यदि कोयल के चूर्ण में रक्खे जायं तो वे सिर्फ अच्छे ही नहीं रहते बल्कि उनके लगाने से पैदावार भी विशेष होती है। इनके रखने की रीति आलू के वर्णन में दी गई है।

आलू का चालान बहुधा बोरों में होता है। ऐसे बोरे जिनके आलू में कीट हुए हों उन्हें गरम पानी में डुबोकर फिर आलू भरने चाहिए। नहीं तो बोरों में लगे हुए अंडे से कीट निकलकर नये आलू में लग जायंगे। आलू के भरे हुए गोदाम कार्बन-बाई-सलफाइड से भी कीट-रहित किये जा सकते

[1] Storage of Potatoes by N. D. Vyas, Agricultural Journal of India, Vol. XXV, Part V, Sept. 1930, pp. 408–416.

हैं। पेट्रोल भी इस कार्य के लिए काम में लाया जा सकता है। रुई को पेट्रोल में भिगोकर तश्तरियों में जगह-जगह रख देते हैं। कार्बन-बाई-सलफाइड और पेट्रोल का उपयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए। दोनों तुरंत आग पकड़ लेते हैं। जलती हुई बत्ती या आग पास में नहीं आने देनी चाहिए।

शकरकंद के कीट

(१) **दीमक**—देखिए पृष्ट ७२

(२) **शकरकंद का घुन**—यह कीट नीले रंग का और चमकीला होता है। लंबाई में जौ के बराबर होता है और आकार अनाज के घुन-जैसा ही होता है। मादा कंद को काटकर उसमें छेद करके अंडा देती है। बहुधा एक छेद में एक ही अंडा दिया जाता है, जिससे बाल-कीट निकलकर कंद को खाता रहता है। पूर्ण बढ़ जाने के पश्चात रूपांतर कंद में ही होता है।

इससे बचाने के लिए खेतों में जो कहीं कंद मिट्टी से बाहर निकल आयें तो उनको ढक देना चाहिए। जिस कंद में कीट मिले उसे तो जला ही देना चाहिए।

पत्ते खानेवाले कीट

(३) Tobacco Caterpillar—देखिए पृष्ठ ७५

(४) **बालदार इल्ली**—यह कीट तितली की जाति का होता है। पूरा बढ़ा हुआ बाल-कीट डेढ़इंच लंबा, मुंह और दुम की तरफ कुछ काला और बीच में पीले रंग का होता है। इसके शरीर पर बहुत-से बाल होते हैं। तरुण-कीट रात्रि में उड़नेवाला करीब एक इंच लंबा भूरे रंग का होता है। पत्तों के नीचे की ओर मादा अंडा देती है। एक-एक मादा चार सौ से एक हजार तक अंडे देती है, जिनसे बाल-कीट निकलकर पत्तों पर धावा करते हैं। रूपांतर मिट्टी में होता है। ये कीट अधिक न फैलने पायें, इसलिए बाल-कीट, जो प्रारंभ में इकट्ठे पाये जाते हैं उन्हें चुनवाकर मिट्टी में गड़वा देना चाहिए। यदि प्रारम्भ में नष्ट न कराये

जायं तो फिर इनसे फसल को बचाना बहुत कठिन हो जाता है।

(५) Orange banded Amsacta—यह कीट तितली की जाति का होता है। इसकी मादा सैंकड़ों अंडे पत्तों पर देती है, जिनसे बाल-कीट निकलकर पेड़ों पर धावा करते हैं। पूर्ण बाढ़ पाया हुआ बाल-कीट डेढ़ इंच लंबा बालदार होता है। रूपांतर मिट्टी में होता है, इसके बाल-कीट भी प्रारंभ में एक ही साथ पाये जाते हैं सो उन्हें चुनवाकर मिट्टी में गाड़ देना चाहिए।

प्याज, लहसुन आदि को हानि पहुंचानेवाले कीट—इनको एक जाति के टिड्डे बहुत हानि पहुंचाते हैं। जब इनके पौधे बहुत छोटे होते हैं तब ये कीट उन्हें काट देते हैं। ये टिड्डे कपड़े की जाली में पकड़े जा सकते हैं।

पत्ते, डंडी और फूलवाली फसलों को हानि पहुंचानेवाले कीट—इस वर्ग की तरकारियों में गोभियों की खेती की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। महंगी बिकने के कारण इनसे आय भी अच्छी होती है। इन्हें निम्नलिखित कीट हानि पहुंचाते हैं—

(१) Diamond Black moth.
(२) Indigo caterpillar.
(३) Tobacco caterpillar.
(४) गोभी की तितली
(५) सरसों की मक्खी, काली इल्ली
(६) Greasy surface caterpillar.
(७) मोला
(८) झींगुर
(९) टिड्डा

इनमें से पहले चार तितली की जाति के हैं। पहले का तरुण-कीट लगभग एक इंच लंबा भूरे रंग का होता है। मादा पत्तों के नीचे की ओर अंडे देती है, जिनमें से सात-आठ दिन बाद बाल-कीट निकलकर पहले पत्तों

का ऊपरी भाग खाते हैं और बड़े होने पर पत्तों में छेद कर देते हैं। बाल-कीट रूपांतर के समय तक डेढ़ इंच लंबे हो जाते हैं। ये गहरे रंग के होते हैं। इनके दोनों छोर बीच के भाग से कुछ पतले होते हैं। पत्तों पर ही कोष बनाकर ये रूप बदलते हैं।

इनके नाश के लिए तम्बाकू का काढ़ा या मिट्टी के तेल में भीगी राख पत्तों पर छिड़कनी चाहिए।

(२) Indigo caterpillar--इस कीट की मादा पत्तों पर लगभग २५० अंडे देती है, जो बालों से ढके रहते हैं। अंडे देने के दो-तीन दिन बाद बाल-कीट निकलकर सुबह-शाम पत्ते खाते हैं और दोपहर को छिपे रहते हैं। पंद्रह दिनके बाद रूपांतर के लिए मिट्टी में कोष बनाते हैं, जिनमें से काले धब्बेवाले तरुण-कीट निकलते हैं। अंडे और बाल-कीट को चुनवाकर गड़वा देने से इनसे फसल बनाई जा सकती है।

(३) (Tobacco caterpillar)—देखिए पृष्ठ ७५।

उपर्युक्त तीनों कीट रात्रि में उड़ते हैं, इसलिए रोशनी पर आकर्षित करके भी मारे जा सकते हैं।

(४) **गोभी की तितली** (Cabbage butterfly)—इसका बाल-कीट फूल और बंदगोभी के पत्ते खाता है। तरुण तितली सफेद पर-वाली होती है जिसपर दो-दो धब्बे होते हैं। यह दिन में उड़ती रहती है और पत्तों पर अंडे दे देती है। बाल-कीट हरे रंग के काले सिरवाले होते हैं। ये दो सप्ताह के बाद कोष बनाकर एक सप्ताह में तितली के रूप में निकल आते हैं।

पत्तों पर तम्बाकू का काढ़ा छिड़कते रहने तथा बाल-कीट को चुन-वाते रहने से बहुत-कुछ बचाव हो सकता है।

(५) **काली इल्ली** (Mustard sawfly)...इसके बाल-कीट सरसों, गोभी, मूली आदि के पत्तों को हानि पहुंचाते हैं। यह मक्खी काले और पीले रंग की होती है। पर काले रंग के होते हैं। यह दिन में इधर-उधर खेतों में उड़ती रहती है। मादा पत्तों को चीरकर उनमें अंडे

देती है। अंडे से एक सप्ताह में बाल-कीट निकलकर सुबह-शाम पत्ते खाते हैं। दोपहर के समय ये मिट्टी में छिप जाते हैं। पंद्रह-बीस दिन बाद मिट्टी कोष में इनका रूपांतर होता है। दस-बारह दिन में कोष से मक्खी निकल आती है।

चूने का चूर्ण या मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख छिड़कते रहने से बहुत-कुछ बचाव हो सकता है। पौधों के नीचे की मिट्टी में खोजने से बाल-कीट भी मिल जाते हैं जिन्हें मरवा डालना चाहिए।

(६) (Greasy surface caterpillar)—देखिए पृष्ठ ७५।

(७) **मोला**—देखिए पृष्ठ ७३।

(८) **भूरा टिड्डा**—यह पत्ते और डंडी को काट देता है और जमीन में छेद करता रहता है। ये कीट रात्रि में बाहर निकलते हैं और दिन में मिट्टी में छेद करके छिपे रहते हैं। पानी में थोड़ा-सा मिट्टी का तेल मिलाकर यदि वह पानी इनके छेद में डाला जाय तो वे तुरंत बाहर निकल आते हैं और पकड़े जा सकते हैं। अन्य वनस्पति के हरे पौधों को विष के घोल में भिगोकर खेतों में रखने से ये कीट उन्हें खाकर मर जाते हैं।

(९) **टिड्डा**—मिट्टी के रंग के छोटे-छोटे टिड्डे भी गोभियों और अन्य तरकारियों को हानि पहुंचाते हैं। ऐसे कीट कपड़े की जाली में पकड़कर मारे जा सकते हैं।

फलीदार पौधों को हानि पहुंचानेवाले कीट—

(१) Greasy surface caterpillar देखिए पृष्ठ ७५
(२) Indigo caterpillar ,, ,, ७६
(३) Tobacco caterpillar ,, ,, ७५
(४) Bihar hairy caterpillar (बालदार इल्ली) ,, ,, ७६
(५) Gram caterpillar
(६) Gram semilooper

इनमें से पहले चार का वर्णन पहले हो चुका है। पांचवें और छठे

कीट भी तितली की जाति के हैं। इनके बाल-कीट चने को विशेष हानि पहुँचाते हैं। इनसे मटर और टमाटर को भी कुछ हानि पहुंचती है।

पांचवां कीट चने के फलों में छेद करके अंदर का दाना खा जाता है। मादा पत्ते, फूल और फलों पर एक-एक करके अंडे देती है, जिनमें से तीन-चार दिन में बाल-कीट निकलकर पहले पत्ते खाते हैं और फिर फलों पर धावा करते हैं। रूपांतर के समय तक बाल-कीट डेढ़ इंच लंबे हो जाते हैं। हाथ से चुनने के सिवाय इनके नाश की दूसरी कोई युक्ति नहीं है।

छठे कीट की मादा ४०० से ५०० अंडे पत्तों पर देती है, जिनसे बाल-कीट निकलकर एक महीने तक पत्ते खाते हैं और पत्तों का कोष बनाकर रूपांतर करते हैं। बाल-कीट हरे रंग के करीब डेढ़ इंच लंबे होते हैं, जिनपर सफेद लंबी धारियां होती हैं।

मिट्टी के तेल में रस्से भिगोकर सुबह-शाम तीन-चार दिनतक फसल पर फिराने से कीट भाग जाते हैं।

फलवाली तरकारियों को हानि पहुंचानेवाले कीट

बैंगन के कीट—(१) आलू के पत्ते खानेवाला जैसा २८ धब्बे वाला (पृष्ठ ७५) कीट होता है वैसा यह बारह धब्बेवाला होता है। जीवन-प्रणाली दोनों की समान है।

(२) धड़-छेदक—धड़ छेदनेवाला कीट।

(३) कोंपल और फल-छेदक—कोंपल और फल छेदनेवाला कीट। ये दोनों तितली की जाति के हैं। पहले के आक्रमण से पेड़ मुरझा जाते हैं। यह डंडी में ही रूपांतर करता है। दूसरा कीट कोंपलों को छेदकर उन्हें मुरझा देता है और फल आने पर उनमें छेद कर उन्हें बिगाड़ देता है। फलों पर काले-काले गहरे निशान दिखलाई दें तो समझना चाहिए कि यह इस कीट का ही कार्य है। बाल-कीट लगभग दो सप्ताह तक फलों में रहकर बाहर निकल आता है और पौधे या जमीन पर कोष बनाकर

रूपांतर करता है।

सूखे पौधे, मुरझाई हुई कोंपलें और कीटवाले फलों को जला देना चाहिए। इधर-उधर फेंक देने से तरुण-कीट निकलकर फिर अंडे दे देते हैं।

कद्दू, तरोई, खीरा, फूट आदि के कीट—इनके पत्ते खानेवाले २८ और १२ धब्बेवाले ऐपिलेकना (Epilachna—पृष्ठ ७५) हैं। इसी जाति के लाल और काले रंग के दो और कीट होते हैं। जिनके तरुण-कीट करीब पांच इंच लंबे होते हैं। पौधों पर चूने का चूर्ण और राख छिड़कते रहने से कुछ बचाव हो जाता है। बुझाये हुए चूने का चूर्ण और तम्बाकू का चूर्ण बराबर भाग में मिलाकर छिड़कने से भी लाभ होता है।

फलों को खानेवाले गोबरीले कीट की जाति के कुछ कीट होते हैं जो दूसरी फसलों के फूल भी खाते हैं। इनमें एक काली और पीली धारीवाला, दूसरा भूरा और तीसरा हरा होता है। इनको छूने से इनके पांव के जोड़ में से एक तरह का पीला तेल-जैसा रस निकलता है जिसके बदन पर लग जाने से फोड़ा उठ आता है। इन्हें कहीं-कहीं तेली कहते हैं।

फलों की मक्खी—(देखिए पृष्ठ ७४)एक प्रकार की मक्खी भी फलों को बिगाड़ देती है।

कीट-नाशक उपचार और औषधियां

कपड़े की थैली—यह दो प्रकार की होती है, एक छोटी और दूसरी बड़ी। छोटी थैली उड़नेवाले कीटों के लिए अच्छी होती है। बड़ी से फुदकनेवाले टिड्डे पकड़े जाते हैं। दोनों को कृषक स्वयं बना सकते हैं।

छोटी थैली—एक मोटे लोहे के तार का एक कुण्डल ऐसा बनाना चाहिए जिसका व्यास करीब नौ इंच से बारह इंच का हो। इस कुण्डल में जालीदार कपड़े की या पतले मलमल की थैली बनाकर सी देनी चाहिए। इसमें एक पतली लकड़ी की डंडी करीब एक हाथ लंबी लगा

देनी चाहिए। उड़ती हुई तितली, भ्रमर आदि को पकड़ने के लिए झटके से हाथ ऐसा मारना चाहिए कि जाली हवा के झोंके से फूल जाय और मुंह की ओर से कीट उसमें फंस जाय। कीट के फंस जाने पर झट से हाथ मोड़ देना चाहिए कि जिससे वह फिर बाहर न निकलने पाये।

बड़ी थैली—इसके लिए बांस का एक चौखटा ऐसा बनवाना चाहिए कि जिसका आकार चार फुट लंबा और दो फुट चौड़ा हो। लंबाईवाले बांसों में से एक बांस इतना लंबा होना चाहिए, जिसके चौखटे के दोनों ओर एक-एक फुट बांस निकला रहे। फिर कपड़े की एक ऐसी थैली बनवानी चाहिए जिसका मुंह चौखटे के बराबर हो और वह चार-पांच फुट गहरी हो। इस जाल को चौखटे के साथ सी देना चाहिए। जिन खेतों में कीट पकड़ना हो उन खेतों पर इस जाली को ले जाकर दो मजदूरों के हाथ में बड़े बांस के दोनों सिरे पकड़वाकर उन्हें दौड़ाना चाहिए। हवा के वेग से थैली फूल जाती है और हलचल की वजह से कीट फुदककर थैली में गिर जाते हैं। फिर एक ओर ले जाकर उन्हें मार डालना चाहिए।

औषधि छिड़कने का यंत्र—इस यंत्र द्वारा महीन फुहार के रूप में औषधियों का घोल पौधों पर छिड़का जाता है। यह कार्य महीन छिद्रवाली पिचकारी से भी लिया जा सकता है।

औषधि फूंकने का यंत्र—इस यंत्र द्वारा औषधियों के महीन चूर्ण पौधों पर फूंके जाते हैं। यह एक हवा देनेवाला पिचकारी-जैसा पंप होता है। एक डिब्बे में औषधि भर दी जाती है। यह डिब्बा पम्प से लगा हुआ रहता है, और जब हवा देते हैं तो औषधि का चूर्ण उड़कर पौधों पर जम जाता है।

मुख्य-मुख्य औषधियां

आंतरिक विष—आंतरिक विष में अधिकतर संखिये के विष काम में लाये जाते हैं, जिनमें मुख्यतः निम्नलिखित हैं। इनके घोल छिड़कने-वाली मशीन द्वारा छिड़के जाते हैं। या इन्हें महीन चूर्ण के रूप में फूंकने

वाली मशीन द्वारा काम में ला सकते हैं। उपयोग के लिए घोल या चूर्ण निम्नलिखित परिमाण में होने चाहिए :[1]

	घोल		चूर्ण	
	औषधि	जल	औषधि	बुझा हुआ चूना
लेड आर्सिनेट	१ भाग	२५० भाग	१ भाग	८ भाग
पारीग्रीन	१ ,,	१००० ,,	१ ,,	२० ,,
केलशियम आर्सिनेट	१ ,,	५३० ,,	१ ,,	१० ,,
मेग्नेशियम आर्सिनेट	१ ,,	४०० ,,	१ ,,	९ ,,

चूंकि ये विष पशु तथा मनुष्यों के लिए हानिकारक हैं, अतः इनका उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

स्पर्शक विष—(१) दस सेर पानी में आधा सेर साबुन घोलकर उसमें आधा डिब्बा (दो गैलन) मिट्टी का तेल मिला देना चाहिए। उपयोग के समय इस घोल में २० हिस्सा पानी और मिलाकर छिड़कने वाले यंत्र से काम में लाना चाहिए।

(२) **तम्बाकू का काढ़ा**—एक सेर तम्बाकू दस सेर पानी में २४ घंटे तक भिगोकर रखना चाहिए या आधे घंटे तक उसे पानी में उबाल लेना चाहिए। फिर छानकर उस पानी में पावभर साबुन घोलकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। छिड़कते समय इस काढ़े में सात भाग जल और मिलाना चाहिए।

निकोटीन सल्फेट—यह तम्बाकू के सत से बनता है और उत्तम स्पर्शक विष होता है। घोल बनाना हो तो एक भाग औषधि को हजार भाग पानी में मिलाकर काम में लाना चाहिए। बुझे हुए चूने में या संगमूसा

[1] Hand-book of Economic Entomology by T. V. Ramkrishna Ayyar, 1940.

के चूर्ण में मिलाकर चूर्ण के रूप में काम में लाते हैं। अढ़ाई भाग निकोटीन सलफेट कोसाढ़े सत्तान वे भाग चूने या संगमूसा के साथ मिलाना चाहिए।

पायरेथ्रम चूर्ण—बहुत-से छोटे-छोटे कीटों के लिए पायरेथ्रम के फूल का चूर्ण भी अच्छा काम देता है। फूल पहाड़ों पर ठंडे स्थानों में होते हैं।

कार्बन-बाई-सलफाइड—इस विष का उपयोग बीज को कीट-रहित करने के लिए किया जाता है। एक बर्तन में बीज रखकर उनपर यह औषधि डाल करके बर्तन का मंह ऐसे बंद करना चाहिए कि जिसमें हवा का आवागमन न हो। दो मन बीज के लिए एक छटांक औषधि डालनी चाहिए। गोदामों को कीट-रहित करने के लिए प्रति एक हजार घनफुट जगह के लिए तीन सेर औषधि काम में लानी चाहिए। ध्यान रहे कि जब इस औषधि का प्रयोग किया जाय तो रोशनी या किसी प्रकार की आग पास में न हो, क्योंकि यह बहुत जल्दी आग पकड़ लेती है। अधिक सावधानी के लिए ऐसा करना चाहिए कि औषधि देने के २४ घंटे के बाद ढक्कन को थोडी देर के लिए खोल देना चाहिए ताकि फालतू गैस निकल जाय और आग पकड़ने का भय न रहे।

राल-तेल मिश्रण—ढाई भाग राल को एक भाग तीसी (अलसी) के तेल के साथ मिलाकर उबलते हुए पानी में गरम करके इस मिश्रण को तख्तों पर लगाकर यदि तख्ते नर्सरी में गाड़ दिये जायं तो जो छोटे-छोटे कीट (Flea beetles) पौधों को हानि पहुंचाते हैं, वे इस चिपकन वाले पदार्थ पर चिपककर मर जाते हैं। राल के आग पकड़ने का भय रहता है, इसलिए हमेशा उबलते हुए पानी में गरम करना चाहिए।

जमीन में रहनेवाले कीट, जो नये-नये पौधों को काट देते हैं उनसे बचाने के लिए निम्नलिखित युक्ति उत्तम होगी—एक भाग सोडियम फ्लयुओ सीलीकेट, दो भाग चोआ और तीस भाग चोकड़ का मिश्रण बनाकर पानी से गीला कर लें और खेतों में जगह-जगह छोटी-छोटी ढेरियां रख दें। इस मिश्रण के खाने से ऐसे कीट मर जाते हैं।

कोठी या बंगलों के बागीचों की छोटी-छोटी क्यारियों में ऐसे कीट

हानि पहुंचाते हुए नज़र आयें तो क्यारियों में थोड़ा-सा चूना छिड़ककर उसे मिट्टी के साथ मिला देना चाहिए।

ग्वार, मिर्च आदि में माईट (mite) नाम का जंतु लग जाता है जिससे पत्ते मुड़ जाते हैं और पौधे की बाढ़ रुक जाती है। इनपर गंधक का चूर्ण छिड़का जाय तो वे मर जाते हैं।

वर्तमान समय में नये-नये आंतरिक और स्पर्शक विष निकलते रहते हैं, जिनमें से डी०डी०टी० (Dichloro-diphenyltrichlorethane) और गेमेक्सीन (Benzene hexachloride) का प्रचार विशेष है। इन औषधियों के उपयोग की विधि औषधि-विक्रेता से जानी जा सकती है। चूंकि इनके घोल या चूर्ण कई तरह के बने हुए होते हैं। यहां पर उन सबका वर्णन असंभव है।

सूक्ष्म जन्तुओं द्वारा होनेवाली व्याधियां

ये व्याधियां कई प्रकार को होती हैं जिन्हें पहचानने के लिए यंत्रों की सहायता लेनी पड़ती है। जहां-कहीं पौधों के पत्तों पर धब्बे दिखलाई दें या पौधे मुरझाकर सूखने लगें या सड़ने लगें तो ऐसे पौधों को कृषि-विभाग की प्रयोगशाला में भेजकर जांच करवा लेनी चाहिए और वहां के विशारदों की सम्मति के अनुसार व्याधि से बचाने के उपचार करने चाहिए।

कुछ साधारण व्याधियों का वर्णन तथा उनसे बचाने के उपचार यहां पर दिये जाते हैं।

कंदवाली फसलों में आलू, अर्वी और अदरक को ऐसी व्याधियों से विशेष हानि पहुंचती है।

आलू में दो प्रकार की फफूद की बीमारी होती है। पहली पत्ते और पौधों को सुखा देती है, जिससे आलू ठीक से नहीं बन पाते। दूसरी आलू और उनके पौधों की जड़ों को हानि पहुंचाती है। पहली व्याधि जब दिखलाई पड़े तो पत्तों पर बोर्डो मिक्सचर छिड़कने से लाभ दोता है। दूसरी के लिए बोते समय आलू को फार्मेलिन में डुबोकर बोना चाहिए। आलू में

वेक्टिरिया (एक किस्म के सूक्ष्म जंतु) द्वारा भी एक व्याधि होती है, जो पौधे और आलू दोनों को हानि पहुंचाती है। इस व्याधिवाले आलू यदि काटे जायं तो उनमें भूरे रंग का चक्कर दिखलाई देता है। इससे बचाने के लिए बोते समय आलू को काटकर देख लेना चाहिए और अच्छे आलू ही बोना चाहिए। यह व्याधि बैंगन और टमाटर में भी पाई जाती है।

अर्बी के पत्तों को एक जाति की फंगस से हानि पहुंचती है। पत्तों पर भूरे रंग के धब्बें पड़ जाते हैं जिससे पत्ते बिगड़ जाते हैं। व्याधि अधिक न फैलने पावे, इसलिए व्याधिग्रस्त पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।

अदरक में भी एक तरह की फंगस लग जाती है जिससे पौधे सूख जाते हैं और अदरक सड़ जाता है। अधिक तरी से यह व्याधि होती है, इसलिए जब यह दिखलाई दे तो पानी कुछ कम देना चाहिए। बीमारीवाले पौधों को उखाड़कर जला ही देना चाहिए।

पत्तेवाली तरकारियों में सरसों और गोभियों को एक प्रकार की फंगस (फफूदवाली) से हानि पहुंचती है। पत्ते और डंडियों पर काले-काले धब्बे पड़ जाते हैं।

फलवाली तरकारियों में बैंगन, टमाटर और मिर्च में एक बेक्टरिया वाली व्याधि होती है जिसका वर्णन ऊपर आलू की व्याधि में किया गया है।

टमाटर को एक राइप-रॉट (Ripe-rot) नाम की फफूद से भी हानि पहुंचती है फलों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं और फल बिगड़ जाते हैं। व्याधिग्रस्त पौधों को जला देना चाहिए, जिससे व्याधि अधिक फैलने न पाये।

फफूदवाली व्याधियां तरी के अधिक होने से जल्दी फैलती हैं। नर्सरी में बहुत-से पौधे इसीसे मर जाते हैं। इसलिए यदि पौधे मरते दिखें तो पानी कम देना चाहिए।

औषधियां

बोर्डो मिक्सचर—यह औषधि तूतिये और अच्छे पके हुए चूने के मेल से बनती है। एक मिट्टी या काठ के बर्तन में एक भाग तूतिये को

पचास भाग पानी में घोल लो। उसी भांति तूतिये को इतना अच्छा पकाया हुआ चूना लेकर उसे थोड़े पानी से बुझा लो और फिर उसमें पानी डाल कर तूतिये के घोल के बराबर कर लो। फिर दोनों को मिलाकर पिचकारी द्वारा काम में लाओ। कुछ लोग तूतिये और चूने की मात्रा कुछ कम भी डालते हैं। इस मिश्रण में छुरा डालकर देख लेना चाहिए। उसपर तांबे जैसा रंग न जम जाय। यदि ऐसा हो जाय तो चूना और डालना होगा। चूना यदि अच्छा पका हुआ न हो अथवा अच्छा पका हुआ चूना कुछ बुझ गया हो तब तांबा जमेगा। दोनों घोल को छानकर मिलाना चाहिए।

चूना-गंधक घोल—बुझा हुआ चूना एक छटांक और एक छटांक गंधक का पानी से गाढ़ा घोल बनाकर उसे ढ़ाई सेर पानी में डाल दो और खूब हिलाओ। यह औषधि भी फंगस की व्याधियों के लिए उत्तम होती है।

फार्मेलिन का मिश्रण—एक छटांक फार्मेलिन को ३० सेर पानी में मिलाकर उसमें घंटे-डेढ़ घंटे तक आलू डुबा देने चाहिए।

पारे का नमक—एक मन पानी में आधी छटांक दवाई डालनी चाहिए। शकरकंद और आलू को इसमें डुबोकर बोना ठीक होता है। इस विषसे बीज भी जंतुरहित किये जा सकते। इसका घोल धातु के बर्तन में नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि यह धातु को खा जाता है। लकड़ी या मिट्टी के बर्तन में बनाना चाहिए।

यह विष बड़ा ज़हरीला होता है, इसलिए इसे छूने के बाद हाथ खूब अच्छी तरह से धोना चाहिए।

पाला—सर्दी के दिनों में कभी-कभी रात को वातावरण का तापमान बहुत घट जाता है और पाला गिरने लगता है जिससे कई तरकारियां मर जाती हैं और उनके फल बेस्वाद हो जाते हैं।

पाले का अनुमान दिन के वातावरण से किया जा सकता है। जब सर्दी के दिनों में बहुत जोर से ठंडी हवा चले तब समझना चाहिए कि पाले की संभावना है। ऐसी सूरत में निम्नलिखित उपचार की ओर ध्यान देना चाहिए।

जब पौधे नर्सरी में हों अथवा बहुमूल्य तरकारियाँ क्यारियों में हों तो उनपर बड़े-बड़े पत्ते, चटाइयां अथवा फूस की टट्टियों से छाया कर देनी चाहिए। बड़े-बड़े खेतों में जहाँ ऐसा करना असंभव है वहांपर खेतों को दिन में सींच देना चाहिए। पानी में वह गुण होता है कि वह एक बार गरम होने से जल्दी ठंडा नहीं होता और जब रात को वातावरण का ताप-परिमाण पाला जमने जितना गिरता है उस समय सीचे हुए खेतों में उतना नहीं गिरता और फसल पाले से बच जाती है।

इसके सिवाय रात को यदि खेतों में धुआं कर दिया जाय तो उससे भी कुछ बचत हो जाती है। धुआं जब खेतों में मंडराता रहता है तो पाला नहीं जमने पाता। कुछ पत्ते या घास जगह-जगह इकट्ठा करके उसपर थोड़ा-सा पानी छींट देना चाहिए और बाद में आग लगा देनी चाहिए। पाले की मार बहुधा रात्रि के तीसरे-चौथे पहर में होती है। उस समय तक धुआं होजाय, इसलिए आग मध्यरात्रि या उससे कुछ समय पहले लगानी चाहिए।

निम्नलिखित तरकारियों पर पाले का असर बहुत जल्दी पड़ता है—बैंगन, टमटार, शकरकंद, मिर्च, सेम। फूलगोभी और आलू उपर्युक्त तरकारियों की अपेक्षा कुछ अधिक शीत सहन कर सकते हैं। बंदगोभी, चुकन्दर, प्याज, गाजर, शलजम इत्यादि पर सर्दी का असर कम पड़ता है।

: ६ :

साग-भाजियों का विक्रय

साग-भाजी की खेतीवालों को इस विषय का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इनको पैदा करने वाला चाहे जितनी अच्छी साग-भाजी भले ही पैदा कर ले परंतु यदि विक्रय की रीति में निपुण न हुआ तो उसे अपने परिश्रम का यथार्थ पुरस्कार नहीं मिल सकता। इस कार्य में बहुत चतुराई

की आवश्यकता है।

अनाज की खेतीवाला मनुष्य कभी भी और कहीं भी जहां अधिक-से-अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सके अनाज बेच सकता है। परंतु साग-भाजियां तो तैयार होने पर निकट के बाजार में ही बेचनी पड़ती हैं। अनाज सब एक साथ तैयार हो जाता है और एक ही साथ बेच भी दिया जा सकता है। परंतु साग-भाजी तो ज्यों-ज्यों तैयार होती है बेचनी ही पड़ती है। इसलिए उन्हें इस रीति से बेचना चाहिए कि जिसमें अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

साग-भाजी चार प्रकार से बेची जा सकती हैं:

(१) खेतों में खड़ी फसल का बेचना।

(२) अपनी ओर से बाजार में पहुंचाना और वहांपर किसी थोक-बंद व्यापारी के हाथ बेचना।

(३) स्वयं अपनी दूकान खोलकर अपने आदमी द्वारा बिकवाना।

(४) सहकारी मंडल, जिसके सदस्य स्वयं भी हों, द्वारा बिकवाना।

प्रथम रीति के अनुसार यदि फसल खेत में ही बेची जा सके तो अच्छा है। इस प्रकार बेचने में आय तो अवश्य कुछ कम होती है, परंतु साग-भाजियों के छांटने (Grading) और उन्हें बाजार तक भेजने के झंझट से छूट जाते हैं।

दूसरी रीति यदि बेचने के लिए काम में लाई जाय तो यह ध्यान रखना चाहिए कि साग-भाजी अच्छी और ताजी हालत में बाजार तक पहुंचाई जायं। रास्ते में फूटने-टूटने या एक-दूसरी से घिसकर बिगड़ने न पावें।

तीसरी रीति से बेचने में कुछ विशेष परिश्रम करना पड़ता है। इसमें साग-भाजी की श्रेणियां बनाकर बेचना चाहिए। उत्तम श्रेणी में सुंदर आकार और अच्छे रंगवाली होनी चाहिए। मध्यम में उससे हल्की और कनिष्ठ में सब प्रकार का बचा हुआ माल रखा जा सकता है। बाजार में

कई प्रकार के ग्राहक आते हैं—बहुत-से लक्ष्मीवान भाव का विचार न करके ताज़ी और सुंदर दिखनेवाली साग-भाजी ही पसंद करते हैं। उनके मन आकर्षित करने के लिए सुदर स्वच्छ साग-भाजी को सजाकर रखना चाहिए। मध्यम श्रेणीवाले मनुष्य सिर्फ ताज़ी का ही विचार रखते हैं। उनका काम मध्यम श्रेणी की साग-भाजियों से चल जाता है। गरीबों को तीसरी श्रेणी से ही संतुष्ट होना पड़ता है। दूकान पर जो व्यक्ति साग-भाजी बेचने के लिए बिठाया जाय वह बड़ा भरोसेवाला, मधुरभाषी और चतुर होना चाहिए। अच्छा व्यापारी अपने भाषण से ही ग्राहकों को आकर्षित कर लेता है और कुछ-न-कुछ माल उनके हाथ बेच ही लेता है। जो साग-भाजी सजाकर रक्खी जायं, उनपर धूल वगैरह न जमने पाये, इसलिए उन्हें झाड़ते रहना चाहिए। जिनपर पानी छिड़कने की आवश्यकता हो उनपर पानी छिड़कते रहना चाहिए नहीं तो वे मुरझाने लग जाती हैं।

बहुत-से लोग साग-भाजी को खरीदते समय उन्हें मोड़ते हैं, दबाते हैं और लौकी और खीरा-जैसी में तो नाखून भी गाड़ देते हैं। ऐसी क्रियाएं साग-भाजियों के लिए ही नहीं, मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए भी अहितकर होती हैं। सो बेचनेवाले को ध्यान रखना चाहिए कि खरीदनेवाले ऐसा न करें।

चौथी रीति से बेचने में यह लाभ होता है कि बाजार का भाव सहकारी मंडल के हाथ रहता है। एकाएक चढ़ने या गिरने नहीं पाता। साग-भाजी पैदा करने वाले को किसी प्रकार बेचने की चिंता नहीं रहती। उसे सिर्फ इतना ध्यान रखना पड़ता है कि कौन-से बाजार में किस प्रकार की मांग है। उसी मांग के अनुसार वह पैदा करता है। जब माल मंडल के पास पहुंच जाता है तो वहां यथेष्ट मूल्य पर बिक जाता है।

हरएक व्यवसाय में सच्चे व्यवहार की बड़ी आवश्यकता है। जो व्यक्ति उचित मूल्य पर अच्छा माल बेचता है, उसकी प्रतिष्ठा जम जाती है। इसलिए इनके व्यवसायियों को भी अपनी प्रतिष्ठा जमा लेनी चाहिए।

साग-भाजी बाजार तक पहुंचाने के लिए यदि बाजार निकट हुआ तो

मजदूर या बैलगाड़ी से पहुंचाई जा सकती हैं। दूर भेजने के लिए नौका या रेलगाड़ी का आसरा लेना पड़ता है। टोकरियां, बोरे या लकड़ी के संदूक जिस किसीमें रक्खी जायं इस रीति से रखनी चाहिए कि उनमें हवा लगती रहे और वे एक-दूसरी से रगड़ खाकर बिगड़ें नहीं। रेल में गोभी-जैसी कोमल साग-भाजी को हवादार ठंडे डिब्बों में भेजना चाहिए। जिन डिब्बों में हवा का आवागमन न हो ऐसे डिब्बों में बंद कर देने से ढेर-की-ढेर साग-भाजी बिगड़ जाती है। स्वास्थ्यरक्षा विभाग वाले उन्हें बाजारों में न बिकने देकर नष्ट कर देते हैं। कलकत्ते आदि शहरों में ऐसे दृश्य कितने ही देखने में आते हैं।

जब साग-भाजियां बाहर भेजनी हों तो बड़ी सावधानी से भेजनी चाहिए। टमाटर, खरबूजे आदि को छोटी-छोटी टोकरियों में या लकड़ी के हवादार संदूकों में; गोभियां टोकरियों में; आलू, शकरकंद आदि बोरों में; कद्दू वगैरह वैसे ही थोड़े से खर-पतवार में रखकर गाड़ियों में भेजना चाहिए। साग-भाजी बंद करते समय धो-धुलाकर साफ कर देनी चाहिए कि जिससे वे चमकती रहें और गंदी न दिखें। बाजारों में आलू, शकरकंद आदि के बोरों को गाड़ियों से उतारते समय मजदूर अनाज के बोरों की भांति पटक देते हैं। ऐसा करने से उनके छिलके निकल जाते हैं। वे दिखने में सिर्फ बुरे ही मालूम नहीं पड़ते वरन् उनकी अधिक समय तक ठहरने की शक्ति भी नष्ट हो जाती है। बहुत-से लोग बोरों पर बैठकर इनसे आसन और कुर्सियों का काम लेते हैं। उन्हीं पर बैठकर निरर्थक बातें किया करते हैं। बार-बार उन बोरों पर बैठने-उठने और चढ़ने-उतरने से भी माल को हानि पहुंचती है, इसका भी ध्यान रखना चाहिए।

साग-भाजियां को सम्हालकर रखने की विधि

साग-भाजी यदि जल्दी न बिके या अन्य किसी कारण से कुछ समय तक रखनी पड़े तो उनको इस रीति से रखना चाहिए कि वे बिगड़ने न पावें। बहुत-सी साग-भाजी, विशेषत: कंदवाली ऐसी होती हैं, कि उन्हें एक

ही समय पर खोदकर रखना पड़ता है। ऐसी साग-भाजियां उठा लेने के पश्चात् कुछ समय तक रख ली जायं और अच्छा भाव आने पर बेची जायं तो अधिक लाभ होता है।

निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान रखने से कुछ समय तक साग-भाजी अच्छी तरह से रह सकती हैं—

(१) वे ऐसी होनी चाहिएं कि पूर्ण पकने पर या कुछ समय पहले उठाई गई हों।

(२) उनमें किसी प्रकार के व्याधि के जंतु न हों।

(३) उनमें कीटादि शत्रु या अन्य किसी तरह से हानि पहुँची हुई न हो।

(४) स्वच्छ हवा और प्रमाणित तरी तथा उचित ताप-परिमाण में उन्हें रखना चाहिए। तरी और ताप-परिमाण उनकी जाति पर निर्भर है इसलिए कोई एक नियम नहीं बनाया जा सकता। चुकंदर, गाजर, शलजम इत्यादि ठंडे और तरीवाले वातावरण में अच्छे रहते हैं। गोभी, प्याज वगैरह के लिए ठंडा और सूखा वातावरण चाहिए। शकरकंद, कद्दू आदि सूखे और गरम वातावरण में अच्छे रहते हैं। ताप-परिमाण और तरी प्रत्येक साग-भाजी के लिए पृथक्-पृथक् होती है। इच्छानुसार तरी और ताप-परिमाण रखने के लिए बर्फ से ठंडे रक्खे जानेवाले गोदाम होते हैं परंतु इनमें रखने में व्यय बहुत पड़ता है। सर्वसाधारण इनका उपयोग नहीं कर सकते। रईसों के यहां इनका प्रबंध हो सकता है।

साग-भाजियों में हवा का हेर-फेर होता रहे, इसलिए जमीन पर न रखकर हवादार मकानों में मचानों पर फैलाकर रखनी चाहिए। ऐसे मकानों में चूहे और कीट से बचाने का ध्यान रखना चाहिए। मचानोंके खंबों पर टीन के टुकड़े काटकर इस तरह से लगा देने चाहिए कि उनका ढाल नीचे की ओर हो और वे खुले हुए छातानुमा दिखलाई दें। ऐसा करने से चूहे इनपर नहीं चढ़ सकेंगे। चूहों से बचाने के लिए मचानों के आसपास तार की जाली भी लगा दी जा सकती है।

मचान के अभाव में हवा के आवागमन के लिए निम्नलिखित युक्ति काम में लाई जा सकती है।

जमीन में करीब ६ इंच गहरी और एक फुट चौड़ी दो नालियां एक दूसरी को काटती हुई बनाकर उनपर लकड़ी और घास रखकर उसपर साग-भाजी रखनी चाहिए। ऐसा करने से भी कुछ समय तक वे अच्छी तरह से रह जाती हैं। बंदगोभी को कुछ समय तक रखना हो तो सिर नीचे और धड़ ऊपर करके रखना चाहिए।

साग-भाजी को सुखाकर रखना[1]

जहां हरी साग-भाजियां साधारण मूल्य पर बराबर मिलती रहती हैं वहां सूखी साग-भाजी की आवश्यकता नहीं होती। परंतु कई स्थानों में मौसम में तो हरी साग-भाजी बहुत ही सस्ती बिक जाती है और मौसम के बाद में मिलती ही नहीं। ऐसे स्थानों पर उन्हें सुखाकर रख लिया जाय तो अच्छा काम देती हैं। व्यवसाय की दृष्टि से भी उन्हें सुखाना कई तरह से लाभप्रद है।

(१) मौसम में सस्ती साग-भाजी खरीदकर सुखा ली जायं तो महंगाई के समय अथवा उनके अभाव में बहुत सस्ती पड़ती हैं।

(२) सूखी साग-भाजी हरी की अपेक्षा बहुत कम जगह घेरती है। वजन में उनकी जाति-अनुसार १५ से २२ शतांश तक रह जाती हैं। बाहर भेजने के लिए जहां हरी साग-भाजी के लिए ठंडे रहनेवाले डिब्बे तथा एक्सप्रेस गाड़ियों की जरूरत होती है, वहां सूखी साग-भाजियां माल के डिब्बों में मालगाड़ी से भेजी जा सकती हैं। इन सब कारणों से बहुत कम व्यय में उनका स्थानांतर हो जाता है।

(३) लड़ाई के मैदानों में फौज के उपयोग के लिए सूखी साग-भाजी की मांग बहुत होती है। द्वितीय विश्व युद्ध में सुखाई हुई साग-भाजी भेजने के लिए हमारे देश में उनके सुखाने के छोटे-बड़े कई कारखाने खुले।

---

[1] श्रीमती व्यास के प्रयोगों के आधार पर।

ऐसे कारखानोंमें विशेषतः आलू सुखाये जाते थे परंतु दूसरी भी कई साग-भाजियां हैं जो स्वास्थ्य के विचार से आलू की अपेक्षा अधिक गुणकारी हैं और आसानी से सुखाई जा सकती हैं। यदि उचित रीति से प्रचार किया जाय तो दूसरी सुखाई हुई साग-भाजी की मांग भी बढ़ सकती है।

हमारे देश में धूप इतनी अधिक और तेज़ पड़ती है व कई साग-भाजी आसानी से सुखाई जा सकती हैं और कई घरों में सुखाकर रक्खी भी जाती हैं। साग अर्थात् जिन तरकारियों के पत्ते काम में लाये जाते हैं उन्हें साधारणतः साफ करके उनके छोटे-छोटे टुकड़े करके धूप में सुखा सकते हैं। मेथी, खसखस, चने का सूखा हुआ साग, हरी साग-भाजी के अभावमें अच्छा काम देती है। भिंडी को गोल काटकर आसानी से सुखा सकते हैं। ग्वार की समूची फली और चंवली तथा मटर के हरे दाने भी सुखाकर रख सकते हैं। मटर के दाने, थोड़ा-सा नमक और सोडा (पांच सेर पानी में एक-दो तोला) पानी में डालकर उस पानी में चार-पाँच मिनट के लिए उबालकर सुखाकर के रखे जायं तो उनका हरा रंग भी बना रहता है और स्वाद भी उत्तम हो जाता है। अच्छी युक्ति यह होगी कि मलमल के कपड़े में मटर के दाने बांधकर उसे उबलते हुए पानी में चार-पांच मिनट के लिए छोड़ दिया जाय और बाद में निकालकर दाने सुखा लिये जायं। चुकंदर, आलू इत्यादि को पतले काटकर थोड़ी देर पानी में उबालकर सुखाना चाहिए। गोभी के फूल के छोटे-छोटे टुकड़ों के हार बनाकर चार-पांच मिनट के लिए नमक और सोडे के पानी में उबालकर सुखाए जायं तो वे भी अच्छा काम देते हैं। उनमें थोड़ा-सा स्वाद-परिवर्तन अवश्य हो जाता है परंतु फिर भी साग-भाजी अच्छी बन जाती है।

नमक और सोडा के पानी में उबालने का यह अभिप्राय होता है कि उबालने से उनके ऊपर के कोष, जो कठोर होते हैं, वे मुलायम हो जाते हैं या टूट जाते हैं और अंदर के कोषों तक धूप की गर्मी जल्दी पहुंच जाती है और वे जल्दी सूख जाती हैं। नमक से उनके टिकने की शक्ति बढ़ जाती है और सोडे से उनके रंग में विशेष परिवर्तन नहीं होता।

साग-भाजी को जल्दी सुखाने के लिए धूप के सिवाय कुछ कृत्रिम उपचार भी किये जाते हैं। अलमारी[1] जैसे कुछ चौखटे धातु के बनाये जाते हैं, जिनमें उन्हें रखकर नीचे से हल्की-सी आंच पहुंचाई जाती है। ऐसा करने से वे जल्दी सूख जाती हैं और उनका रंग भी बना रहता है।

जब बहुत बड़े पैमाने पर काम करना होता है तो उसके लिए आवश्यकतानुसार लंबे-चौड़े सुखाने के घर बनाये जाते हैं; जिनमें कृत्रिम गर्म हवा से वे सुखाई जाती हैं। साधारणतः १० फुट लंबा-चौड़ा और ८ फुट ऊंचा कमरा ठीक होगा। ऐसे कमरों में लकड़ी के चौखटों (Racks) पर साग-भाजी रक्खी हुई चलनियां पर्तवार लगा दी जाती हैं। कमरे की हवा कृत्रिम गर्मी से गर्म की जाती है जिससे वे जल्दी सूख जाती हैं। तैयार चौखटे न हों तो निम्नलिखित युक्ति से काम चलाया जा सकता है।

उपर्युक्त नापवाले कमरे के बीचों-बीच तीन-चार इंच मोटी लकड़ी के चार खंभे एक-दूसरे से एक तरफ तीन फुट की दूरी पर व दूसरी

---

[1] अलमारियां बनाने में कुछ खर्च विशेष पड़ता है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित युक्ति अधिक सस्ती और उपयोगी सिद्ध हुई है। मिट्टी के तेल के डिब्बे को काम में लाया जा सकता है। डिब्बे के ऊपर का मुंह खोल दिया जाता है। पेंची से दो इंच की ऊंचाई पर चारों ओर चार-चार छेद कर दिये जाते हैं। टीन में एक इंच बालू (रेत) भर दी जाती है और टीन रसोई बनने के पश्चात् जो आंच रहती है उसपर चढ़ा दिया जाता है। टीन के अन्दर उपर्युक्त रीति से तैयार की हुई साग-भाजी चलनी या जालीदार चौखटे पर रख दी जाती है और वे जल्दी सूख जाती हैं। बालू रखने से लाभ यह होता है कि आंच चारों ओर बराबर पहुंचती है। बालू से कुछ ऊपर जो चार-चार छेद होते हैं, उनके द्वारा बाहर की हवा आकर गर्म हवा को ऊपर ढकेलती है, जिससे वे जल्दी सूख जाती हैं। ऐसी युक्ति खासकर सर्दी के दिनों में होने वाली साग-भाजियों को सुखाने में बड़े काम की है।

तरफ जिधर चलने-फिरने का रास्ता हो उधर चार फुट की दूरी पर गाड़ने चाहिए। इन्हीं खम्भों की सीध पर चारों दीवारों के पास चार और खम्भे चारों कोनों में गाड़ने चाहिए।

इस प्रकार जो खम्भे गाड़े जायंगे, उनमें से दो खम्भे दरवाजे की दोनों बाजू पर होंगे। इन खम्भों से सामने की दीवारवाले खम्भों तक चारों खम्भों पर लंबे बांस कीलों से लगवा देने चाहिए। जमीन से दो फुट की ऊंचाई छोड़कर बांस लगाने चाहिए और बाद में छः-छः इंच की दूरी पर लगाते जाना चाहिए। इस प्रकार से दस-ग्यारह बांस लगाने चाहिए। उसी भांति इन बांसों के सामने दीवारवाले खम्भों पर भी बांस लगाने चाहिए। इस प्रकार लगाने से दरवाजे से सामने की दीवार तक चार फुट चौड़ा मार्ग चलने-फिरने के लिए छूट जायगा। दोनों तरफ के लगे हुए बांसों पर साग-भाजीवाली चलनियां लगाकर वे सुखाई जा सकेंगी। दरवाजे की दोनों बाजू पर एक-एक तह में छः-छः चलनियां लग सकेंगी और प्रत्येक कमरे में ऐसे ग्यारह तह होंगे। कुल ६६ चलनियों पर माल सुखाया जा सकेगा।

चलनियां—चलनियों का आकार सुविधानुसार बनाया जा सकता है परन्तु साधारणतः ३ × ३ फुट का आकार ठीक होगा। चलनियां काफी मजबूत हों, इसलिए उनके चौखटे एक इंच मोटी लकड़ी के होने चाहिए और चलनियां गेल्वेनाईज्ड़ (कलईदार) तार की होनी चाहिएं ताकि जंग न लगे।

कमरे की हवा को गर्म करना—कमरे की हवा निम्नलिखित युक्ति से गर्म की जा सकती है :

दरवाजे की बाजू पर भट्टी बनानी चाहिए, जिसमें लकड़ी या पत्थर का कोयला जलाया जा सके। इस भट्टी का दूसरा मुंह एक फुट व्यास के लोहे की चद्दर के बने हुए नल में खुलना चाहिए ताकि भट्टी की आंच और गर्म हवा नल में जाती रहे। यह नल करीब नौ फुट लम्बा होना चाहिए। ऐसे ही नौ-नौ फुट लम्बे तीन टुकड़े और होने चाहिएं और तीन

टुकड़े कोनेवाले ऐसे होने चाहिए जिनमें दो नलों के मुंह मिलाये जा सकें। भट्टी के सामनेवाले कोने में पहले व दूसरे नल के मुंह उससे अगले कोने में दूसरे-तीसरे के व उससे अगले में तीसरे व चौथे नल के मुंह मिलाये जा सकें। चौथे नल का एक मुंह छत के ऊपर दरवाजे के पास भट्टी की दूसरी तरफ निकाल देना चाहिए ताकि नलवाली हवा कमरे की हवा को गर्म करती हुई बाहर निकल जाय। इन नलों की गर्मी का कुछ हिस्सा फर्श की जमीन में नहीं चला जाय, इसलिए इन्हें फर्श से आठ-नौ इंच ऊपर रखना चाहिए। जगह-जगह ईंटें रखकर उनपर नल रखने से ऐसा हो जायगा। नलों में जब काजल वगैरह जम जाय तो इन्हें खोल-कर साफ कर लेना चाहिए। जहां से गर्म हवा प्रवेश करती है वह नल बहुत गर्म हो जाता है। उससे ठीक ऊपर दो-चार चलनियां नहीं रखनी चाहिए वरना साग-भाजी जल जायंगी।

कमरे की हवा चलती रहे, इसलिए छत के नजदीक दीवार में रोशन-दान-जैसी खिड़कियां होनी चाहिएं जो आवश्यकतानुसार खोली जा सकें। कमरे में माल सूखने के लिए रखने के बाद दरवाजा बंद कर दिया जाता है। इसलिए हवा के प्रवेश के लिए फर्श के नजदीक बगल की दीवारों में दो-दो खिड़कियां रख देनी चाहिए जिनको कम-ज्यादा खोलने से हवा का आवागमन आवश्यकतानुसार किया जा सके। चूंकि पृथक्-पृथक् साग-भाजियों के सुखाने के लिए तापमान अलग-अलग होता है, अतः कमरे में तापमापी भी लगाना चाहिए। ऐसा ताप-मापी बाहर से पढ़ा जा सके इसके लिए उसे एक छोटी-सी कांच की खिड़की, जो दीवार में बनाई हुई हो, उसमें लगाना चाहिए।

तापमान—साग-भाजी को सुखाने का तापमान उनकी जाति के अनुसार ६० से ८० शतांश (°C) होना चाहिए। ८० से ऊपर होने से तरकारियों का रंग बदल जाता है और उनका स्वाद भी नष्ट हो जाता है। कमरे में प्रवेश करती हुई हवा का तापमान ८० तथा बाहर निकलती हुई का ६० शतांश हो तो अच्छा होगा। हवा के आने व निकलने के रास्ते की

खिड़कियों को कम-ज्यादा खोलकर यह तापमान न्यूनाधिक किया जा सकता है।

सुखाने का समय—साग-भाजी की जाति-अनुसार व उनकी तैयारी की क्रियानुसार दो-ढाई घंटे से लेकर सात-आठ घंटे में साग-भाजी सूख जाती हैं। कोमल पत्तेवाली जल्दी सूख जाती हैं और कंदवाली को बहुत समय लगता है।

सूखी हुई साग-भाजियों में ८ शतांश[1] से अधिक पानी नहीं रहना चाहिए। अधिक पानी रहने से वे बिगड़ जाती हैं और अधिक दिनों तक नहीं टिकतीं।

सुखाने के बाद उन्हें बंद बर्तनों में रखना चाहिए, जिनमें हवा में की नमी न पहुंच सके। बर्तनों के मुंह मोम या मिट्टी से बंद किये जा सकते हैं। जब व्यवसाय के लिए भेजना हो तो टीन में बन्द करके मुंह झलवा देना चाहिए।

चूंकि सुखाई हुई साग-भाजी की मांग बढ़ती जा रही है, अतः मुख्य-मुख्य साग-भाजी को सुखाने की रीति का विशेष वर्णन साग-भाजियों के वर्णन में दिया गया है।

: १० :

साग-भाजियों का वर्गीकरण

साग-भाजियों का वर्गीकरण कई तरह से हो सकता है परन्तु साधारणतः चार प्रकार से किया जा सकता है—

---

१. पानी की मात्रा जानने की युक्ति—थोड़ी-सी सूखी हुई साग-भाजी यदि वजन करके २४ घण्टे तक १०० शतांश तापमान पर रक्खी जाय और बाद में वजन किया जाय तो जो वजन घटेगा वह पानी का होगा

(१) **आयु-अनुसार**—(क) वार्षिक—वे जिनके जीवन का कर्त्तव्य एक ही वर्ष में समाप्त होजाय। ऐसी तरकारियां बीज से पैदा होकर नये बीज छोड़कर एक ही साल में अपनी जीवन-चर्या समाप्त कर लेती हैं। जैसे मटर, मेथी, ककड़ी आदि।

(ख) द्विवार्षिक—वे जिनमें पहले वर्ष में सिर्फ पत्ते और शाखाएँ हों और दूसरे वर्ष में फल और बीज आवें—जैसे प्याज।

(ग) बहुवार्षिक—जो एक बार लगाई जायं और कई वर्षों तक उपज देती रहें। जैसे एस्पेरेगस, कच्चू, सूरन आदि।

(२) **ऋतु-अनुसार**—जिस ऋतु में जो होती है उसी अनुसार उसका नामकरण हो सकता है। जैसे बरसाती, जाड़ेवाली इत्यादि।

(३) **वनस्पतिशास्त्रानुसार**—इस प्रकार के वर्गनिर्माण से कुछ अंश तक पौधों की प्रकृति का ज्ञान हो जाता है। उन्हें किस प्रकार के खाद से विशेष लाभ होगा, इसका भी कुछ अनुमान किया जा सकता है। सागों के वैज्ञानिक नाम उनकी खेती के वर्णन में दिये गए हैं और सामूहिक वर्गीकरण परिशिष्ट में दिया गया है।

(४) **पौधों के अंगों के उपयोगानुसार**—साग-भाजी की खेतीवालों के लिए इस प्रकार का वर्ग-निर्माण अच्छा होता है। इससे किन-किन फसलों के लिए किस-किस प्रकार की जुताई, सिंचाई तथा खाद की आवश्यकता होगी इसका अनुमान आसानी से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ जिनकी जड़ें और कंद काम में आते हैं उनके लिए गहरी जुताई और फास-फोरस तथा पोटाश के खाद की आवश्यकता होगी। गोबर की खाद इनसे पहलेवाली फसल को देना ठीक होता है। इनको देने से इनकी कोमलता कुछ कम हो जाती है। उसी भांति जिनके पत्ते की बाढ़ अधिक बढ़ाना हो उनके लिए ना० का खाद काम में लाना चाहिए। फल और बीजवाली के लिए फा० और ना० की आवश्यकता होती है। जिनकी लताएं काम में आती हों या जिन्हें टट्टियों पर चढ़ाना हो कि जिससे फल अच्छे आवें तो उनके लिए सहारे का प्रबन्ध करने का अनुमान पहले ही किया जा

सकता है। इसलिए इस पुस्तक में वर्ग-निर्माण इसी चौथी रीति अनुसार किया गया है।

चौथे वर्गानुसार साग-भाजियों की सूची

१. वे साग-भाजियां जिनकी जड़ें काम में लाई जाती हैं :

(१) गाजर, (२) मूली, (३) शलजम, (४) चुकंदर, (५) पारस्निप, (६) साल्सीफाई, (७) रुटेबागा, (८) स्किरेट।

२. वे जिनके धड़ या शाखाएं काम में लाई जाती हैं। अधिकांश मनुष्यों को निम्नलिखित साग-भाजी जड़ें मालूम देती हैं परंतु यथार्थ में ऐसा नहीं है। वनस्पतिशास्त्रानुसार ये रूपांतरित धड़ या शाखाएं हैं :

(१) आलू, (२) शकरकंद, (३) टेपियोका, (४) अर्वी, (५) गराडू, (६) रतालू, (७) सुथनी, (८) सूरन, (९) अरारूट, (१०) कच्चू, (११) हल्दी, (१२) अदरक, (१३) एस्पेरेगस, (१४) गांठ गोभी।

३. वे साग-भाजी जिनके पत्ते और कोमल डंडियां काम में लाई जाती हैं :

(१) प्याज, (२) लहसुन, (३) लीक, (४) गंधन, (५) शाईव, (६) सीबाल, (७) पार्सली, (८) सेलेरी, (९) सलाद, (१०) काशनी, (११) शेरविल, (१२) क्रेस, (१३) कार्न सलाद, (१४) एंडाईव, (१५) कार्डून, (१६) रूबर्ब, (१७) चार्ड, (१८) औरेक, (१९) कोलार्ड्स, (२०) डेंडेलियन, (२१) बंदगोभी, (२२) चीनी गोभी, (२३) ब्रुसेल्स स्प्राउटस, (२४) केल, (२५) मेथी, (२६) खिसारी, (२७) कुसुम, (२८) सरसों, (२९) सरसों सफेद, (३०) राई, (३१) पालक, (३२) पालक खट्टा, (३३) बथुआ, (३४) साल साग, (३५) मरसा साग, (३६) चौलाई, (३७) राजगिरा रामदाना, (३८) लूणिया, कुलफा साग, (३९) खसखस, (४०) पोई, (४१) सौंफ, (४२) सौंफ बड़ी, (४३) धनिया, और (४४) पोदीना।

४. वे साग-भाजी जिनके फल की डंडी या फूल काम में लाये जाते हैं :

(१) फूल गोभी, (२) ब्रोकोली, (३) ग्लोब आर्टिचोक, और (४) पटुआ।

५. वे साग-भाजी जिनके फलों का उपयोग किया जाता है :

(१) परवल, (२) टमाटर, (३) बैंगन, (४) भिंडी, (५) मिर्च, (६) मोगरी, (७) कद्दू, (८) कद्दू विलायती, (९) स्क्वेश, (१०) भूरा कद्दू, (११) लौकी, (आल), (१२) चिचड़ा, (१३) तरोई (१४) घिया तरोई, (१५) करेला, (१६) उच्चे, (१७) कुंदरू, तिलकौड़ (१८) चथैल, किकोड़ा, (१९) फूट, (२०) खीरा ककड़ी, (२१) गोल खीरा, (२२) रेती ककड़ी, (२३) खरबूजा, (२४) तरबूज, और (२५) दिल पसंद, टिंडा टिंडस।

६. (क) दहलन की वे साग-भाजी जिनकी फलियां काम में लाई जाती हैं :—

(१) चंवली, (२) ग्वार, (३) सेम, बालोर, (४) चौकानिया सेम, (५) ब्राड बीन, (६) फ्रेंच बीन, (७) स्कारलेट रनर बीन, (८) लाइमा बीन (९) बकला बीन, (१०) उदा सेम, और (११) कमच।

(ख) दहलन की वे साग-भाजी जिनके सिर्फ बीज ही काम आते हैं :—

(१) मटर, (२) किराओ, (३) चना, (४) सॉय बीन, और (५) रहर, तूर।

७. अन्य साग-भाजी और मसाले—

(१) मक्का, (२) सिंघाड़ा, (३) धरती छत्र, (४) केला, (५) पपीता पपैया, (६) सहजन, (७) जीरा (८) स्याह जीरा, (९) सोआ, (१०) अजवाइन, (११) लौंग, (१२) काली मिर्च, (१३) दालचीनी, (१४) तेजपात, (१५) इलायची छोटी, (१६) इलायची बड़ी, (१७) सिसरी सेज, (१८) सेलेरिएक, (१९) लेवेंडर, (२०) सेवारी, (२१) उदो, (२२) ओका, (२३) ओका क्विना, और (२४) सोलेनम कॉमर सोनी।

: ११ :

वे साग-भाजी जिनकी जड़ें काम में आती हैं

गाजर Carrot *Daucus carota*

इसका प्राचीन स्थान काश्मीर और पश्चिमीय हिमालय माना गया है। वहीं से इसका विस्तार अन्य स्थानों में हुआ है। कुछ दिनों से यहांपर विदेशी गाजर की खेती भी होने लगी है। देशी गाजर बैंगनी या लाल रंग की और विदेशी गुलाबी या नारंगी रंग की होती है और देशी की अपेक्षा लंबी और पतली होती है। देशी में गर्मी सहन करने की शक्ति विशेष होती है। कहीं-कहीं यह किसी भी ऋतु में पैदा की जा सकती है। यह एक ऐसी फसल है कि थोड़ी-सी सिंचाई से जल्दी तैयार हो जाती है। देशी गाजरों में कच्छ की गाजर अच्छी मानी गई है।

गाजर

गाजर का पौधा एक फुट से दो फुट ऊंचा होता है। जड़ मूली के समान जमीन में बैठती है और कुछ ऊपर भी निकल आती है। ऊपर निकला हुआ भाग कुछ हरा हो जाता है। गाजर साधारणतः चार-पांच इंच लंबी और एक छटांक से चार छटांक तक वजन में होती है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है परंतु खाद और सिंचाई के आधार पर यह दुमट और मटियार-दुमट में भी हो सकती है। मटियार मिट्टी इसके लिए ठीक नहीं होती। दुमट या मटियार-दुमट में लाना हो तो पारियों पर और बलुआ-दुमट में क्यारियों में लगाना चाहिए। इसलिए खेत की अंतिम जुताई के पश्चात् पारियां या क्यारियां बना लेनी चाहिएं। छोटी जाति की गाजर के लिए पारियां बारह इंच की दूरी पर और बड़ी के लिए अट्ठारह इंच की दूरी पर होनी चाहिएं। क्यारियां सुविधानुसार लंबी-चौड़ी हो सकती हैं। समतल

भूमि में आठ-दस फुट चौड़ी और दस-पंद्रह फुट लंबी ठीक होती हैं। गोबर का खाद इससे पहलेवाली फसल को देना चाहिए ताकि गाजरें आकार में अच्छी हों। गाजर को पोटाश के खाद से विशेष लाभ होता है, इसलिए पोटाश-पूर्ता अन्य खाद न हो तो राख ही खेतों में डालना ठीक होती है।

बोना—गाजर के बीज सीधे खेतों में बोये जाते हैं। एक सेर से डेढ़ सेर बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। बंबई प्रांत में यह खरीफ और रबी दोनों ऋतुओं में बोई जाती है। गुजरात में श्रावण से कार्तिक (जुलाई से अक्तूबर) तक कभी भी इसे बो सकते हैं। उत्तरी भारत में भाद्रपद से कार्तिक (अगस्त से नवंबर) तक बोई जाती है। पहाड़ों पर गर्मी के प्रारंभ में लगाना चाहिए। बोने के पश्चात् भारी मिट्टी हो तो पाव इंच और हल्की हो तो आधा इंच मिट्टी के तह से बीजों को ढकना चाहिए। पंक्तियों में एक फुट से डेढ़ फुट का अंतर रखना ठीक होता है।

निंदाई और सिंचाई—गाजर के अंकुर बहुत देर से निकलते हैं। करीब-करीब दस-पंद्रह दिन लग जाते हैं और कुछ दिनों तक पौधे धीरे-धीरे बढ़ते हैं। इसलिए निंदाई का बहुत विचार रखना चाहिए कि जिसमें घास-पात नहीं बढ़ने पाये। चूंकि बीज देरी से निकलते हैं, इसलिए इसकी कतारों में कुछ जल्दी आनेवाली मूली के बीज डाल देने चाहिए ताकि घासपात निकालते समय कतारों का स्थान मालूम हो सके। ऐसा करने से गाजर बैठने के पहले कुछ मूलियां मिल जायंगी। निंदाई के समय कुछ पौधे उखाड़ दिये जाते हैं और उनमें पांच-छः इंच का अंतर कर दिया जाता है। गाजर के लिए अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। अच्छी तरीवाली भूमि में देशी गाजर बिना सिंचाई के ही तैयार हो जाती है। जहां तरी कम हो वहां पीछे जाकर कुछ पानी देना पड़ता है सो आवश्यकतानुसार देना चाहिए।

फसल की तैयारी—बलुआ-दुमट में तीन-चार महीने में और भारी मिट्टी में चार-पांच महीने में तैयार हो जाती है। जब गाजर का सिर

करीब डेढ़ इंच मोटा होजाय तो उन्हें उखाड़ सकते हैं। उखाड़ने के पश्चात् साफ़ धुलवाकर बाजार में भेजना चाहिए। यदि जल्दी न बिके और कुछ दिनों तक रखना पड़े तो ठंडे हवादार मकान में रख सकते हैं। बालू के अन्दर रक्खी जाय तो भी अच्छी रहती है।

बीज की तैयारी—दूसरी फसल बोने के लिए बीज तैयार करना हो तो पुष्ट गाजरों को खोदकर उनके नीचे का आधा भाग काट डालना चाहिए और ऊपरी भाग को फिर से अच्छी खाद दी हुई उपजाऊ जमीन में लगा देना चाहिए। इन लगाये हुए पौधों से जड़ें फूट जाती हैं और वे जल्दी लग भी जाते हैं। इनमें जो फल आवे उनसे बीज निकालकर सुखाकरके बंद बर्तनों में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—गाजर वैसे ही धोकर खाई जाती है। इसमें तर पदार्थ की मात्रा कम होती हैं इसलिए घी या दूध और चीनी के साथ उबालकर खाते हैं। इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है और तरकारी भी अच्छी बनती है। गर्मी के दिनों में इसके हलुवे के सेवन से तरावट रहती है। गाजर सुखाना हो तो इसके छोटे-छोटे टुकड़े कर दो शतांश नमक के घोल में तीन-चार मिनट तक उबालकर सुखाना चाहिए। कद्दूकस पर घिसकर गाजर के लच्छे बन सकते हैं। इन्हें सुखाकर रख लेने से रायता तुरंत बन सकता है। इन लच्छों को पांच-दस मिनट के लिए पानी में भिगोकर दही में मसाले के साथ डाल दीजिए। तुरंत एक स्वादिष्ट पदार्थ बन जायगा। यदि कृत्रिम गर्म हवा में सुखाई जाय तो उसका ताप-परिणाम ७५% के लगभग होना चाहिए। गाजर पित्त, कफ, बवासीर, संग्रहणी और बादी का नाश करती है। बढ़ी हुई तिल्ली और दस्तों में भी इसका उपयोग अच्छा होता है। इसकी पोल्टिस से खराब-से-खराब घाव अच्छा हो जाता है।

मूली Radish *Raphanus sativus*

मूली का पौधा लगभग डेढ़-दो फुट ऊंचा होता है। गाजर के समान इसकी जड़ भी जमीन में बैठती है। यह दो प्रकार की होती है। एक लंबी

दूसरी छोटी। साधारण देशी मूली-आठ-दस इंच लंबी और डेढ़-दो इंच मोटी होती है। जौनपुर की मूली अच्छी, मुलायम, एक हाथ से भी लंबी और करीब तीन-चार इंच मोटी होती है। देशी मूली का रंग सफेद होता है। विलायती बैंगनी रंग की होती है और देशी की अपेक्षा कुछ छोटी होती है। यह कुछ कोमल और स्वादिष्ट भी विशेष होती है।

मूली

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। खाद इससे पहलेवाली फसल को ही देना ठीक होता है, क्योंकि ऐसा करने से इसकी जड़ें कोमल बनी रहती हैं। यदि इसी फसल को देना हो तो बहुत ही सड़ा हुआ गोबर का खाद करीब २०० मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए। इसे बहुधा क्यारियों में बोते हैं, इसलिए अन्तिम जुताई के बाद क्यारियां बनवा लेनी चाहिएं। कहीं-कहीं नालियों में बोकर फिर पौधों पर मिट्टी भी चढ़ाते रहते हैं।

बोना—गाजर की भांति इनके बीज सीधे खेतों में ही बोये जाते हैं। बीज करीब आध इंच गहरे बोना चाहिए। आषाढ़ से पौष तक इसके बोने का समय है परंतु अधिकतर आश्विन से मार्गशीर्ष (सितंबर से नवंबर) तक बोई जाती है। सिंचाई और खाद के आधार पर गर्मी में भी बो सकते हैं। पहाड़ों पर फाल्गुन-चैत्र (फरवरी-मार्च) में ही बोना चाहिए। बाजार में अच्छी नर्म मूलियां बहुत दिनों तक पहुंचाई जा सकें, इसलिए दस-पंद्रह दिनों के अन्तर पर नई-नई क्यारियां बोते रहना चाहिए। प्रति एकड़ चार-पांच सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—इसकी निंदाई भी जल्दी-जल्दी करनी चाहिएं। निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उनमें चार से छः इंच का अन्तर कर देना चाहिए। इससे कम अन्तर रखने से पत्तों की बाढ़ विशेष हो जाती है और मूलियां ठीक से नहीं बन पातीं। अच्छी तरी-वाली जमीन में मूली बिना सिंचाई के हो सकती है। परन्तु जहां तरी

कम हो वहां गर्मी में बोई जाय तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से डेढ़ महीने में पत्ते, दो महीने में जड़ें और करीब ढाई महीने में फल उपयोग के योग्य हो जाते हैं। गाजर की भांति मूली को उखाड़ने के बाद अधिक दिनों तक नहीं रख सकते, इसलिए बाजार की मांग के अनुसार उखाड़ना चाहिए। पौधे हाथ से खींचकर भली-भांति उखाड़े जा सकते हैं।

बीज की तैयारी—बीज के लिए कार्तिक की बोई हुई मूली अच्छी होती है। अच्छे स्वस्थ पौधों को उखाड़कर उनकी जड़ के नीचे का कुछ भाग और ऊपर के पत्ते काटकर तीन-तीन फुट की, दूरी पर अच्छी उपजाऊ जमीन में लगा देना चाहिए। लगाने के कुछ ही दिन बाद नये पत्ते निकल आते है और रोपी हुई मूली जड़ें भी फेंक देती है जिनसे पौधों का पोषण होता है। इन पौधों में जब फलियां आ जाती हैं तो अच्छी बड़ी फलियां रखकर छोटी की तरकारी बनाई जा सकती है। जब फलियां पक जायं तो बीज निकालकर अच्छी तरह से सुखाने के पश्चात् बंद बर्तनों में रख देना चाहिए।

उपयोग और गुण—मूली की जड़ें, पत्ते और फल तीनों की तरकारी बनाई जाती है। जब जड़ और पत्ते काम में लाये जायं तो उनमें फल नहीं आने देना चाहिए क्योंकि फल के आने से जड़ और पत्तों की कोमलता नष्ट हो जाती है। मूली कच्ची भी खाई जाती है और इसका अचार भी बनाया जाता है।

पत्तों का साग पाचक, हल्का और गर्म होता है। जड़ की तरकारी पाचक, गर्म और स्वर को उत्तम करनेवाली होती है। ज्वर, कंठ-रोग और नेत्रों को भी इससे लाभ पहुंचता है। अर्श-रोग में भी इसका उपयोग अच्छा होता है।

*

शलजम, शलगम Turnip *Brassica rapa*

इसकी खेती इसकी जड़ों के लिए की जाती है परंतु कुछ लोग पत्तों का भी उपयोग करते हैं। पौधा मूली के पौधे-जैसा होता है, लेकिन जड़ मूली की जड़ के समान लंबी नहीं होती। वह गोल लट्टू के आकार की होती है।

शलजम

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन, इसके लिए अच्छी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। भारी मिट्टी में पारियों पर और हल्की में क्यारियों में लगाना ठीक होता है। इसलिए अन्तिम जुताई के बाद क्यारियां या पारियां बना लेनी चाहिएं। खाद इससे पहलेवाली फसल को देना अच्छा होता है, परंतु यदि ऐसा नहीं किया गया हो तो २०० मन के लगभग सड़ा हुआ गोबर का खाद देना चाहिए। कृत्रिम खाद देना हो तो ना० और फा० के खाद का उपयोग करना ठीक होता है। अन्य जड़दार फसलों के समान इसके लिए पोटाश की विशेष आवश्यकता नहीं होती।

बोना—डेढ़ सेर से दो सेर बीज प्रति एकड़ बोना चाहिए। बीज छींटकर भी बोये जा सकते हैं। परन्तु पंक्तियों में बोना अच्छा होता है। एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति के बीच का अन्तर एक फुट होना चाहिए। बीज बोने का समय श्रावण-भाद्रपद (जुलाई-अगस्त) है। बाद में बोने से शलजम ठीक नहीं बैठते। बाहर से आये हुए बीज आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) तक भी बोये जा सकते हैं। बीज पाव इंच से आधे इंच गहरे बोना चाहिए। पहाड़ों पर चैत्र से ज्येष्ठ तक बो सकते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय कुछ पौधों को उखाड़कर दूसरों का अन्तर निर्माण करना चाहिए। एक पौधे से दूसरा पौधा छः इंच की दूरी पर होना चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से ढाई-तीन महीने में फसल

तैयार हो जाती है। पैदावार २५० से ३०० मन तक हो जाती है। शलजम कुछ दिनों के लिए रखना हो तो पत्तों का थोड़ा-सा भाग जड़ों के साथ छोड़ देना चाहिए। महीन जड़ें जो शलजम के साथ लगी रहती हैं उन्हें भी जड़ से पृथक् नहीं करना चाहिए। ऐसे शलजम को ठंडे मकानों में मचानों पर कुछ समय के लिए रख सकते हैं।

बीज की तैयारी—मूली के बीज की भांति इसके भी बीज तैयार किये जा सकते हैं। परंतु ये सब जगह नहीं हो सकते। पहाड़ों पर ठंडे स्थानों में ही हो सकते हैं।

उपयोग और गुण—विशेषत: इसकी जड़ ही तरकारी के काम में लाई जाती है; परन्तु कोमल पत्तों की भी तरकारी बनाई जा सकती है। यदि सुखाना हो तो गाजर की भांति सुखाना चाहिए। शलजम की तरकारी क्षुधावर्धक और वीर्यवर्धक होती है। खांसी में भी इससे लाभ पहुंचता है।

चुकंदर Beet *Beta vulgaris*

इसकी खेती इसकी जड़ के लिए की जाती है। प्रारंभ में भूमध्य-सागर के आसपास, जो इसका जन्मस्थान माना जाता है, इसके पत्ते ही काम में लाये जाते थे।

इसका पौधा दो फुट ऊंचा होता है। जड़ गाजर की भांति भूमि में बैठती है जो लंबी और गोल—दो प्रकार की होती है।

चुकंदर

जमीन, जुताई और खाद—अच्छे और कोमल चुकंदर बलुआ जमीन में होते हैं। भूमि की जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। बरसात में बोये जाने-वाले के लिए पारियां और बाद में बोये जानेवाले के लिए क्यारियां तैयार करवानी चाहिएं। खाद इससे पहली फसल को देना ठीक होता है। इसी फसल को दिया जाय तो जड़ों की कोमलता और सुंदरता दोनों नष्ट

हो जाती है। जड़ सुंदर न रहकर फूट जाती है। हो सके तो कृत्रिम खाद के रूप में बीस सेर ना०, तीस सेर फा० पे०, पचास सेर पो० आ० प्रति एकड़ पहुंचे इतना खाद दे देना चाहिए।

बोना—एक एकड़ के लिए करीब तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है। इन्हें एक इंच गहरे बोना चाहिए। पंक्ति बारह इंच से पंद्रह की दूरी पर होनी चाहिए। भाद्रपद से कार्तिक (अगस्त से अक्टूबर) तक इसके बीज बोये जा सकते हैं। पहाड़ी पर चैत्र-वैशाख (फरवरी-मार्च) में बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय जब पौधे दो-दो इंच ऊंचे हो जायं तो उनकी छंटनी करनी चाहिए। पौधे से पौधा चार इंच से छः इंच की दूरी पर होना चाहिए। बरसातवाली फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। जिस जमीन में तरी कम हो उसमें देर से बोई जानेवाली फसल को आवश्यकतानुसार सींचना चाहिए। सिंचाई के समय पौधों की जड़ों पर मिट्टी भी चढ़ाते रहना चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से ढाई-तीन महीने में फसल तैयार हो जाती है। जब जड़ें एक से डेढ़ इंच मोटी हो जायं तब उखाड़ना चाहिए। इससे मोटी हो जाने पर वे तरकारी के योग्य नहीं रहतीं। इसकी पैदावार चालीस-पचास मन के करीब हो जाती है। कुछ दिनों तक इन्हें रखना हो तो ठंडे हवादार मकान में शलजम की भांति यानी ऊपर के पत्ते आधे काटकर और महीन जड़ों को मोटी जड़ से पृथक् नहीं करके रखना चाहिए। राख, बालू या मिट्टी में भी इन्हें रख सकते हैं। जब इनमें रक्खे जायं तो जड़ों की ढेरी पर थोड़ी राख, बालू या मिट्टी डालने के पश्चात् एक तह सूखी घास की देकर ऊपर से फिर मिट्टी से ढकना चाहिए।

दूसरी फसल के लिए बीज गाजर के बीज की भांति तैयार किये जा सकते हैं परंतु चुकंदर सब जगह नहीं फलते। इसलिए जहां न फले, वहां अन्य स्थानों से ही बीज मंगवाना चाहिए।

उपयोग और गुण—इसकी जड़ और पत्ते तरकारी बनाने के काम

में लाये जाते हैं। सिरके में अचार भी अच्छा बनता है। दूसरी तरकारियों के साथ इसकी तरकारी बनाई जाय तो उनमें इसका रंग आ जाता है जिसे कुछ लोग पसंद करते हैं। इसकी तरकारी और अचार के उपयोग से पाचन-शक्ति तीव्र होती है। अन्य देशों में विशेषत: जर्मनी और रूस में ऐसी जातियों के चुकंदर से, जिनमें पंद्रह-बीस शतांश चीनी रहती है, चीनी बनाई जाती है।

पारस्निप Parsnip *Pastinaca sativa*

इसकी जड़ मूली-जैसी लंबी होती है। इसकी फसल बहुत देर से तैयार होती है और मांग विशेष नहीं होती। इसलिए भारत में इसे आदर मिलने की आशा भी कम है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। हलकी बलुआ जमीन में यह अच्छा नहीं होता। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। गोबर के खाद के सिवाय बोने के पहले एक मन प्रति एकड़ के हिसाब से एमोनियम सलफेट मिट्टी में मिला देना चाहिए। अंतिम छंटाई के बाद भी इतना ही फिर दे देना चाहिए।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में इसे बोते हैं। डेढ़ सेर से दो सेर बीज प्रति एकड़ बोना चाहिए। बीज क्यारियों में आधे इंच गहरे बोये जाते हैं। पंक्तियां डेढ़-डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए। पहाड़ों पर यह गर्मी में बोया जाता है।

निंदाई और सिंचाई—इसके बीज बहुत देर से अंकुर फेंकते हैं। लगभग एक महीना लग जाता है, इसलिए निंदाई की ओर पूरा लक्ष्य रखना चाहिए। जब पौधे दो इंच के करीब बढ़ जायं तो उन्हें पांच-छ: इंच के अंतर पर कर देना चाहिए। आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से करीब छ: महीने बाद फसल तैयार होती है। इसके भी बीज सब जगह नहीं हो सकते, इसलिए बाहर से मंगाकर ही बोना चाहिए।

उपयोग—इसकी जड़ तरकारी के काम में लाई जाती है। काटकर पकाने की अपेक्षा समूची जड़ उबालना अच्छा होता है। इसका स्वाद कुछ मीठा होता है।

सॉल्सीफाई Salsify *Tragopogon porrifolius*

इसका भी विस्तार अभी भारतवर्ष में विशेष रूप से नहीं हुआ है, परंतु फिर भी कहीं-कहीं बगीचों में इसे स्थान मिल जाता है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद पारस्निप में जिस रीति से दिया जाता है उसी भांति देना चाहिए।

बोना—चार सेर बीज प्रति एकड़ के हिसाब से बोना चाहिए। पंक्ति-से-पंक्ति में बारह से पंद्रह इंच का अंतर ठीक होता है। बीज आधे इंच गहरे बोने चाहिए। बोने का समय आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) है। पहाड़ों पर गर्मी में बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके छः से नौ इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। इसकी फसल देर से आती है इसलिए आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से छः महीने में फसल तैयार होती हैं। फसल उठाने के बाद बालू में कुछ समय के लिए ही रख सकते हैं।

उपयोग—जड़ों को छीलकर उनकी तरकारी बनाई जाती है।

रुटाबागा Rutabaga *Brassica napobrassica*

यह शलजम-जैसा ही होता है। अंतर यह होता है कि शलजम के पत्ते हरे और खुरदरे होते हैं और इसके साफ और कुछ नीले रंग के होते हैं। खेती शलजम की खेती के समान होती है। बोने के समय से चार-पांच महीने में फसल तैयार हो जाती है। विशेषतः इसकी जड़ें तरकारी के काम में लाई जाती हैं।

स्किरेट Skirret *Sium sisarum*

इसकी जड़ एक न होकर बहुत-सी होती हैं और उनके गुच्छे-के-गुच्छे बैठते हैं। जड़ें मीठी और भूरे रंग की होती हैं। खेती साल्सीफाई की खेती के समान होनी चाहिए। बीज से पैदा करना हो तो बीज नर्सरी में गिराकर जब पौधे के दो इंच ऊंचे हो जायं तब खेतों में लगा देना चाहिए। इसे खूंटी से अर्थात् पौधे के नीचे के तने को जड़सहित चीरकर लगा करके भी पैदा कर सकते हैं। फसल चार-पांच महीने में तैयार होती है। कुछ दिन रखना हो तो खेत में ही रख सकते हैं।

उपयोग—जड़ों का अन्तःसार जो सफेद रंग का होता है उसकी तरकारी बनाई जाती है।

: १२ :

वे साग-भाजी जिनके धड़ या शाखाएं काम में आती हैं

आलू Potatoes *Solanum tuberosum*

आलू का प्राचीन निवासस्थान पेरू और चीली (दक्षिण अमरीका) माना गया है। वहीं से इसका विस्तार सब जगह हुआ है। आलू की कई जातियां हैं। जिन जातियों का आदर भारत ने किया है वे भी कई हैं। परंतु सब दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। एक वे जो समतल भूमि में होती है और दूसरी वे जो पहाड़ों पर ही अच्छी होती हैं। पहाड़ों पर से बीज मंगवाकर मैदानों में लगाये जायं तो एक-दो फसल ठीक होती है। पहाड़ी आलू दूसरे आलू की अपेक्षा जल्दी पकते हैं। उबालने पर ये जल्दी फूट जाते हैं और तोड़ने पर दाना बिखर जाता है। इनके स्वाद

आलू

में भी कुछ भिन्नता होती है। साधारणतः अच्छे आलू वे माने जाते हैं जिनका छिलका साफ हो, जिनकी आंखें गहरी न हों, जो बड़े, लंबे और गोल हों, जिनका गूदा सफेद हो और जो उबालने पर यदि तोड़े जायं तो जल्दी से बिखर जायं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पहाड़ों की अपेक्षा समतल भूमि में होनेवाले आलू ज्यादा पसन्द करते हैं। समतल भूमि में होनेवाले आलू में लाल आलू पटना के आस-पास के और सफेद आलू फर्रुखाबाद के अच्छे होते हैं।

आलू के पौधे की बाढ़ भूमि की उर्वरा शक्ति, खाद और आलू की जाति पर निर्भर है। अच्छी जमीन में समतल भूमि पर होनेवाले आलू का पौधा दो फुट ऊंचा होकर इधर-उधर अपनी टहनियां गिरा देता है। कमजोर मिट्टी में इनकी बाढ़ एक फुट तक होती है। जहां से पौधे की शाखाएं फूटती हैं वहीं से सफेद-सफेद-सी जड़ों के समान शाखाएं (वह) निकालती हैं, वे जमीन में दबा दी जाती हैं। उन्हींके मुंह पर आलू बैठते हैं। पहाड़ी आलू का पौधा छोटा होता है। इसका फैलाव विशेष नहीं होता। पौधे की जड़ के निकट ही आलू के गुच्छे बैठते हैं, इससे इनपर विशेष मिट्टी नहीं चढ़ानी पड़ती। पौधे से पौधे का अन्तर कम रक्खा जाता है।

जमीन, जुताई और खाद—आलू करीब-करीब सब प्रकार की मिट्टी में पैदा किये जा सकते हैं, परंतु दुमट और कछार भूमि अच्छी होती है। खेतों की जुताई कम-से-कम छः इंच गहरी और अच्छी होनी चाहिए। ढाई सौ से तीन सौ मन तक अच्छे सड़े हुए गोबर का खाद देना चाहिए। यदि कम सड़ा हुआ हो तो वर्षा ऋतु के आरंभ में डालना चाहिए ताकि बरसात में अच्छी तरह सड़ जाय। हड्डियों का सड़ा हुआ खाद गोबर के खाद के साथ डालना भी अच्छा होता है। करीब तीन मन हड्डी प्रति एकड़ पहुंचे इतना खाद डालना चाहिए। राख से भी इसको लाभ पहुंचता है। गोबर का खाद कम हो तो ना०-पूर्ता कृत्रिम खाद भी दिये जा सकते हैं। यदि गोबर के खाद की मात्रा आधी डाली जाय तो करीब

बीस सेर से पचीस सेर ना० पहुंचे इतना कृत्रिम खाद या खली का खाद देना चाहिए। मेरे लगातार चार साल के प्रयोगों में अन्य खादों की अपेक्षा सरसों की खली का खाद इसके लिए बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ। गोबर के खाद के अभाव में करीब १० मन खली डालनी चाहिए। जिस पंक्ति में आलू लगाये जायं उसीकी मिट्टी में खली का चूरा मिलाते जाकर आलू लगाते जाना चाहिए।

बोना—आलू के लिए सदा आलू ही लगाये जाते हैं। सिर्फ वैज्ञानिक प्रयोग के लिए जब दो जाति के मेल से तीसरी जाति पैदा करनी होती है तब बीज पैदा करते हैं। समतल भूमि में आलू आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में लगाये जाते हैं। पहाड़ों पर माघ-फाल्गुन (फरवरी-मार्च) में लगाते हैं और फिर आषाढ़ (जून) में भी लगाते हैं। कहीं-कहीं दो फसलें ली जाती हैं। बंबई प्रांत में भी कहीं-कहीं दो फसलें लेते हैं। आलू लगाने के लिए यदि छोटे हुए तो समूचे और यदि बड़े हुए तो काटकर टुकड़े लगाना चाहिए। बड़ी सुपारी या अंडे के आकार के आलू लगाना ठीक होता है। इनसे बड़े हों तो टुकड़े करके लगाना चाहिए। बीज के लिए यदि देरी से बोई गई फसल के आलू रक्खे जायंगे तो उत्तम होगा। ऐसे आलू तैयार होने पर छोटे रहेंगे। जिन्हें काटना नहीं पड़ेगा और वे टिकने में भी अच्छे होंगे। बड़ी सुपारी से छोटे आलू भी लगा सकते हैं, परंतु ऐसा करने से फसल कुछ कमजोर होती है। आलू को दो-तीन इंच गहरे बोना चाहिए। पहाड़ी आलू के लिए पंक्ति-से-पंक्ति डेढ़ फुट और पौधे-से-पौधा छः से नौ इंच की दूरी पर होना चाहिए। दूसरे आलू के लिए अच्छी उपजाऊ जमीन में पंक्तियों में ढाई फुट का और पौधों में नौ इंच से बारह इंचका अंतर ठीक होता है। कमजोर भूमि में पंक्तियां दो फुट के अन्तर पर और पौधे छः इंच से नौ इंच के अन्तर पर होने चाहिए। आलू के आकार और रोपने की दूरी पर बीज का वजन निर्भर है। बारह मन से बीस मन आलू प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। पहाड़ी आलू जब मैदान में लगाना हो तो सर्दी पड़ने लगे तब लगाना चाहिए।

निंवाई और सिंचाई—निंदाई के समय जब पौधे आलू बैठनेवाली सफेद शाखाएं बाहर फेंकने लगें तब उनपर मिट्टी चढ़ानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो वे फिर पत्ते फेंक देती हैं और आलू बैठने नहीं पाते। पहाड़ी आलू में दो बार और दूसरे में तीन-चार बार मिट्टी चढ़ानी पड़ती है। बहुत-से स्थानों में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती और बहुत-से ऐसे भी हैं जहां बिना सिंचाई के आलू हो ही नहीं सकते, इस लिए आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—आलू की फसल चार-पांच महीने में तैयार हो जाती है। जब पत्ते पीले पड़ने लगें तब समझना चाहिए कि अब आलू तैयार हो गए। कुछ लोग जब पौधे सूख जाते हैं तब निकालते हैं। जो आलू बीज के लिए रक्खे जायं उन्हें कुछ जल्दी उठा लेना चाहिए। जब पौधे पीले पड़ जायं लेकिन पूरे न सूखें तब उठा लेना उत्तम होगा। देरी से उठाने से आलू का छिलका कहीं-कहीं फट जाता है और उसमें व्याधि के जंतु घुस जाते हैं जिससे आलू सड़ जाते हैं—अधिक दिनों तक नहीं ठहरते। समतल भूमि में फरवरी के अन्त में यानी फाल्गुन के शुरू में ही उठा लेना चाहिए। आलू की पैदावार पचास मन से ढाई सौ मन तक हो जाती है।

बीज के लिए आलू सुरक्षित रखने की युक्ति—आलू की खेतीवालों के लिए यह विषय बड़े ही महत्त्व का है, क्योंकि आलू सड़ते बहुत हैं। पचास शतांश से पचहत्तर शतांश तक सड़ना तो साधारण बात है। कभी-कभी इससे भी अधिक हानि पहुंचती है। आलू को कीट और सूक्ष्म जंतु दोनों ही हानि पहुंचाते हैं। उनसे बचाने के लिए पत्थर के कोयले की पूखी हुई राख या लकड़ी के कोयले का चूर्ण काम में लाना चाहिए। कोयले के चूर्ण में रक्खे हुए आलू के लगाने से पैदावार[1] भी विशेष होती है।

देवदार की लकड़ी के संदूकों में बीज के आलू इस भांति रखने

---

[1] पृष्ठ ७६

चाहिए कि आलू बीचमें रहें और उनके चारों ओर एक-एक इंच पर्त कोयले के चूर्ण का आजाय। कुछ चूर्ण आलू भरते समय उनके ऊपर भी डालते रहना चाहिए। फिर उन्हें बंद करके ठंडे हवादार घर में रखना ठीक होता है। इस प्रकार से रक्खे हुए आलू की बीच में देख-भाल नहीं करनी पड़ती। बोने के समय ही खोलना चाहिए और खोलने पर शीघ्र ही बो देना चाहिए। प्रत्येक संदूक लंबी-चौड़ी चाहे जितनी हो परंतु ऊंचाई में आठ-नौ इंच के करीब होनी जाहिए जिसमें आलू की तह छः इंच से मोटी न हो। कोयले के चूर्ण में पक्की फर्श पर भी आलू भली-भांति रक्खे जा सकते हैं। उसी हालत में जालीदार तार से ढकने पड़ते हैं जिसमें चूहे हानि नहीं पहुंचायें इस तरह रखने से संदूकों का खर्च बच जाता है।

वर्तमान समय में ठंडे गोदाम बहुत बन गए हैं। आलू के बीज उनमें रक्खे जा सकते हैं। कुछ किराया लेकर ऐसे गोदामवाले बीज रख लेते हैं।

उपयोग और गुण—ऐसा विरला ही होगा जो आलू का उपयोग तरकारी के लिए नहीं जानता हो। अन्य व्यवसाय के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। इसका चूर्ण (स्टार्क) अरारूट आदि के चूर्ण के बदले काम में लाया जाता है। इसके चूर्ण से गोंद भी बनाया जाता है। इसकी तरकारियां भी कई प्रकार की बनती हैं। अन्य तरकारियों को स्वादिष्ट करने के लिए भी उनमें इसे मिला देते हैं। इसकी तरकारी सूखी, बलदायक, वीर्यवर्धक और कुछ अग्निउद्दीपक होती है। दुबले-पतले व्यक्तियों के लिए इनका उपयोग अच्छा माना गया है। आवश्यकता से अधिक मोटे व्यक्तियों को इनका सेवन बहुत कम करना चाहिए।

गेहूं की कमी[1] को पूरा करने में आलू से भी अच्छी मदद मिल जाती है। एक सेर गेहूं के आटे में पाव भर उबाले हुए आलू मिलाकर रोटी

---

[1] श्रीमती व्यास—'भोजन की समस्या में आलू का स्थान' हिन्दुस्तान, ६ मार्च, १९४७ ई०।

बनाई जाय तो वह बड़ी मुलायम और स्वादिष्ट बनती है। पता नहीं लगता कि आटे में आलू मिलाया गया है।

आलू को सुखाना—युद्ध में सैनिकों को सब्जी सूखी ही उपलब्ध हो सकती है। इसकी वजह से सूखे आलू की मांग बहुत बढ़ जाती है। ऐसे आलू इस रीति से तैयार किये जा सकते हैं ? अच्छे बड़े-बड़े आलू धुलवाकर छिलवा लेने चाहिए। बाद में पाव इंच मोटाई के टुकड़े कर उन्हें उबलते हुए पानी में छोड़कर निकालकरके चलनियों पर फैलाकर सुखाना चाहिए। सुखानेवाले कमरेका तापमान ६५ से ७० शतांश होना चाहिए। सूखे आलू सफेद या हलके पीले रंग के अच्छे माने जाते हैं।

आलू के लच्छे—अच्छे आलू धोकर छील करके कद्दूकस से उनके लच्छे बना लिये जायं। बाद में उन्हें दो मिनट तक उबलते हुए पानी में डालकर निकाल करके सुखा लेना चाहिए। सूखे हुए लच्छों को जब चाहे घी में तल लो। घी में डालते ही तुरंत फूल जाते हैं। बाद में नमक और मसाला छिड़क देने से बड़े स्वादिष्ट बन जाते हैं।

आलू के पापड़—कद्दूकस में निकाले हुए आलू के लच्छे जब पानी में धोये जाते हैं तो कुछ पदार्थ घुलकर पानी में चला जाता है। यदि उस पानी को थोड़ी देर रक्खा जाय तो कुछ दानेदार चिकना पदार्थ नीचे बैठ जाता है। इस पदार्थ को प्राप्त करने के लिए ऊपर का पानी धीरे-से बहा देना चाहिए।

कारखानों में जहां आलू के टुकड़े सुखाए जाते हैं और पानी में उबाले जाते हैं वहां भी ऐसा पदार्थ वृथा चला जाता है जो लगभग पांच-छः शतांश के बराबर होता है। अन्न-संकट के समय ऐसे पदार्थ का सदुपयोग करने के लिए श्रीमती व्यास ने कुछ प्रयोग किये तो अन्य पदार्थों की अपेक्षा पापड़[1] बड़े अच्छे बने। उसी प्रयोग के आधार पर निम्नलिखित ब्योरा दिया गया है।

---

[1] श्रीमती व्यास—'आलू सुखाने की घरेलू युक्ति' हिन्दुस्तान, फरवरी ९, १९४७ ई०।

जिस पानी में घुले हुए लच्छे दो मिनट तक उबाले जाते हैं उसमें भी कुछ पानी रह जाता है। ऐसे पानी में दो-तीन बार के लच्छे उबाले जायं तो उसमें घुला हुआ पदार्थ कुछ अधिक हो जाता है। ऐने पानी में जो पदार्थ लच्छे धोने के पानी में जम जाता है उसे डालकर उबाला जाय तो चार-पांच मिनट में वह सब पानी गाढ़ी लेई के समान हो जाता है। इसमें आवश्यकतानुसार नमक, जीरा और मशाला मिलाकर कपड़े पर सुखा लेना चाहिए। चारपाई या चौकी पर कपड़ा रखकर उसपर जगह-जगह चमच से उबाला हुआ गाढ़ा पदार्थ डाला जाय तो वह फैलकर कपड़े पर सूख जायगा। सूख जाने पर कपड़े पर नीचे की तरफ से थोड़ा-थोड़ा पानी छींट कर पापड़ कपड़े से छुड़ा लें। ऐसे पापड़का रंग कुछ मैला-सा नजर आता है; परंतु जब तले जाते हैं तो वे बिल्कुल सफेद हो जाते हैं और साबूदाने के पापड़-जैसे बन जाते हैं। दस सेर आलू से डेढ़ सेर से कुछ अधिक लच्छे और आधा सेर से कुछ अधिक पापड़ बन जाते हैं। संख्या में २०० तक होंगे।

शकरकंद, अलुआ Sweet Potatoes *Ipomea batatas*

इसकी जन्मभूमि अमरीका है। वहीं से इसका फैलाव अन्य स्थानों में हुआ है। इसकी दो जातियां हैं एक सफेद दूसरी लाल। सफेद की अपेक्षा लाल शकरकंद अधिक मीठा होता। शकरकंद की लताएं जमीन पर फैली रहती हैं और लगभग आठ-दस फुट तक फैल जाती हैं। जिस जगह लता लगाई जाती है वहीं शकरकंद बैठते हैं। यदि जुताई अच्छी हुई तो कंद आठ-दस इंच लंबे और सीधे होते हैं। कम जुताईवाली कठोर जमीन में छोटे रहकर मुड़ जाते हैं। इसकी एक जाति लंका में ऐसी होती है जिसमें शकरकंद के गुच्छे-के गुच्छे बैठते हैं।

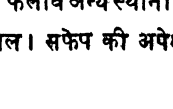

शकरकंद

शकरकंद की खेती से विशेष लाभ यह होता है कि जमीन सुधर जाती है। इसकी लताएं ऐसी घनी फैल जाती हैं कि घास-पात जमने ही नहीं

पाते। इसके सिवाय इनके खोदने के लिए अठ-दस इंच मिट्टी खोदनी पड़ती है जिससे खेतों की जुताई अच्छी हो जाती है।

जमीन, जुताई और खाद—यह हर प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। परंतु बलुआ या बलुआ-दुमट मिट्टी बहुत अच्छी होती है, क्योंकि उसमें कंद को बनने और बढ़ने में आसानी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। गोबर का सड़ा हुआ खाद दो सौ से ढाई सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए। राख से भी इसको लाभ पहुंचता है। गोबर के खाद की कमी कृत्रिम खाद द्वारा भी पूरी की जा सकती है।

बोना—इसके लगाने के लिए इसकी लताएं लगाई जाती हैं। प्रति एकड़ करीब बीस हजार टुकड़ों की आवश्यकता होती है। लताओं के ऊपरी भाग के टुकड़े करीब एक हाथ काटकर एक-एक हाथ की दूरी पर पांच-छः इंच गहरे लगाये जाते हैं। कहीं-कहीं इसकी दो फसलें होती हैं। बिहार में पहली फसल के लिए आश्विन (सितंबर) में और दूसरी के लिए माघ (जनवरी) में लगाते हैं। आश्विनवाली मार्गशीर्ष और पौष तक तैयार होती है और माघ-फाल्गुन तक चलती है। माघवाली जेष्ठ-आषाढ़ में तैयार होती है। कहीं-कहीं बरसात और जाड़े में भी लगाते हैं। गुजरात में जाड़े में लगाया जाता है। कोंकन में बरसात और जाड़ा दोनों मौसम में लगाते हैं।

अमरीका में कंद ही गाड़कर नर्सरी में उनसे निकले हुए पौधे तैयार किये जाते हैं। जब पौधे तीन-चार इंच ऊंचे हो जाते हैं तो उन्हें लगा देते हैं। जहां लगाने के लिए लता न मिले वहां इस युक्ति से काम चल सकता है।

निंदाई और सिंचाई—जबतक लता से जमीन ढकने नहीं पाती तब-तक निंदाई करनी पड़ती है। उसके ढक जाने पर घास-पात जमने नहीं पाते। सिंचाई की आवश्यकता सब जगह नहीं होती। परंतु जहां जरूरत हो वहां करनी चाहिए। इसकी लता बड़ी कोमल होती है जिसे पाले से बड़ी हानि पहुंचती है। इससे बचाने के लिए जिन दिनों में पाला गिरने की संभावना हो उन दिनों में रात को घास या चटाइयों से लताओं को ढंककर

रखना चाहिए। यह कार्य समूची फसल के लिए तो नहीं किया जा सकता परन्तु जो लताएं रोपने के लिए रक्खी जायं उन्हें अवश्य ढकना चाहिए।

फसल की तैयारी—जब भूमि फटने लगे और पत्ते सूखने लगें तब समझना चाहिए कि फसल उठाने योग्य हो गई है। कुछ लोग इसे एक साथ खोद लेते हैं और कुछ खेतों में छोड़कर आवश्यकतानुसार खोदते रहते हैं। तैयार हो जाने पर भी शकरकंद एक-दो महीने तक खेतों में रहने दिये जा सकते हैं। एक साथ जो फसल उठा ली जाती है उसे कुछ दिनों तक सम्हाल-कर रखना पड़ता है। उसके लिए यह देखना चाहिए कि शकरकंद अच्छे पके हुए हों। दो-एक कंद यदि काटकर छोड़ दिये जायं और उनके काटे हुए भाग जल्दी से सूख जायं तो समझना चाहिए कि फसल उठाने योग्य हो गई। जिनमें कच्चापन होता है उनके काटे हुए कोर जल्दी नहीं सूखते और सूखने पर काले पड़ जाते हैं। तैयार फसल गर्म और सूखे वातावरण में अच्छी रहती है। फसल खोदने के लिए हल से खेत जोतकर कंद चुनवा लिए जाते हैं। थोड़ी जमीन में होने से मजदूरों से भी खुदवा सकते हैं। पैदावार एक सौ से ढाई सौ मन तक हो जाती है।

दूसरी फसल के लिए लताएं पैदा करना—अश्विनवाली फसल से माघ में रोपी जानेवाली फसल के लिए लताएं काट लेते हैं और माघ में लगाई हुई लताओं से काटकर अषाढ़ में थोड़-सी भूमि में लाग देते हैं जो अश्विन तक तैयार हो जाती है। फिर उन्हें उस स्थान से हटाकर जिन खेतों में लगाना होता है वहां लगा देते हैं। कहीं-कहीं गर्मी में पानी देकर फसल को वैसे ही छोड़ देते हैं जिससे कंद जमीन में सड़ जाते हैं और लताएं लगी रहती हैं। इन्हें काटकर समय आने पर खेतों में लगा देते हैं।

उपयोग और गुण—कंद को वैसे ही उबालकर खाते हैं कुछ स्थानों में गरीब व्यक्तियों के लिए एक समय का मुख्य आहार इसीका होता है। तरकारी हलुआ आदि के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। सुखाकर आटा भी बना सकते हैं जिसे फलाहार के काम में लाते हैं। शकरकंद को उबालकर उनका छिलका हटा देना चाहिए। बाद में

गोल-गोल टुकड़े काटकर सुखा सकते हैं। कृत्रिम गर्म हवा में सुखाना हो तो तापक्रम ७२ से ८० शतांश तक होना चाहिए। कोमल पत्तों की तरकारी बनाई जा सकती है। पत्तियां पशुओं को खिलाई जाती हैं शकरकंद भारी, गर्म, बलदायक और कुछ दस्तावर होते हैं।

टपियोका Tapioca, *Monihot Esculenta (Utilisima)*

दक्षिणी भारत में विशेषतः केरल में इसकी खेती बहुतायत से होती है। अन्नाभाव के दिनों में इसकी खेती से काफी सहायता मिल जाती है। इसके पौधों की ऊंचाई जाति-अनुसार पांच-छः फुट से लेकर आठ-दस तक हो जाती है। कुछ जातियां छः महीने में तैयार हो जाती हैं तो कुछ को साल-डेढ़ साल लग जाता है। कुछका कंद सफेद तो कुछका पीलापन लिये हुए होता है। किसी-किसीमें एक प्रकार का विष (Glucoside) रहता है, जो उबालने से नष्ट हो जाता है। खानेवाली जातियों में ऐसा विष नहीं होता या बहुत कम होता है।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट जिसमें पानी का नितार अच्छा होता है इसके लिए उत्तम होती है। पानी लगनेवाली मिट्टी अच्छी नहीं होती, उसी भांति भारी मिट्टी भी अच्छी नहीं होती। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। इसके लिए सौ-डेढ़ सौ मन गोबर पत्तेके मिश्रण का खाद उत्तम होता है। अंतिम जुताई के बाद जाति-अनुसार दो-ढाई फुट की दूरी पर एक फुट व्यास के उतने ही गहरे गढ़े बना लेने चाहिए।

बोना—उपर्युक्त रीति से तैयार किये हुए गढ़ों में पौधों की डंडी के नौ-दस इंच लंबे टुकड़े लगाये जाते हैं। ऐसे टुकड़े खड़े गाड़े जाते हैं। चूंकि सब टुकड़े जड़ें नहीं फेंकते हैं अतः एकगढ़ेमें दो-दो टुकड़े लगाना उत्तम होगा। जब जम जायं तो अच्छेको रखकर दूसरे को निकालकर फेंक देना चाहिए। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि एक गढ़ा खोदकर उसमें कंद के टुकड़े खड़े गाड़ दिये जाते हैं और आवश्यकता होने से पानी भी दे देते हैं। दस-पंद्रह दिन में जब अंकुर निकल आते हैं तो अंकुरित डंडियों के नौ-दस इंच लंबे

टुकड़े काटकर कलमों की भांति लगा देते हैं। इन टुकड़ों का दो-तिहाई भाग भूमि में गाड़ना चाहिए। इनके लगाने का उत्तम समय वर्षा ऋतु का प्रारंभ होगा। सिंचाई का प्रबंध हो तो वर्षा के पहले भी लगा सकते हैं। ढाई-ढाई फुट की दूरी पर लगाने से लगभग सात हजार टुकड़े लगेंगे।

निंदाई और सिंचाई—आवश्यकतानुसार निंदाई और सिंचाई होनी चाहिए। अधिकांश भागों में बिना सिंचाई के ही उपजाया जाता है। निंदाई के समय दो-एक बार मिट्टी भी चढ़ानी होती है।

फसल की तैयारी—रोपने के समय से छः-सात महीने बाद तरकारी के लिए कंद खोद सकते हैं, लेकिन जब चूर्ण बनाना हो तो पौधे पीले पड़ जायं और पत्ते झड़ने लगें तब उखाड़ना चाहिए। कभी-कभी कंद के पास की जमीन फट भी जाती है। कंद खोदने से पहले यदि पानी हो तो सिंचाई कर देनी चाहिए ताकि सरलता से पूरे-के-पूरे कंद खुद सकें। एक एकड़ से अच्छे कंद सौ-सवा सौ मन मिल जाते हैं। कंद को उखाड़ने के बाद दूसरी कंदवाली फसलों की भांति धोये नहीं जाते, बल्कि उनपर गीली मिट्टी चढ़ा देते हैं ताकि वे ताजे बने रहें। कुछ समय तक रखना हो तो भूमि में ही रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—कंद को छीलकर और उबालकर शकरकंद की भांति काम में लाते हैं। इनसे सब्जी और मिठाई भी बनाते हैं। इसके चूर्ण से साबूदाना भी बन सकता है। इसके लिए कंद को पीसकर पानी में डाल देते हैं। सफेद पदार्थ नीचे जम जाता है। उसीसे साबूदाना बनाते हैं।

कंद छीलकर छोट-छोटे गोल टुकड़े करके सुखाकर भी रख सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इन्हें काम में लाते हैं। छीलने के लिए ऐसा चाकू काम में लाना चाहिए जिससे कंद का रंग खराब न हो। यदि टुकड़े न रखना हो तो चूर्ण बनाकर भी रख सकते हैं। गीले कंद छीलकर टुकड़े बनाये जायं तो लगभग तीसरा भाग चूर्ण निकल आयेगा। आटा

बनवाया जाय तो चौथा भाग और साबूदाना छठा भाग मिल जाता है[1]। साबूदाना बनाने के बाद जो चूर्ण रह जाता है उसे पशुओं को खिला सकते हैं। पौधे के डंठल का दस शतांश भाग बीज और शेष जलाने के काम आ जाता है।

अर्बी, घुइयां Arum *Colocasia esculenta(antiquorum)*

अर्बी

इसके पत्ते चिकने और बहुत बड़े होते हैं। पत्तों की डंडी भी डेढ़-दो फुट लंबी होती है। इसकी कई जातियां होती हैं। इसके-जैसी ही एक जंगली अर्बी होती है, जिसकी तरकारी नहीं बनाई जाती।

जमीन, जुताई और खाद—देहातों में जलाशयों के आस-पास तथा घरों के निकट इसे लगा देते हैं। वहीं यह बढ़ती रहती है। खेतों में लगाने के लिए जमीन की जुताई अच्छी तरह से करके दो-दो फुट की दूरी पर नालियां बना लेनी चाहिए। इसे क्यारियों में भी लगा सकते हैं। यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है परंतु बलुआ-दुमट और दुमट अच्छी होती है। जब भारी मिट्टी में लगाई जाय तो पारियों पर ही लगाना चाहिए। डेढ़ सौ से दो सौ मन तक सड़ा हुआ खाद इसके लिए ठीक होता है।

बोना—वर्षा के प्रारंभ में यानी आषाढ़ (जून) महीने में इसकी गांठें लगाई जाती हैं। एक एकड़ के लिए छोटी-बड़ी अर्बी के अनुसार दस-बारह मन बीज (अर्बी) की आवश्यकता होती है। गांठों को एक-एक फुट की दूरी पर और तीन-तीन इंच गहरी लगाना चाहिए। यदि क्यारियों में लगाई जायं तो पंक्तियां दो फुट और पौधे एक फुट की दूरी पर होने चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ते जायं, उनपर मिट्टी चढ़ाते जाना चाहिए। इसके लिए सिंचाई की जहां

---

[1] Krishnamurthy, 1947. Madras Agril. Journal 36. p. 523.

आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से दो-तीन महीने बाद से ही पत्ते उपयोग के योग्य हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों पत्ते पुराने होते जायं उन्हें डंडी-सहित तोड़कर बेच देना चाहिए। चार-पांच महीने बाद अर्बी भी खोद-कर काम में लाई जा सकती है परंतु पूरी फसल पौष-माघ तक तैयार होती है। इसकी पैदावार करीब तीन सौ मन तक हो जाती है।

इसे कुछ दिनों के लिए रखना हो या बीज के लिए रखना हो तो सूखे वातावरणवाले हवादार मकान में मचान पर रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—इसके पत्ते तरकारी और पकौड़ी आदि बनाने के काम आते हैं। बहुत-से लोग पत्तों का उपयोग न करके सिर्फ पत्तों की डंडी की ही तरकारी बनाते हैं। कंद की तरकारी सब लोग खाते हैं। यह बलदायक, चिकनी और भारी होती है। पत्ते की डंडी के रस से बहता हुआ खून बंद हो जाता है। घाव भी इससे जल्दी अच्छा होता है। अर्बी का रस दस्तावर होता है। बर्र आदि जहांपर डंक मार दें वहां इसके लगाने से आराम मिलता है।

गराडू फर Yams *Dioscorea alata var. globosa etc.*

रतालू Yams *Dioscorea alata var. purpurea*

ये कई जाति के होते हैं। साधारण तौर पर इनके दो विभाग किए जा सकते हैं—गराडू और दूसरे रतालू। इनमें भिन्नता यह होती है कि छीलने पर गराडू सफेद निकलते हैं और रतालू लाल या बैंगनी रंग के। पहले की अपेक्षा दूसरा कुछ महंगा बिकता है और स्वाद में भी कुछ अच्छा होता है। गराडू गोल और लंबे दो प्रकार के होते हैं। रतालू बहुधा लंबे ही होते हैं। गोल गराडू का व्यास करीब छः इंच का होता है। इनकी बेल बहुत लंबी होती है जो जमीन पर छोड़ दी जा सकती है या इसे मचानों पर भी चढ़ा सकते हैं। मचानों पर चढ़ाना पौधों के लिए विशेष हितकर होता है।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन इनके

लिए अच्छी होती है। जुताई खूब गहरी होनी चाहिए, क्योंकि जितनी गहरी जुताई होगी कंद उतना ही अच्छा बैठेगा। इनके लिए कुछ कम सड़ा हुआ खाद भी हानिकारक नहीं होता। गोबर, पत्ते, घास-पात इत्यादि सब काम में लाए जा सकते हैं। खाद करीब दो सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए। अंतिम जुताई के बाद खेतों में तीन-तीन फुट की दूरी पर अठारह इंच गहरी और दो-दो फुट चौड़ी नालियां बनवाकर उनमें खाद भरवा देना चाहिए। फिर खाद पर मिट्टी डाल देनी चाहिए। इन्हीं नालियों में गराडू लगाए जाते हैं।

बोना—प्रति एकड़ दस मन से पंद्रह मन बीज लगता है। इसके लिए कंद के टुकड़े लगाए जाते हैं। व्यय कम करना हो तो कंद के ऊपरी भाग को काटकर भी लगा सकते हैं और बाकी के कंद बेच सकते हैं। कहीं-कहीं रोपने के पहले कंद को घास में दबाकर भी अंकुर फिकवाए जाते हैं। ऐसा करने से पौधे जल्दी बढ़ते हैं। रोपने का समय चैत्र-वैशाख से आषाढ़ (मार्च से जून-जुलाई) तक है। पौधे से पौधा तीन फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। लगाने के बाद कुछ दिनों के लिए घास या पत्तों से ढककर रखना चाहिए ताकि यदि पहले से अंकुरित न हो तो शीघ्र अंकुर फेंक दें।

निंदाई और सिंचाई—घास-पात निकालते समय शाखाओं को मचान पर चढ़ाने का या कम-से-कम उठाकर देख लेने का प्रबंध करना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय तो बीच-बीच में भी वे जड़ें फेंक देती हैं और उस स्थान पर छोटे-छोटे कंद बैठ जाते हैं। चीन वाले शाखाओं को मिट्टी पर ही फैलने देते हैं और उनपर जगह-जगह मिट्टी चढ़ा देते हैं। ऐसा करने से गराडू बहुत बैठते हैं, परंतु छोटे होते हैं। गर्मी के दिनों में सिंचाई की आवश्यकता होती है, उस समय पानी देना चाहिए।

फसल की तैयारी—पत्तों के पीले पड़ने और सूखने से फसल की तैयारी का अनुमान किया जाता है। माघ-फाल्गुन तक फसल खोदी जाती है। उसी समय यह देखना चाहिए कि कंद कटने न पाये। यदि कट जाय तो उस भाग पर चूना या राख छिड़क देनी चाहिए। ऐसा करने से

कटा हुआ भाग जल्दी सूख जाता है और उस जगह से कंद बिगड़ने नहीं पाते। कुछ दिनों तक रखना हो तो स्वस्थ कंद ठंडे हवादार वातावरण में रक्खे जा सकते हैं। पैदावार लगभग दो सौ मन तक हो जाती है।

उपयोग और गुण—कंद को छीलकर उसकी तरकारी बनाई जाती है। इसकी तरकारी अग्निदीपक और रूखी होती है। बवासीर और कफवालों के लिए लाभप्रद होती है।

सुथनी Kidney-shaped yams *Dioscorea fasciculata*

इसके कंद पौधों के धड़ के निकट पहाड़ी आलू की भांति बैठते हैं। पौधा आठ-नौ इंच ऊंचा होता है और आलू की भांति जमीन पर गिरा रहता है। आकार में सुथनी अंडे-जैसी होती ही है। अनजान व्यक्ति को सुथनी छोटे आलू ही जान पड़ते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए और खाद डेढ़ सौ मन के करीब देना चाहिए।

बोना—वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) में यह खेतों में लगाई जाती है। प्रति एकड़ बारह मन कंद की आवश्यकता होती है। पौधे-से-पौधे का अंतर एक फुट का हो इतनी दूरी पर कंद लगाना चाहिए। इस सीधी खेत में ही लगा देते हैं। क्यारियां इत्यादि बनाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह बहुधा बिना सिंचाई के ही पैदा की जाती है। जहां सिंचाई करनी पड़े, वहां क्यारियों में लगा सकते हैं।

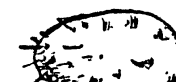

सुथनी

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और जहां आवश्यकता हो वहां सिंचाई होनी चाहिए। पौधों पर मिट्टी चढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती परंतु यदि कुछ चढ़ाई जा सके तो अच्छा ही है।

फसल की तैयारी—मार्गशीर्ष से माघ तक फसल खोदकर काम में

लाई जाती है। पैदावार डेढ़ सौ से दो सौ मन तक हो जाती है। दूसरी फसल बोने के लिए चुनी हुई सुथनी को मचानों पर हवादार मकानों में रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—कंद उबालकर शकरकंद की भांति खाए जाते हैं। शकरकंद से यह कम मीठी होती है। इसकी तरकारी भी बनाई जा सकती है। बहुत-से स्थानों में गरीब लोग एक समय इसीका भोजन करते हैं। यह रूखी, भारी, कुछ देर से पचनेवाली, परंतु बलदायक होती है।

सूरन, ओल Elephant's Foot

Amorphophallus companulatus

इसकी खेती गुजरात में विशेष होती है। अच्छा सूरन लगातार चार साल के परिश्रम से तैयार होता है। एक-एक गांठ दस-दस सेर के अंदाज की हो जाती है। पौधा धड़-रहित और पत्ते बड़े-बड़े कटे हुए होते हैं। पत्तों की डंडियां बड़ी लंबी होती हैं जिससे पौधों की ऊंचाई तीन-चार फुट की दिखलाई देती है। गांठ का व्यास करीब एक फुट का होता है। और आकार हाथी के पांव जितना। संभव है इसका नाम इसीसे Elephant's foot रक्खा गया हो।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद ढाई सौ मन के करीब देना ठीक होता है। इसके लिए हरा खाद भी दिया जा सकता है। सूरन के लगाने के साथ-साथ सन के बीज छींट दिये जाते हैं और जब सन के पौधे ढाई फुट ऊंचे हो जाते हैं तो उखाड़कर गाड़ देते हैं। प्रथम वर्ष की अपेक्षा दूसरे, तीसरे और चौथे साल की फसल को खाद कुछ अधिक देना चाहिए।

बोना—अच्छे बड़े सूरन के चारों ओर छोटी-छोटी पांच-सात गांठें निकल आती हैं वे ही लगाई जाती हैं। उनका वजन लगभग एक छटांक होता है। पहले साल ज्येष्ठ (मई) में ये गांठें बारह फुट लंबी और छः

फुट चौड़ी क्यारियों में लगाई जाती है। गांठ-से-गांठ का अंतर एक फुट रखा जाता है। लगाने के पश्चात पानी देकर उन्हें पत्तों से ढंक देते हैं। वर्षा के प्रारंभ तक तीन-चार बार पानी देना पड़ता है और उसके बाद भी आवश्यकतानुसार दिया जाता है। यह फसल पौष (दिसंबर) तक तैयार होती है। जब पत्ते सूख जाते हैं तो गांठें खोदकर हवादार मकान में रख ली जाती हैं। इन गांठों का वजन दो-तीन छटांक तक ही जाता है। दूसरे साल ज्येष्ठ मास में फिर ये गांठें लगाई जाती हैं। इस समय गांठों के लगाने का अंतर कुछ बढ़ाकर पंद्रह से अठारह इंच का कर दिया जाता है। ये गांठें आगामी पौष तक वजन में आठ-दस छटांक तक हो जाती हैं। इन्हें फिर तीसरे ज्येष्ठ में दो-दो फुट की दूरी पर लगा देते हैं। माघ तक वे ढाई-ढाई सेर के अंदाज की हो जाती हैं। इनमें से बड़ी बिकने-जैसी बेच दी जाती हैं और दूसरी फिर चौथे ज्येष्ठ में लगा दी जाती हैं जिन्हें माघ में खोदकर बेचते हैं। इस समय ये गांठें साढ़े तीन फुट से चार फुट की दूरी पर लगाई जाती हैं। जब ये गांठें खोदी जाती हैं, उस समय तक एक-एक गांठ का वजन आठ-दस सेर के लगभग हो जाता है।

निंदाई और सिंचाई—आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए।

फसल की तैयारी—अच्छी फसल चौथे साल में तैयारी होती है; परंतु तीसरे साल में भी इसको तरकारी के काम में लाते हैं। एक एकड़ से करीब पांचसौ मन सूरन तैयार किरा जा सकता है।

उपयोग और गुण—कंद की तरकारी बनाई जाती है। आलू की भांति उबालकर भी मसाले के साथ इसे खाते हैं। यह रुचिकर, कफ-नाशक और अग्निवर्धक होती है। इससे अर्श रोगवालों को भी लाभ पहुंचता है। इसका अचार भी बनाया जाता है।

अरारूट Arrow-root *Maranta arundinacea*

इससे पौधे का धड़ बहुत छोटा होता है और पत्ते बड़े-बड़े होते हैं।

प्राचीन काल में तीर से लगे हुए घावों पर इसका उपयोग किया जाता था। इसीसे, संभव है, इसका अंग्रेजी नाम 'एरो-रूट' पड़ा हो।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद ढाईसौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना ठीक होता है।

बोना—आषाढ़ (जून) में इसकी गांठें लगाई जाती हैं। एक एकड़ के लिए करीब बीस मन गांठों की आवश्यकता होती है। पौधे-से-पौधा एक फुट से डेढ़ फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। गांठें लगाते समय इन्हें चार इंच गहरा गाड़ना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों पर कुछ मिट्टी चढ़ानी चाहिए और सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए। फूल ज्योंही आते जायं, तोड़ते रहना चाहिए, जिसमें पौधों की शक्ति कंद की बनावट में लगी रहे।

फसल की तैयारी—बोने के समय से आठ-दस महीने में फसल तैयार होती है। पत्तों का मुरझाना फसल की तैयारी दर्शा देता है। पैदावार दोसौ मन तक हो जाती है, जिसमें से पंद्रह-बीस शतांश तक अरारूट-चूर्ण प्राप्त किया जा सकता है।

उपयोग और गुण—गांठों की तरकारी बनाई जा सकती है। इससे चूर्ण भी प्राप्त किया जाता है जिससे बिस्कुट आदि बनाते हैं। अशक्त, व्याधि से उठे हुए मनुष्यों के लिए इसका सेवन अच्छा होता है। यह हल्का और जल्दी पचनेवाला होता है।

कचचू Jerusalem Artichoke *Helianthus tuberosus*

इसके कंद देखने में अदरक-जैसे होते हैं और पौधे पांच-छः फुट ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट और मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए और खाद

दोसौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए। गोबर के खाद की कमी कृत्रिम खाद से पूरी की जा सकती है। राख से भी इसको लाभ पहुंचता है।

बोना—इसके बोने का समय फाल्गुन से आषाढ़ (मार्च से जून) तक है। यदि सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध हो तो जल्दी ही लगा देना चाहिए और नहीं तो आषाढ़ में लगाना ठीक होता है। छोटे कच्चू समूचे और बड़ों के टुकड़े लगाना चाहिए। प्रत्येक टुकड़े में कम-से-कम तीन आंख होनी चाहिएं। पंक्तियों में ढाई से तीन और कच्चू-से-कच्चू में एक-एक फुट का अंतर रखना ठीक होता है। इन्हें तीन-चार इंच गहरे लगाना चाहिए। एक एकड़ के लिए पांच-छः मन कच्चू की आवश्यकता होती है।

कच्चू

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय जब पौधे एक फुट की ऊंचाई के हो जायं तो उनपर मिट्टी चढ़ानी चाहिए। जब ये चार-पाँच फुट ऊंचे हो जाते हैं तो उनमें फूल की डंडियां निकल आती हैं जिन्हें तोड़ डालना चाहिए ताकि पौधों की शक्ति उनके बनने में नष्ट न हो और वह कंद की बनावट में लगी रहे। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—इसकी फसल छः-सात महीने में तैयार होती है जिसे आवश्यकतानुसार खोदकर काम में लाना चाहिए। कुछ दिनों के लिए रखना हो तो बालू के अंदर ठंडे हवादार मकान में रख सकते हैं। बीज-वाले कंद भी इसी रीति से रखना चाहिए। इसकी पैदावार करीब सौ मन तक हो जाती है।

उपयोग और गुण—आलू की भांति उबालकर और छील करके तर-क़ारी बनाई जाती है। यह आलू की अपेक्षा अधिक पौष्टिक और जल्दी पचनेवाली होती है।

निर्बल, व्याधि से उठे मनुष्यों के लिए यह अच्छी होती है। कच्च को आग में भूंजकर भी खाते हैं।

हल्दी Turmeric *Curcuma longa*

इसकी तरकारी तो नहीं बनती, परंतु इसकी गांठों के चूर्ण से वे स्वादिष्ट और रंगीन हो जाती हैं। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसा होगा जो बिना हल्दी की दाल या तरकारी खाता हो। प्रत्येक घर में इसकी आवश्यकता होती है। इसका पौधा करीब दो फुट ऊंचा होता है। पत्ते केना के पत्ते-जैसे होते हैं।

हल्दी

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ दुमट और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद दोसौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना ठीक होता है। अंतिम जुताई के बाद पारियां और नालियां बना लेनी चाहिए। पारियों में डेढ़ से दो फुट का अंतर रखना ठीक होता है। इसे कहीं-कहीं क्यारियों में भी लगाते हैं। जहां सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती इसे ऐसे ही खेतों में लगा देना चाहिए। क्यारियां या पारियां बनाने की कोई आवश्यकता नहीं।

बोना—वर्षा के आरंभ में आषाढ़ (जून) महीने में इसकी गांठे लगाई जाती हैं। उपर्युक्त रीति से यदि पारियां बनाई हों तो गांठ एक-एक फुट के अंतर पर लगाना चाहिए। यदि क्यारियों में बोना हो तो पंक्तियां डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए। गांठें लगभग तीन इंच गहरी गाड़नी चाहिए। एक एकड़ के लिए दस-बारह मन गांठें लगाई जाती हैं। जहां सिंचाई से नहीं उपजाई जाती, वहां बीज अधिक लगेगा—लगभग पंद्रह मन लगेगा, क्योंकि जो भूमि पारियां और नालियां बनाने में लग जाती है वह बच जाती है और उसमें भी हल्दी लगाना होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों पर थोड़ी मिट्टी चढ़ाना चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—माघ-फाल्गुन तक फसल तैयार हो जाती है। जब ऊपर के पत्ते सूखकर गिर जायं तब हल्दी को खोद लेना चाहिए।

पैदावार करीब बीस-पच्चीस मन सूखी हल्दी हो जाती है।

दूसरी फसल लगाने के लिए हल्दी की गांठों को रखना—इसके लिए जमीन में गड्ढा खोदकर ठंडे हवादार मकान में चुनी हुई हल्दी की गांठें गाड़ देनी चाहिएं। गढ़ा डेढ़-दो फुट गहरा और आवश्यकतानुसार लंबा-चौड़ा हो सकता है। ऊपर कम-से-कम छः इंच मिट्टी की तह होनी चाहिए। हल्दी और मिट्टी के बीच में एक पतली तह हल्दी के पत्तों की दे देनी चाहिए।

उपयोग और गुण—इसका चूर्ण तरकारियों और दाल इत्यादि भोज्य पदार्थों में रंग लाने और स्वादिष्ट करने के लिए काम में लाया जाता है। इससे कपड़े भी रंगे जाते हैं। यह कफ-नाशक, बादी हरनेवाला और खून को साफ करने वाला होता है। गर्म जल के साथ सेवन करने से पेट का दर्द शीघ्र मिट जाता है। तेल के साथ मिलाकर इससे उबटन का काम लेते हैं। कुछ चर्म-रोगों के लिए भी इसका प्रयोग अच्छा होता है। हड्डी को जोड़ने, घाव भरने और शरीर के रंग को साफ करने के गुण भी इसमें हैं। बिच्छू के काटे हुए भाग को इसका धुआं दिया जाय तो कुछ आराम पहुंचता है। हिस्टीरिया (एक प्रकार की मूर्छा) के दौरों में भी इससे लाभ होता है।

बाजार में जो हल्दी मिलती है वह सूखी होती है। इसे निम्नलिखित रीति से तैयार करते हैं—खेत से उठाई हुई हल्दी को पानी के साथ उबाल-कर पकाते हैं और जब पक जाती है तब किसी टाट या बोरे के टुकड़े से घिसकर छिलका निकाल देते हैं और फिर अच्छी तरह से सुखाकर बेच देते हैं। दूसरी रीति से तैयार करने के लिए हल्दी को मिट्टी के मटकों में भरकर उनका मुंह बंद कर देते हैं और फिर उन्हें गर्म करते हैं। हल्दी अपनी भाप से ही पक जाती है। ऐसी हल्दी को भी सुखाकर छिलकारहित कर लेते हैं।

मद्रास के कृषि-विभाग ने एक ऐसी मशीन निकाली है। जिससे हल्दी जल्दी साफ हो जाती है। इसमें जालीदार लोहे का एक ढोल होता है

जिसमें उबालकर सुखाई हुई हल्दी डाल दी जाती है। यह ढोल अपनी धुरी पर घुमाया जाता है। ऐसा करने से हल्दी का छिलका अलग होकर जाली में से नीचे गिर जाता है और साफ हल्दी ढोल में रह जाती है। एक घंटे में लगभग तीन मन हल्दी साफ कर दी जाती है।

अदरक Ginger *Zingiber officinalis*

अदरक का पौधा एक फुट से डेढ़ फुट तक ऊंचा तथा पतले पत्तेवाला होता है। इसकी गांठ जमीन में बैठती है।

अदरक

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना ठीक होता है। बढ़ते हुए पौधों को निंदाई के समय कुछ अरंडी की खली का खाद दिया जा सके तो वह भी लाभप्रद होता है। जहां-जहां पानी देना पड़े वहां क्यारियों में लगाना चाहिए।

बोना—इसके लिए अदरक के छोटे-छोटे टुकड़े लगाए जाते हैं। पंक्ति-से-पंक्ति एक फुट और टुकड़े-से-टुकड़ा आठ-नौ इंच की दूरी पर लगाना चाहिए। प्रत्येक टुकड़े में दो-तीन आंखें होनी चाहिए। एक एकड़ के लिए दस-बारह मन अदरक लगाया जाता है। लगाने के पश्चात् जब-तक अंकुरित न हो जाय, पत्तों से ढककर रखना चाहिए। इसके लगाने का समय वर्षा ऋतु का प्रारंभ आषाढ़ (जून) मास है। परंतु कुछ लोग कुछ समय पहले भी लगा देते हैं। ऐसी स्थिति में सिंचाई अवश्य करनी होती है।

भारी मिट्टी में इसे क्यारियों में न बोकर पारियों पर बोया जाय तो उपज अधिक होती है। क्यारियों में पानी देने से मिट्टी जम जाती है और अदरक की गांठें अच्छी बढ़ने नहीं पातीं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय कुछ मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—माघ-फाल्गुन तक तो फसल तैयार हो जाती है; परंतु थोड़े-बहुत उपयोग के लिए पहले भी खोद सकते हैं। इसकी पैदावार प्रति एकड़ यदि अच्छी जम जाय तो सौ-से-डेढ़सौ मन तक हो जाती है।

दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो अथवा वैसे ही कुछ दिनों के लिए अदरक को रखना हो तो हल्दी की भांति रख सकते हैं। इसके लिए कभी-कभी ढेरी को खोलकर देख लेना चाहिए। जब ढेरी गर्म मालूम हो तो अदरक को खोलकर दो-चार रोज के लिए हवा में फैलाकर फिर बंद कर देना चाहिए। हल्दी के लिए गड्डा डेढ़-दो फुट गहरा होता है, लेकिन इसके लिए सिर्फ एक फुट गहरा ही ठीक होता है।

उपयोग और गुण—तरकारियां और चटनियां इससे स्वादिष्ट की जाती हैं, नींबू के रस के साथ अचार भी बनाया जाता है। यह गर्म, बादी हरनेवाला और कफनाशक होता है। सर्दी, बुखार, खांसी इत्यादि रोगों में इसका सेवन अच्छा होता है।

सोंठ बनाना—सोंठ अदरक से ही बनाई जाती है। इसके बनाने की कई रीतियां हैं, जिनमें की एक सरल रीति निम्नलिखित है :

इसके लिए पूर्ण परिपक्व गांठें लेनी चाहिएं। ऐसी गांठों से लगभग बीस शतांश सोंठ प्राप्त की जा सकती है। पहले चुनी हुई गांठें साफ धोकर पानी में डाली जाती हैं और जब छिलका ठीक से गल जाता है तो मिट्टी के बर्तन के टुकड़ों से घिसकर निकाल दिया जाता है। फिर धो करके तीन-चार दिन तक हवा में सुखाते हैं। इसके बाद हाथ से घिसकर कुछ और छिलके निकाल दिये जाते हैं। फिर और दो-चार दिन सुखाकर दो-तीन घंटे के लिए पानी में डालते हैं और जब गल जाता है तो कुछ और छिलके निकालकर सुखाकर बेच देते हैं।

एस्पेरेगस Asparagus *Asparagus officinalis*

इसकी खेती इसके डंठल (नव पल्लव) के लिए की जाती है। इसके

पौधे छोटे-छोटे पत्तीवाले तीन-चार फुट ऊंचे होते हैं। इसके लगाने से दूसरे वर्ष बाद तरकारी के योग्य नये डंठल निकलते हैं। फूल छोटे-छोटे हरे रंग के होते हैं और फल जंगली बेर या बड़ी मटर के दाने के बराबर लाल रंग के होते हैं, जिनमें बहुत-से बीज होते हैं। अंग्रेज लोग इसके डंठलों की तरकारी बहुत पसंद करते हैं। भारतवर्ष में अभी इसका प्रचार विशेष नहीं हुआ है।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में हो जाता है परंतु बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। इसके लिए जुताई अच्छी गहरी होनी चाहिए। खाद भी इसे बहुत-सा देना पड़ता है। गोबर, पत्ते, कूड़ा-कर्कट इत्यादि मिलाकर के तीनसौ मन के लगभग देना चाहिए।

बोना—जब जुताई अच्छी हो जाय तो अश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में इसे बोना चाहिए। इसके बीज सीधे खेतों में बोये जा सकते हैं या नर्सरी में भी बो सकते हैं। बीज डालने के पश्चात उन्हें आध इंच से एक इंच मिट्टी के तह में ढक देना चाहिए। नर्सरी में बोये जायं तो आश्विन में बोकर कार्तिक या मार्गशीर्ष में जब पौधे तीन-चार इंच ऊंचे हो जायं तो खेतों में लगाना चाहिए। पौधे-से-पौधा एक फुट से डेढ़ फुट और पंक्ति-से-पंक्ति डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए। लगाते समय समतल भूमि में लगाते हैं, बाद में जो मिट्टी चढ़ाई जाती है उससे पारियां और नालियां बन जाती हैं जिनमें पानी दिया जाता है। प्रति एकड़ ढाई सेर से तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है। एक साल के पुराने पौधे भी खोदकर दूसरे स्थान में लगाये जा सकते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों पर मिट्टी चढ़ानी चाहिए। प्रति वर्ष पौष में ऊपरी सूखी हुई टहनियों को काटकर फेंक देना चाहिए। कुछ लोग जैसे ही फल पककर लाल हो जाते हैं, शाखाओं को काट डालते हैं और उचित भी यही है। इसके काटने के बाद कुछ दिनों तक जड़ों को थोड़ा खोलकर रखना चाहिए। फिर खूब सड़े हुए गोबर के खाद के साथ दो मन प्रति एकड़ के हिसाब से सुपरफासफेट या हड्डी

का चूर्ण देना चाहिए । (कुछ लोगों की राय में इसे नमक भी देना ठीक होता है जिसे पानी में घोलकर दे सकते हैं परन्तु नमक का न देना ही अच्छा है, क्योंकि इससे पहले दो-एक फसल अच्छी आ जाती हैं, बाद में भूमि बिगड़ जाती है) । बाद में मिट्टी चढ़ाकर पानी पूरा देना चाहिए जिससे चैत्र-वैशाख में नये डंठल निकल आवें ।

फसल की तैयारी—पहले दो साल तक इसके डंठल तरकारी के योग्य नहीं होते । तीसरे साल में थोड़े डंठल काम में लाये जा सकते हैं । चौथे साल से अच्छी फसल आने लगती है । एक बार लगा देने से दस-बारह साल तक इसकी फसल आती रहती है । जब अच्छे मोटे डंठल चार-पांच इंच लंबे निकल आवें तब उन्हें काटते रहना चाहिए । ये बहुत कोमल होते हैं । इसलिए हाथ मोड़कर झटके से तोड़े जा सकते हैं । भारी मिट्टी में उन्हें काटकर निकालना चाहिए । ये डंठल दो प्रकार के होते हैं । एक सफेद, दूसरे हरे । जिन डंठलों पर मिट्टी चढ़ी रहती है और जो घास-पात से ढककर रखें जाते हैं, वे सफेद हो जाते हैं और खुले रहनेवाले हरे हो जाते हैं । इसलिए जैसी मांग हो वैसे ही डंठल तैयार करना चाहिए । प्रत्येक वर्ष में आठ-दस सप्ताह तक इसकी तरकारी मिल सकती है । बाजार में भेजने के पहले धोकर इनकी छंटनी कर लेनी चाहिए । जो डंठल सीधे, अच्छे मोटे, और व्याधि-रहित हों, उन्हें उत्तम श्रेणी में और जो दबे हुए हों उन्हें मध्यम और टेढ़-मेढ़े को तीसरी श्रेणी में रखना चाहिए । डंठल आधे इंच से एक इंच मोटे हो सकते हैं । उपज प्रति एकड़ पचास मन तक हो जाती है । बीज के लिए अच्छे फलों को चुनकर सुखाकर रख लेना चाहिए ।

उपयोग और गुण—इसके डंठलों की तरकारी रुचिकारक, स्वादिष्ट और बलदायक होती है ।

गांठ गोभी Knol Khol *Brassica Cauloropa (oleracea) var*

गांठ गोभी

इसका पौधा लगभग एक फुट ऊंचा होता है। धड़ फूलकर मोटा हो जाता है। उसीकी तरकारी बनाई जाती है। मिट्टी के ऊपर यह शलजम के आकार की होती है। इसके फूले हुए धड़पर थोड़े-से पत्ते होते हैं। यह गोभी हरे और बैंगनी, दो रंग की होती है। बैंगनी की अपेक्षा हरी अच्छी होती है। एक-एक गोभी पाव-भर से आधे सेर के अंदाज की होती है।

जमीन, जुताई और खाद—यह दुमट और मटियार-दुमट में अच्छी होती है। भूमि की जुताई के समय करीब दो सौ मन सड़ा हुआ खाद प्रति एकड़के हिसाब से डालना चाहिए। यह क्यारियों में लगाई जाती है। इसलिए अंतिम जुताईके बाद क्यारियां बना लेनी चाहिए।

बोना—इसके बीज भाद्रपद से कार्तिक (अगस्त से अक्तूबर) तक नर्सरी में बोये जाते हैं और पौधे अश्विन-कार्तिक (अक्तूबर-नवंबर) में लगाये जाते हैं। बहुत दिनों तक कोमल गोभियां प्राप्त होती रहें, इसलिए नर्सरी में बीज एक सप्ताह से डेढ़ सप्ताह के अंतर पर डालना चाहिए। उसी क्रमानुसार खेतों में भी लगाना चाहिए। नर्सरी में बीज चार-पांच इंच की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए। जब पौधे दो इंच ऊंचे हो जायं तो उन्हें खेतोंमें लगा सकते हैं। खेतों में पंक्तियां एक फुट से पंद्रह इंच की दूरी पर रखनी चाहिए। प्रत्येक पंक्ति में पौधे-से-पौधा सात-आठ इंच की दूरी पर होना चाहिए।

इसके बीज सीधे खेतों में भी बोये जा सकते हैं। दो सेर से ढाई सेर बीज प्रति एकड़ बोना पड़ता है। यदि नर्सरी म बोया जाय तो एक सेर बीज काफी होते हैं। पहाड़ों पर इसे गर्मी में बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—खेत में बोई गई फसल के पौधों की छंटनी निंदाई के समय करनी चाहिए। जब पौधों में तीन-चार पत्ते आ जायं तब छांट देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—माघ-फाल्गुन में फसल तैयार हो जाती है। जब गोभियां छोटे-छोटे बेल या शलजम के आकार की हों उस समय तरकारी के योग्य होती हैं। बड़ी हो जाने पर उनकी कोमलता नष्ट हो जाती है और स्वाद भी बिगड़ जाता है। पैदावार सौ-सवासौ मन प्रति एकड़ तक हो जाती है।

बीज लेना—इसके बीज सब जगह पैदा नहीं किये जा सकते। पहाड़ों पर या ठंडे स्थानों में हो सकते हैं। इसलिए बाहर से मंगवाकर ही बोना चाहिए।

उपयोग और गुण—इसके धड़ की तरकारी बनाई जाती है। पत्ते पशुओं को खिलाये जाते हैं। इसकी तरकारी दस्तावर होती है।

: १३ :

वे साग-भाजी जिनके पत्ते और डंडियां काम में आती हैं

प्याज Onions *Allium cepa*

इनकी जन्मभूमि उत्तर भारत, अफगानिस्तान और रूस मानी जाती हैं। मिस्र में इसकी पूजा होती थी और धार्मिक कृत्यों में काम में लाया जाता था।[1]

प्याज

प्याज दो जाति के होते हैं। एक लाल और दूसरे सफेद छिलकेवाले। बंगाल में एक जाति का प्याज और होता है जो बहुत छोटा लेकिन तेज होता है। प्याज की एक जाति ऐसी होती है जिसमें छोटे-छोटे प्याज उसकी डंडी पर लगते हैं और जो एक बार लगाने से कई साल तक लगा

[1] Vegetable Growing by J. S. Shoemaker, 1947, P..178.

रहता है। डंडी पर लगने के अलावा जमीन में भी प्याज बैठते हैं। इसे 'मिल्ली प्याज' कहते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह हर प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। इसकी जड़ें गहरी नहीं जातीं इसलिए जुताई गहरी नहीं करनी पड़ती। चार-पांच इंच गहरी जुताई काफी होती है। गोबर का खाद इससे पहले-वाली फसल को ही देना ठीक होता है। लेखक के प्रयोगों में प्याज के लिए सरसों की खली का खाद भी विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ है। लगभग दस मन खली प्रति एकड़ डालनी चाहिए। इसके लिए राख का खाद भी अच्छा होता है। दस-बारह मन राख प्रति एकड़ के हिसाब से डालनी चाहिए। प्याज क्यारियों में लगाये जाते हैं, इसलिए अन्तिम जुताई के बाद क्यारियां बना लेनी चाहिए।

बोना—प्याज के बीज सीधे खेतों में भी बोये जा सकते हैं परंतु पानी कम देना पड़े इस अभिप्राय से पहले नर्सरी में बोना ही उत्तम है। इसमें नर्सरी की भूमि ऊंची नहीं की जाती। बीज क्यारियों में ही बोये जाते हैं। एक एकड़ के लिए ढ़ाई सेर से तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है। इसके लगाने का समय पृथक्-पृथक् स्थानों में पृथक्-पृथक् हैं। पहाड़ों पर फाल्गुन से ज्येष्ठ (फरवरी से मई) तक, बंगाल में भाद्रपद से मार्गशीर्ष (अगस्त से नवम्बर) तक, बिहार में अगहन-पौष (नवम्बर-दिसम्बर) से माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) तक और बम्बई, मद्रास आदि में कार्तिक से पौष (अक्तूबर से दिसम्बर) तक है।

बीज नर्सरी में गिराने से पहले उनकी भूमि सींचकर मिट्टी में यथेष्ठ तरी लाई जाती है। दो-तीन दिन बाद उस मिट्टी को गोड़कर उसमें बीज छींट दिये जाते हैं। फिर उन्हें मिट्टी में मिलाकर केला या और किसी पेड़ के पत्तों से ढकना ठीक होता है। ऐसा करने से गर्मी की वजह से बीज जल्दी अंकुर फेंक देते हैं। जब बीज अंकुरित हो जायं तो पत्तों को हटा लेना चाहिए। फिर पानी देते रहने से छः-सात सप्ताह में पौधे रोपने योग्य हो जाते हैं। रोपते समय यदि पौधों के पत्ते विशेष लंबे हों तो उन्हें कुछ

काट देन चाहिए। ऐसा करने से एक तो रोपने में आसानी रहती है और दूसरे रोपते समय जब ऐसे पत्ते झुककर जमीन पर गिर जाते हैं तो उनमें व्याधि लग जाती है, उससे बच जाते हैं।

रोपते समय छोटी जातिवाले प्याज़ के पौधों को चार-पांच इंच की दूरी पर और बड़ी जातिवालों को छः-छः इंच की दूरी पर लगाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधों की जड़ें सीधी रहें और मुड़ने न पावें, उन्हें इतने ही गहरे रोपना चाहिए कि प्याज़ बननेवाला आधा भाग मिट्टी में और आधा बाहर रहे।

गुजरात में सूरत की तरफ छोटे-छोटे प्याज़ भी लगाये जाते हैं जो सिंचाई से बड़े हो जाते हैं। ऐसे प्याज़ बीज से लगाये गए प्याज़ की अपेक्षा कम स्वादिष्ट होते हैं।

निंवाई और सिंचाई—रोपने के बाद पौधों को कुछ दिनों तक ध्यान-पूर्वक देखते रहना चाहिए। जिन्हें कीट काट दें उनके स्थान पर नये पौधे लगा देना चाहिए। प्रत्येक सिंचाई के कुछ दिन बाद जमीन की पपड़ी तोड़ दी जाय तो पानी का बचाव और प्याज़ की बाढ़ अच्छी होती हैं। जाड़े के दिनों में आठ-दस दिन और गर्मी के दिनों में छः-सात दिन के अन्तर पर पानी देना चाहिए। प्याज़ में फूल आने लगें तो उन्हें तोड़ डालना चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से अर्थात् नर्सरी के बीज डालने के समय से, छः-सात महने में फसल तैयार हो जाती है। जब पत्ते सूखकर जमीन पर झुक जायं तो समझना चाहिए कि प्याज़ उठाने योग्य हो गए। जब अधिकांश पौधों के पत्ते झुक जायं तो जिनके न झुके हुए हों उनके भी झुका देना चाहिए, ताकि सब फसल एक साथ तैयार हो जाय। ऐसा करने से दस-बारह दिन में सब फसल एक साथ तैयार हो जायगी और प्याज़ कुछ मोटे भी हो जायंगे। नित्य के उपयोग के लिए पहले भी उखाड़ सकते हैं। उखाड़ने के पश्चात सुखाकर हवादार मकान में फैलाकर रखना चाहिए। एक पर्त छः-सात इंच से अधिक मोटी नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक

दो पर्त के बीच में कम-से-कम दो इंच जगह हवा के लिए रखनी चाहिए। प्याज़ जब बाहर भेजना हो तो टोकरियों में भरकर भेजना ठीक होता है। इसकी पैदावार दोसौ से ढाईसौ मन तक हो जाती है।

बीज के लिए प्याज़ लगाने की रीति—जब प्याज़ की फसल उठाई जाय उसी समय अच्छे-अच्छे प्याज़ चुनकर रख लेने चाहिए। जिन प्याज़ के पत्ते प्याज़ के ऊपर से पूरे सूखने के पहले झुक जाते हैं; ऐसे प्याज़ गोदाम में अधिक टिकते हैं। जिनके पत्ते ऊपर से सूखना शुरू होते हैं वे गोदाम में जल्दी बिगड़ जाते हैं। प्याज़ गोदाम में अंकुर फेंक देते हैं। इन अंकुरित प्याज़ को कार्तिक या मार्गशीर्ष में एक-एक फुट के अन्तर पर क्यारियों में लगा देना चाहिए। छोटी जाती के प्याज़ के लिए यह अन्तर छः इंच का काफी होगा। कुछ लोग प्याज़ के ऊपरी आधे भाग को काटकर फेंक देते हैं और नीचे के आधे भाग को लगाते हैं। लगाने के पश्चात् बराबर आवश्यकतानुसार पानी देते रहने से इनके बीज चैत्र-वैशाख तक तैयार हो जाते हैं। बीज सुखाकर ऐसे बर्तन में रखना चाहिए जिसमें हवा न लग सके, क्योंकि हवा की तरी से ये बहुत जल्दी बिगड़ जाते हैं।

उपयोग और गुण—प्याज़ से तरकारियां स्वादिष्ट की जाती हैं। गरीब लोग इसे कच्चा भी खाते हैं। यह पाचक, बलवर्द्धक, उत्तेजक, कफ और ज्वरनाशक, सर्दी और खांसी को कम करनेवाला तथा अधिक पेशाब लानेवाला होता है। सिरके के साथ खाने से कंवल रोग, बढ़ी हुई तिल्ली और बादी में लाभदायक होता है। स्कर्वी भी इसके सेवन से छूट जाती है। चीनी के साथ इसका रस खाया जाय तो खूनी बवासीर अच्छा होता है। कान के दर्द को रोकने के लिए भी इसका रस अच्छा माना गया है। हैजे के दिनों में इसका उपयोग अच्छा होता है।

लहसुन Garlic *Allium sativum*

इसका पौधा प्याज़ के पौधे से कुछ छोटा होता है और लहसुन की गांठ भी छोटी होती है। प्याज़ में जैसे छिलके की पत्तियां होती हैं वैसी

इसमें नहीं होतीं। इसमें पत्र रूपांतरित कलियां होती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में हो जाता है। इसे अकेला बहुत कम बोते हैं। दूसरी फसल के साथ पारियों पर इधर-उधर लगा देने से यह हो जाता है। यदि इसे ही लगना हो, तो प्याज के लिए जिस रीति से जमीन तैयार की जाती है, उसी भांति इसके लिए भी करनी चाहिए। खाद इससे पहली फसल को ही देना ठीक होता है।

लहसुन

बोना—इसके बोने का समय भाद्रपद-आश्विन (अगस्त-सितम्बर) है। पहाड़ों पर गर्मी में ही लगाना चाहिए। प्याज की भांति इसके बीज नहीं बोये जाते और न नर्सरी की आवश्यकता होती है। यह सीधा खेतों में ही लगाया जाता है। लहसुन की कलियों को पृथक्-पृथक् करके रोप देते हैं।

रोपते समय इतना ध्यान रहे कि जो कठोर भरी हुई कलियां हों वे ही लगाई जायं। मेथी, अफीम, धनिया इत्यादि की क्यारियों की पारियों पर छः-छः इंच की दूरी पर इसकी कलियां लगा दी जाती हैं। सिर्फ इसे ही लगाना हो तो छः-छः इंच की दूरी पर लगा देना चाहिए। जहां पानी देने की आवश्यकता होती है वहां क्यारियों में लगाते हैं। एक एकड़ के लिए आठ-दस मन कलियों की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—फाल्गुन-चैत्र तक फसल तैयार हो जाती है। जब पत्ते सूखने लगें तब इसे खोद लेते हैं। इसकी पैदावार पचास से पचहत्तर मन प्रति एकड़ हो जाती है।

लहसुन को रखने की रीति—जो लहसुन बाजार में भेजा जाता है उसे कुछ सुखाकर ऊपर के पत्ते काट डालते हैं और फिर बोरों में भरकर भेज देते हैं। बीज के लिए जो रखा जाय, उसे पत्तेसहित रखना चाहिए। बहुत से लहसुन एकसाथ लेकर उनके पत्ते गूंथ दिये जाते हैं और फिर वे हवादार

मकान में लटका दिये जाते हैं। इसी प्रकार से रक्खा हुआ लहसुन बहुत दिन भली-भांति रह जाता है।

उपयोग और गुण—तरकारियों और चटनियों को स्वादिष्ट करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। कई प्रकार की व्याधियों में यह औषधि का काम देता है। इसका तेल लकवा और बादी में काम आता है। बुखार, खांसी, सर्दी, पेट का दर्द इत्यादि रोगों पर भी लहसुन का उपयोग किया जाता है। सिरके के साथ खाने से गला साफ होता है। सरसों और नारियल के तेल के साथ लगाने से चर्म रोग और कर्ण रोग मिट जाते हैं। करीब-करीब प्याज़ के सब गुण इसमें पाय जाते है।

लीक Leek *Allium Porrum*

इसके पौधे करीब दो फुट ऊंचे होते हैं।

ज़मीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है। प्याज़ के लिए जिस प्रकार खेत तैयार किये जाते हैं, उसी भांति इसके लिए भी करना चाहिए। इसपर मिट्टी भी चढ़ाई जाती है, इसलिए प्याज़ की अपेक्षा कुछ अधिक दूरी पर लगाई जाती है।

बोना—इसके बीज पहले नर्सरी में बोये जाते हैं और जब पौधे चार-पांच इंच ऊंचे हो जाते हैं तो क्यारियों में लगा देते है। बोने का समय आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) है। पहाड़ों पर गर्मी में बोते हैं। करीब दो सेर बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। पौधे-से-पौधा छः इंच और पंक्तियां पन्द्रह से अठारह इंच की दूरी पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के साथ-साथ जब पौधे डेढ़ दो महीने के हो जायं तब उनपर मिट्टी चढ़ानी चाहिए। मिट्टी चढ़ाने से पत्ते सफेद बने रहते हैं। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—चैत्र-वैशाख (मार्च-अप्रैल) तक फसल तैयार हो जाती है।

उपयोग—प्याज़ का जैसा उपयोग किया जाता है, वैसा-ही तरकारियों

को स्वादिष्ट करने के लिए इसका उपयोग करते हैं।

शेलॉट Shallot *Allium asclonicum*

लहसुन की भांति इसमें भी कलियां होती हैं और इसकी खेती भी वैसे ही की जाती है। अफगानिस्तान में यह बहुतायत से पाया जाता है। वहाँ के लोग इसके पत्ते का भी उपयोग करते हैं। एक ही बार लगाई हुई फसल उसी स्थान में पच्चीस-तीस साल तक रहती है और प्रतिवर्ष उससे तीन बार पत्ते काटे जाते हैं।

शाइव Chive *Allium schoenoprasum*

यह विलायत में और विशेषत: स्काटलैंड में बहुतायत से होती है। प्याज से यह कुछ कम तेज होती है।

प्याज की भांति जमीन तैयार करके इसकी खूंटी (पुराने पौधों को जड़सहित चीरकर लगाना) लगाई जाती है। यह एक ही स्थान में चार-पांच साल तक रखी जाती है। पत्ते जसे-जैसे तैयार होते हैं काटकर काम में लाये जाते है।

सीवाल Welch Onion *Allium fistulosum*

यह भी एक जाति का प्याज होता है जिसे बीज से या शाइव की भांति खूंटी से पैदा करते हैं। एक बार लगाकर दो साल तक फसल लेते रहते हैं। इसके पत्ते जैसे-जैसे तैयार होते हैं, काम में लाये जाते हैं।

सलाद की फसलें

पार्सली, सेलेरी, लेट्यूस, शिकोरी, शेरविल, क्रैस, कार्न सलाद, एंडाइव इत्यादि फसलें सलाद की फसलें कही जाती हैं। सलाद एक प्रकार का अचार समझना चाहिए। कच्चे पत्तों को काटकर सिरका, नमक और कुछ मसालों के साथ वैसे ही उपयोग किया जाता है।

पार्सली Parsely *Petroselinum hortense*

जमीन, बुवाई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में हो जाती

है। जुताई पाँच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद सौ-सवासौ मन डाल सकते हैं।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में क्यारियों में इसके बीज बोये जाते हैं। पंक्ति-से-पंक्ति एक फुट की दूरी पर होनी चाहिए। बीज नर्सरी में भी बोये जा सकते हैं और जब पौधे रोपने योग्य हो जायं तो खेतों में लगा सकते हैं। प्रति एकड़ डेढ़-दो-सेर बीज की आवश्यकता होती हैं।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। निंदाई के समय पौधे की छंटनी करके उन्हें चार-चार इंच की दूरी पर कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी—करीब चार महीने में पौधे उपयोग के योग्य हो जाते हैं। आवश्यकतानुसार पत्ते काटते जाना चाहिए।

उपयोग—पत्तों से सलाद बनाई जाती है। इसकी तरकारी भी बन सकती है। दूसरी तरकारियों को स्वादिष्ट करने के लिए भी इनका उपयोग किया जाता है।

सेलेरी Celery *Apium graveolens*

यह दो प्रकार की होती है, एक डंडीवाली और दूसरी सफेद डंडी-वाली।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई साधारण गहरी परंतु अच्छी महीन होनी चाहिए। खाद सौ-सवा-सौ मन डालना ठीक होता है।

बोना—एक एकड़ के लिए तीन छटांक बीज की आवश्यकता होती है। बीज, जो बहुत छोटे होते हैं, पहले नर्सरी में आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में बोकर जब पौधे तीन-चार इंच ऊंचे हो जायं तो खेतों में आठ-नौ इंच की दूरी पर लगा देना चाहिए। पंक्तियों में दो-ढाई फुट का अंतर ठीक होता है। नर्सरी में बोने के पहले यदि बीज भिगोकर

गीले कपड़े में गर्म स्थान में रखे जायं तो वे जल्दी अंकुर फेंक देते हैं। भीगे हुए बीज एक-दूसरे से चिपके हुए न रहें, इसलिए उसमें राख मिला देनी चाहिए कि जिससे पानी सूख जाय और बीज बिखर जायं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों पर की आस-पास की शाखाओं को तोड़ते रहना चाहिए। जब पौधे बढ़कर एक फुट ऊंचे हो जायं तो नीचे के कुछ पुराने पत्ते तोड़ देना चाहिए और बाकी के पत्तों को इकट्ठे खड़े करके हर आठ-दस दिन पर मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिए। पत्तों पर मिट्टी चढ़ाने का अभिप्राय यह होता है कि वे सफेद और मुलायम बने रहें। जहां गर्मी विशेष पड़ती है वहां पत्तों के सड़ जाने का भय रहता है। ऐसी जगह में लकड़ी के तख्ते या कागज के कूट पौधों के दोनों ओर बांध दिये जाते हैं।

फसल की तैयारी—ज्यों-ज्यों डंडियां काम के योग्य होती जायं, तोड़कर काम में ले आनी चाहिए।

उपयोग और गुण—इसके पत्ते की डंडी विशेषतः सलाद बनाने के काम में लाई जाती है। इसकी तरकारी भी बन सकती है। यह पाचक, दस्तावर और बलवर्धक होती है। गठिया की शिकायतवालों को इसका सेवन करना चाहिए।

लेट्यूस Lettuce *Lactuca sativa*

सलाद बनाने के लिए इसके पत्तों की बहुत चाह रहती है। यह कई जाति की होती है। कुछ खुली हुई बंदगोभी के समान इसके पत्ते जमे हुए होते हैं। किसी-किसी जाति में सब पत्ते खुले हुए होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। जुताई साधारण होनी चाहिए। खाद सवासौ से डेढ़सौ मन तक इसके लिए डालना चाहिए।

बोना—डेढ़ सेर से दो सेर बीज प्रति एकड़ बोये जाते हैं। नर्सरी में बोकर भी पौधों को खेत में लगा सकते हैं। बोने का समय आश्विन

से मार्गशीर्ष (सितंबर से दिसंबर) तक है। पहाड़ों पर फाल्गुन से ज्येष्ठ (मार्च से मई) तक बोना चाहिए। पूना, बंगलौर आदि स्थानों में गर्मी की ऋतु को छोड़कर कभी भी बो सकते हैं। जल्दी तैयार हो जानेवाली फसल को क्यारियों में चार-पांच इंच की दूरी पर बोना चाहिए। देर से होनेवाली के लिए नौ इंच से १ फुट का अंतर ठीक होता है। बोने के बाद बीज पर आधा इंच ही मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय ज्यों-ज्यों पत्ते बढ़ते जायं उनको एक साथ बांधते रहना चाहिए जिससे वे कोमल रहें। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—ज्यों-ज्यों पौधे तैयार होते जायं, बड़ों को उखाड़कर छोटों को बढ़ने के लिए छोड़ देना चाहिए। घर-खर्च के लिए जैसे-जैसे पौधे बढ़ते जायं काम में लाये जा सकते हैं। जो फसल बेची जाय, उसे पूरी तरह तैयार होने देना चाहिए। काटते समय नीचे के दो-एक पत्ते छोड़कर काटना चाहिए।

उपयोग और गुण—इसके पत्ते सलाद बनाने के काम में लाये जाते हैं। इनकी तरकारी भी बनाई जाती है। यह ठंडी और रक्त को साफ करनेवाली होती है।

काशनी Chicory *Cichorium intybus*

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। जमीन की जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद सौ मन के करीब डाल सकते हैं।

बोना—आश्विन (सितंबर) में इसके बीज खेतों में बोये जा सकते हैं। पहाड़ों पर गर्मी में बोना चाहिए। पंक्तियां बारह से पंद्रह इंच की दूरी पर होनी चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब दो सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें

छः-छः इंच के अंतर पर कर देना चाहिए। पत्तों को सफेद करने के लिए गमले या अन्य किसी बर्तन से ढकना पड़ता है। ढकने के समय से दो सप्ताह में पत्ते सफेद हो जाते हैं। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से तीन-चार महीने में फसल तैयार हो जाती है। तरकारी के लिए तो पहले भी काम में लाई जा सकती है, परंतु सलाद के लिए तैयार करने में कुछ अधिक समय लगता है।

उपयोग और गुण—हरे पत्तों की तरकारी बनाई जाती है। सफ़ेद किये हुए पत्ते सलाद के काम आते हैं। शिकोरी पशुओं को भी खिलाई जाती है। जब पशुओं के लिए बोते हैं तो बीज खेत में छींटकर बो दिये जाते हैं। पत्तों की सलाद बलदायक और ठंडी होती है। बहुधा काशनी की पूंजी हुई जड़ का चूर्ण कॉफी के चूर्ण में मिला दिया जाता है।

शेरविल Chervil *Anthricus cerefolium*

यह दो प्रकार की होती है। एक वह जिसके पत्ते काम में लाये जाते हैं और दूसरी वह जिसकी जड़ों का उपयोग किया जाता है।

जमीन, जुताई और खाद—पत्तेवाली के लिए दुमट और मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। जड़वाली बलुआ-दुमट में लगनी चाहिए। जमीन की जुताई पहली के लिए पांच-छः इंच और दूसरी के लिए छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद एकसौ मन के लगभग देना ठीक होता है।

बोना—पत्तेवाली शेरविल आश्विन से माघ (सितंबर से जनवरी) तक लगाई जा सकती है। चूंकि छोटे-छोटे पत्ते ही काम के योग्य रहते हैं अतः यह पंद्रह दिन के अंतर पर थोड़ी-थोड़ी बोनी चाहिए। ऐसा करने से कुछ समय तक यह चलती रहती है। जड़वाली कार्तिक (अक्तूबर) में बोनी चाहिए। दोनों के बीज छींटकर भी बो सकते हैं या पंक्तियों में भी लगा सकते हैं। करीब दो सेर बीज प्रति एकड़ बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी की जाती है।

उन्हें सात-आठ इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—पत्तेवाली सात-आठ सप्ताह में उपयोग के योग्य हो जाती है। दूसरी को कुछ समय अधिक लगता है।

उपयोग—पहली, जिसके पत्ते सलाद के काम में लाये जाते हैं, उसे अन्य तरकारियों को स्वादिष्ट करने के लिए भी काम में लाते हैं। दूसरी की जड़ों का उपयोग किया जाता है। यह गाजर से कुछ छोटी और भूरे रंग की होती है। अंदर का का गूदा पीले रंग का होता है। स्वाद में यह शकरकंद जैसी होती है।

क्रैस Cress *Lepidium sativum*

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो सकती है। जुताई छः-सात इंच होनी चाहिए। खाद सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना ठीक होता है।

बोना—पहाड़ों पर गर्मी और बरसात में और अन्य स्थानों में कभी भी लगा सकते हैं। एक एकड़ के लिए करीब तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है। इसे क्यारियों में बोना ठीक होता है। पंक्ति-से-पंक्ति एक फुट के अंतर पर रखनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों को छांटकर छः-छः इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से तीन-चार सप्ताह में पत्ते काटने योग्य हो जाते हैं।

उपयोग—पत्तों की सलाद बनाई जाती है। भोज्य पदार्थों की सजावट के लिए भी ये काम में लाये जाते हैं। इनकी तरकारी भी बनाई जा सकती है।

कॉर्न सलाद Corn salad *Valerianella olitoria*

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट और मटिया-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद एक-सौ मन के करीब देना ठीक होता है।

बोना—बोने का समय आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) है। पंक्तियां आठ-नौ इंच की दूरी पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उनमें छः-छः इंच का अंतर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से सात-आठ सप्ताह बाद इसके पत्ते उपयोग के योग्य हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जायं तोड़कर काम में लाये जा सकते हैं।

उपयोग—पत्तों की सलाद बनाई जाती है। तरकारी के लिए भी इनका उपयोग किया जा सकता है।

एंडाइव Endive *Cichorium endiva*

इनमें लेट्यूस की अपेक्षा शीत सहन करने की शक्ति अधिक होती है। इसलिए जहां सर्दी विशेष पड़ती हो वहां भी इसकी खेती हो सकती है। यह दो प्रकार की होती है। एक के पत्ते झल्लेदार अर्थात् मुड़े हुए और दूसरी के चौड़े हैं।

जमीन, जुताई और खाद—दुमट जमीन में यह साधारण जुताई से हो जाती है। खाद एकसौ मन के करीब डालना चाहिए।

बोना—कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में बीज नर्सरी में डाले जाते हैं। जब तीन-चार पत्ते निकल आवें तब क्यारियों में लगा देना चाहिए। पौधे-से-पौधा एक फुट की दूर पर और पंक्तियों में भी उतना ही अंतर होना चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब डेढ़ सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पत्तों को सफेद करने की क्रिया की ओर ध्यान देना चाहिए। जब पत्ते पूरे बढ़ जायं तो उन्हें एक साथ मिलाकर बांध देना चाहिए। कभी-कभी बांधकर सूखे घास से भी ढक देते हैं। मिट्टी के गमले या अन्य बर्तन से ढक देने से भी यह कार्य हो जाता है। दो-तीन सप्ताह में अच्छी सफेदी आ जाती है।

फसल की तैयारी—रोपने के समय से सात-आठ सप्ताह में फसल तैयार हो जाती है।

उपयोग और गुण—इसका उपयोग बहुधा सलाद के लिए ही किया जाता है, परंतु तरकारी भी बनाई जा सकती है। इसके पत्ते और बीज ठंडे और पित्तनाशक माने गए हैं। जड़ गर्म, उत्तेजक और बुखार को हटानेवाली होती है।

कार्डून Cardoon *Cynara Cardunculus*

इसके पौधे चार-पांच फुट ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट जमीन, साधारण जुताई और करीब एकसौ मन खाद होना चाहिए।

बोना—बीज आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में बो सकते हैं। पंक्तियां चार-चार फुट के अंतर पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें एक-एक फुट के अंतर पर कर देना चाहिए। पौधों पर मिट्टी भी चढ़ाई जाती है। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

उपयोग और गुण—ज्यों-ज्यों पत्ते बड़े होते जायं काटकर उनकी डंडी काम में लाई जा सकती है। कभी-कभी पत्तों को सफेद करने के लिए एक साथ बांध देते हैं।

उपयोग—पत्तों के बीचवाली डंडी का रसा बनाया जाता है। इनकी सलाद भी बनाई जा सकती है।

रूबर्ब, रेवंद चीनी Rhubarb *Rheumrha ponticum*

यह सिर्फ पहाड़ों पर ही हो सकता है और कई साल तक एक ही स्थान में रहता है। इसलिए इसे एकांत में ऐसी ही फसलों के निकट स्थान देना चाहिए जो कई साल तक रहती हों। इसके पत्ते अर्बी की भांति जमीन की सतह के निकट से ही निकलते हैं। फूलवाली डंडी चार-पांच फुट ऊंची हो जाती है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई सात-साठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद डेढ़सौ मन के लगभग देना ठीक होता है।

बोना—इसे बीज से पैदा कर सकते हैं। परंतु बहुधा जमीन में होने वाले भाग (कंद) को ही लगाते हैं जिससे इसके गुण में परिवर्तन न हो। प्रत्येक टुकड़े में दो आंख होनी चाहिए। लगाते समय पंक्तियां चार फुट की दूरी पर और कंद दो-दो फुट की दूरी पर होने चाहिए। बीज से पैदा किया जाय तो प्रति एकड़ दो सेर बीज की आवश्यकता होती है। पहाड़ों पर फाल्गुन-चैत्र में लगाते हैं। मैदानों में आश्विन-कार्तिक (सितंबर अक्तूबर) में बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय फूलवाली डंडियों को तोड़ते रहना चाहिए। आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—पौधे अच्छे शक्तिवान हो जायं इसलिए दो साल तक पत्ते बिल्कुल नहीं काटे जाते। तीसरे साल में कुछ पत्ते काटे जाते हैं और बाद में मौसम पर दो-ढाई महीने तक पत्ते की डंडियां पकड़कर खींच ली जाती हैं।

उपयोग और गुण—पत्तों की डंडियां चटनी, समोसे आदि बनाने के काम में लाई जाती हैं।

चार्ड Chard *Beta vulgaris Var. cicla*

जमीन, जुताई और खाद—साधारण जुताई और करीब एकसौ मन

खाद से यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है।

बोना—इसे आश्विन (सितंबर) मास में डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें एक-एक फुट के अंतर पर कर देना चाहिए। जो पौधे उखाड़े जायं उनकी तरकारी बनाई जा सकती है। सिंचई की जहां आवश्यकता हो वहां देनी चाहिए।

फसल की तैयारी—ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ते जायं, बाहर के पत्ते तोड़-कर उन्हें काम में लाते रहना चाहिए। बोने के समय से ढाई महीने में फसल उपयोग के योग्य हो जाती है।

उपयोग—पत्ते और कोमल शाखाओं की तरकारी बनाई जाती है।

ओरेक Orach *Atriplex hortensis*

यह सफेद, हरी और लाल, तीन रंग की होती है। लाल और सफेद की अपेक्षा हरी की बाढ़ अच्छी होती है। इसके पौधे चार-पांच फुट ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—साधारण जुताई और एकसौ मन खाद से यह हर प्रकार की जमीन में हो जाती है।

बोना—आश्विन में बीज क्यारियों में बोये जाते हैं। पंक्ति-से-पंक्ति डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए। एक-एकड़ के लिए आठ-दस सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करते रहना चाहिए। अंतिम छंटनी के समय पौधों में एक-एक फुट का अंतर कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से दो-ढाई महीने में फसल तैयार हो जाती है।

उपयोग—पत्ते और कोंपलों की तरकारी बनाई जाती है।

कोलार्ड्स Coollards *Brassica oleracea Var. acephala*

इसके पत्ते गुच्छे के रूप में पौधे के सिर पर होते हैं। पौधे दो-तीन फुट ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट या दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद दो सौ मन के करीब डालना ठीक होता है।

बोना—आश्विन (सितम्बर) में बीज नर्सरी में डालकर कार्तिक में पौधों को खेत में रोपना चाहिए। पंक्ति-से-पंक्ति तीन फुट और पौधे-से-पौधा दो फुट की दूरी पर होना चाहिए। प्रति एकड़ तीन छटांक बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—लगभग तीन-चार महीने में फसल तैयार हो जाती है।

उपयोग—पौधों के सिर पर जो पत्तों के गुच्छे बन जाते हैं उनकी तरकारी बनाई जाती है।

डेंडेलियन Dandelion *Taraxacum officinalis*

इसकी खेती पालक की खेती की भांति होती है। इसके पत्ते भी बांधकर या ढककर सफेद किये जा सकते हैं। इसके लिए बलुआ जमीन अच्छी है। पौधे-से-पौधे का अन्तर एक फुट और पंक्तियां डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर होनी चाहिए।

बंदगोभी, करमाकल्ला Cabbage *Brassica oleracea*

यह एक जाति की गोभी है जिसके पत्तों का उपयोग तरकारी के लिए किया जाता है। इसके पत्ते मुड़े हुए एक-दूसरे पर पर्तवार जमे रहते हैं। यह दो प्रकार की होती है: एक जल्दी तैयार होनेवाली और दूसरी देर से आनेवाली। आकार में भी यह दो प्रकार की होती है, एक गोल और

चपटी और दूसरी ओर उलटे लट्टू के आकार की।

जमीन, जुताई और खाद—जल्दी तैयार होनेवाली के लिए बलुआ-दुमट और देर से तैयार होनेवाली के लिए दुमट और मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। भूमि की जुताई लगभग आठ इंच गहरी होनी चाहिए। रोपने के महीने-डेढ़-महीने पहले ही अच्छा सड़ा हुआ गोबर का खाद लगभग तीनसौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए। इसके लिए पोटाश का खाद भी लाभदायक होता है। इसके लिए अन्य खाद न हो तो राख अवश्य देनी चाहिए। गोबर के खाद की कमी सड़ी हुई खली के खाद से पूरी की जा सकती है।

बंद गोभी

बोना—भाद्रपद से कार्तिक (अगस्त से अक्तूबर) तक इसके बीज नर्सरी में डाले जाते हैं। पहाड़ों पर गर्मी में डालना चाहिए। पूना, बंगलौर आदि स्थानों में भाद्रपद से माघ तक बीज डाल सकते हैं। दो-तीन छटांक बीज एक एकड़ के लिए काफी होते हैं। एक छटांक बीज पचास वर्गफुट की नर्सरी में डालना चाहिए। पांच-छः सप्ताह की बाढ़ के बाद पौधे खेतों में लगा सकते हैं। इन्हें थोड़ी-सी ऊँची पारियों पर लगाना ठीक होता है। छोटी जातिवाली गोभियों के लिए पौधे-से-पौधा एक फुट और पंक्ति-से-पंक्ति डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए। बड़ी के लिए डेढ़ फुट और दो फुट का अन्तर ठीक होता है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की जड़ों पर थोड़ी मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। ऐसा करने से पानी देने की नालियां भी बन जाती हैं और पौधों को भी लाभ पहुंचता है।

फसल की तैयारी—जल्दी तैयार होनेवाली गोभी रोपने के समय से ढाई-तीन महीने में तरकारी के योग्य हो जाती है। देर से होनेवाली को चार-पांच महीने लगते हैं। पत्तों की गठन, उनके रंग तथा ऊपरी

पत्तों के मोड़ से इनकी तैयारी जानी जा सकती है। कुछ दिनों तक इसकी तरकारी बराबर मिलती रहे, इसलिए नर्सरी में बीज कुछ आगे-पीछे डालना चाहिए। ऐसा करने से माघ से चैत्र तक इसकी तरकारी प्राप्त की जा सकती है। पैदावार डेढ़सौ से ढाईसौ मन गोभी हो जाती है। यदि किसी कारण से कुछ दिनों तक रखना पड़े तो जड़ समेत उखाड़कर जड़ ऊपर और सिर नीचे करके रखना चाहिए। ऊपर से कुछ सूखा घास रखकर मिट्टी डाल देनी चाहिए।

बीज की तैयारी—इसके बीज सब जगह नहीं तैयार किए जा सकते। पहाड़ों पर या ठंडे स्थानों में हो सकते हैं। चुनी हुई गोभियां जब काफी बढ़ जायं तो उस स्थान से हटाकर दूसरी जगह अच्छी उपजाऊ जमीन में लगा देनी चाहिए। लग जाने पर ये फूट जाती हैं। इनमें से पतली-पतली शाखाएं निकलती हैं जिनमें फूल और फल आते हैं। बीज बन्द बर्तन में नेफ्थलीन की गोलियों के साथ रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—इसके पत्ते तरकारी के काम में लाये जाते हैं। सिरके के साथ अचार भी बनता है। पत्तों को महीन काटकर नमक के साथ बंद बर्तन में रखने से वे कुछ समय तक सुरक्षित रह सकते हैं। हवा का आवागमन उस बर्तन में नहीं होने देना चाहिए। जब आवश्यकता हो निकालकर धो करके तरकारी बनाई जा सकती है। कुछ लोग इस नमकीन पदार्थ को बिना पकाये ही खाते हैं। जो गोभियां कुछ कठोर हो जाती हैं वे पशुओं को खिलाई जा सकती हैं। इस गोभी की तरकारी रुचिकारक, दस्तावर और स्वास्थ्यदायी होती है। इसके सेवन से स्कर्वी की व्याधि दूर होती है और कुछ चर्म-रोग भी मिट जाते हैं। जहां नींबू, संतरे आदि का अभाव हो, वहां गोभी द्वारा खाद्योज 'सी' की पूर्ति कुछ अंश तक की जा सकती है

गोभी को सुखाकर रखना—ऊपर से कुछ पत्ते अलग हटा देना चाहिए व बीच के पत्तों को काटकर एक मिनट तक उबलते हुए पानी में, जिसमें १ शतांश सोडा पड़ा हो, डालना चाहिए। बाद में सुखा लेना

चाहिए। कृत्रिम गर्म हवा काम में लाना हो तो उसका ताप-परिमाण ६० से ६५ शतांश तक होना चाहिए। सूखी हुई गोभी को जल्दी बर्तनों में बन्द कर देना चाहिए।

चीनी गोभी Chinese cabbage *Brassica chinensis*

इसकी खेती चीन में बहुत होती है। यह बंदगोभी-जैसी ही होती है परंतु चपटी न होकर ऊंची और गोल होती है। बंदगोभी की भांति ही इसकी खेती भी की जा सकती है। इसके लिए ठंडा जलवायु होना चाहिए। इसलिए जाड़े में ही इसकी खेती हो सकती है। नर्सरी में इसके पौधों को बंदगोभी की भांति पांच-छः सप्ताह तक न रखकर सिर्फ चार सप्ताह तक ही रखते हैं। अच्छी उपजाऊ जमीन में लगाई जाय तो रोपने के समय से तीन महीने में फसल तैयार हो जाती है। बंदगोभी के जो उपयोग हो सकते हैं वे इसके भी किये जा सकते हैं।

ब्रसेल्स स्प्राउट्स Brussels sprouts
Brassica oleracea gemmifera

इसे भी एक प्रकार की बंदगोभी ही समझना चाहिए। इसमें बंदगोभी की भांति एक पौधे में एक गोभी नहीं बैठती परंतु एक ऊंची डंडी होती है जिसके चारों ओर छोटी-छोटी बहुत-सी गोभियां बैठती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमुट, दुमुट और मटियार-दुमुट जमीन अच्छी होती ब्रसेल्स स्प्राउठस है। भूमि की जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद ढाईसौ से तीनसौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए।

बोना—बोने का समय भाद्रपद से कार्तिक (अगस्त से अक्तूबर) तक है। पहाड़ों पर गर्मी में बोना चाहिए। एक एकड़ के लिए दो-तीन छटांक बीज की आवश्यकता होती है। बीज पहले नर्सरी में गिराये जाते हैं। एक महीने के बाद पौधों को खेतों में लगा देना चाहिए। पौधे-से-पौधा दो फुट और पंक्ति-से-पंक्ति दो फुट से ढाई फुट की दूरी पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों पर थोड़ी मिट्टी चढ़ानी चाहिए। इसपर विशेष मिट्टी नहीं चढ़ाई जाती क्योंकि छोटी-छोटी गोभियां डंडी के नीचे के भाग पर ही अधिक बैठती हैं। मिट्टी चढ़ाने से जो नालियां बन जाती हैं उनमें पानी भरकर सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—गोभी की अपेक्षा यह कुछ देरी से तैयार होती है परंतु गर्मी आने के पहले बिल्कुल तैयार हो जाती है। फाल्गुन में यह तरकारी के योग्य रहती है। बंदगोभी से इसकी पैदावार अधिक होती है। नीचे की गोभियां ज्यों-ज्यों दो इंच मोटी होती जायं तोड़ लेनी चाहिए। जैसे ही पत्ते कुछ पीले पड़ने लगें, गोभियां तोड़ना प्रारंभ करना चाहिए। जब सब गोभियां तोड़ ली जायं तब ऊपर के पत्ते तोड़ सकते हैं। यदि पौधों से तोड़कर कुछ दिनों के लिए रखी जायं तो ये ठहर जाती हैं। गोभी के स्वाद-जैसा इनका स्वाद जल्दी नष्ट नहीं होता।

उपयोग और गुण—बंदगोभी की भांति इसका भी अचार या तरकारी बनाई जा सकती है। गुण बंदगोभी के समान ही हैं।

केल Kale *Brassica Var. acephala*

यह भी एक जाति की गोभी होती है जिसके पत्ते खुले और मुड़े हुए होते हैं। बंदगोभी के पत्ते-जैसे पर्तवार जमे हुए नहीं होते। बंद-गोभी की अपेक्षा यह अधिक सर्दी सहन कर सकती है। इसकी खेती पहाड़ों पर अच्छी होती है।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है परंतु बलुआ-दुमट इसके लिए अच्छी होती है। जुताई-छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इससे पहली फसल को अच्छा दिया हो तो इसे देने की आवश्यकता नहीं। परंतु यदि नहीं हो तो ढाईसौ मन के लगभग देना ठीक होता है।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) में इसके बीज नर्सरी में डालने चाहिए और जब पौधे तीन-चार इंच ऊंचे हो जायं तो दो फुट

के अन्तर पर खेतों में लगाना चाहिए। पहाड़ों पर फाल्गुन-चैत्र (फरवरी-मार्च) में लगाना चाहिए। प्रति एकड़ आठ-दस छटांक बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय इसपर भी मिट्टी चढ़ानी चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—रोपने के समय से तीन महीने में फसल तैयार हो जाती है। ज्यों-ज्यों ये तैयार होती जायं काम में लाना चाहिए। अब बेचने के लिए लगाई जायं तो समूचे पौधे काटकर उनमें से खराब पत्ते निकाल देने के बाद बाजार में भेजना चाहिए। इसकी पैदावार डेढ़सौ से दोसौ मन तक हो जाती है।

उपयोग—पत्तों की तरकारी बनाई जाती है।

मेथी Fenugreek *Trigonella Foenum graecum*

अच्छी उपजाऊ जमीन में इसका पौधा लगभग एक फुट ऊंचा हो जाता है। पत्तियां छोटी-छोटी होती हैं। फलियां पतली पांच-छः इंच लंबी होती हैं। इनमें छोटे-छोटे पीले रंग के बहुत-से बीज होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—उसके लिए कछार और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। इससे पहले-वाली फसल को यदि अच्छा खाद दिया गया हो तो इसे देने की आवश्यकता नहीं। परंतु यदि न दिया हो तो सौ-सवासौ मन के करीब देना चाहिए। जिस फसल से बीज लेना ही उसके लिए कुछ विशेष खाद देना ठीक होता है। बीस सेर के लगभग फासफ़ोरस पहुंचे इतना फा० पे० भी देना चाहिए।

बोना—मेथी के बीज क्यारियों में छींटकर बोये जाते हैं। छींटने के पश्चात् दतारी से मिट्टी में मिला देते हैं। इसे पंक्तियों में भी बो सकते हैं। करीब पंद्रह सेर बीज प्रति एकड़ बोना चाहिए। बोने का समय आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) है। वैसे तो यह तरकारी के लिए कभी भी लगाई जा सकती है, परन्तु अच्छे बीज आश्विन-कार्तिक की फसल से ही प्राप्त होते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय बने पौधों की छंटनी होनी चाहिए। उखाड़े हुए पौधों की तरकारी बनाई जा सकती है। बीजवाली फसल में पौधे कम-से-कम छः इंच की दूरी पर कर देने चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां कर देनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के पश्चात् तीन-चार सप्ताह में मेथी तरकारी के योग्य हो जाती है। जो पौधे छांटे जाते हैं वे भी काम में लाये जाते हैं। जब छंटनी समाप्त हो जाती है तो फिर पौधों के नर्म कोंपल काम में लाये जाते हैं। बीजवाली फसल माघ-फाल्गुन तक तैयार होती है।

दूसरी फसल के लिए बीज राख में मिलाकर या वैसे ही बंद बर्तन में रखे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—पत्ते और नर्म कोंपलों की तरकारी बनाई जाती है। इसे धूप में सुखाकर भी रख सकते हैं। सुखाने पर भी इसका स्वाद नष्ट नहीं होता। बीज की भी चनेकी दालके साथ तरकारी बनाई जाती है। बीज औषधि और व्यवसाय के काम में लाये जाते हैं। बीज से पीला रंग निकाला जाता है जिसके साथ यदि तूतिया (copper sulphate) मिला दिया जाय तो पक्का हरा रंग हो जाता है।

मेथी की तरकारी क्षुधावर्धक, बलदायक, बातनाशक और पेचिश के दस्तों को रोकनेवाली होती है। बढ़ी हुई तिल्ली, खांसी, जलंधर इत्यादि व्याधियों में इसका सेवन अच्छा होता है। बीज उत्तेजक, वीर्यवर्धक और पाचक होते हैं। इसके सेवन से गठियां-बाई भी छूट जाती है। खूनी बवासीर में दूध के साथ देने से खून बंद हो जाता है। घी में भूंजकर पत्ते खिलाए जायं तो पेचिश को लाभ पहुंचता है। पशुओं को मेथी खिलाई जाय तो वे मोटे हो जाते हैं। कहीं-कहीं हरी मेथी पशुओं को खिलाई जाती है।

खिसारी Khesari *Lathyrus sativus*

इसके पत्ते कटे हुए होते हैं। फलियां करीब एक इंच लंबी होती हैं, जिन में चार-पांच बीज होते हैं। बीज चपटे और भूरे या बैंगनी रंग के होते हैं

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में हो जाती है। परंतु मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इसके लिए नहीं दिया जाता।

बोना—प्रति एकड़ बीस सेर से एक मन के करीब बीज छींट दिये जाते हैं। इसे पंक्तियों में भी बो सकते हैं। पंक्तियों में एक-एक फुट का अंतर रखना चाहिए। इसके बोने का समय आश्विन (सितंबर-अक्तूबर) है।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—इसके पौधे की बाढ़ बहुत धीरे-धीरे होती है, इसलिए सागके लायक पौधे अगहन-पौष में तैयार होते हैं। घने पौधों की छंटनी करके और दूसरों की कोमल कोंपलें तोड़कर तरकारी के काम में ला सकते हैं। फाल्गुन में फसल काट ली जाती है। पैदावार दस-बारह मन बीज तक हो जाती है।

उपयोग और गुण—हरे पौधे तरकारी के काम में लाये जाते हैं। बीज की दाल बनाई जाती है। भूसा पशुओं को खिलाया जाता है। इस की तरकारी हलकी, रुचिकारक और पित्तनाशक होती है।

कुसुम Safflower *Carthamus tinctorius*

इसके पौधे दो-तीन फुट ऊंचे होते हैं। फूल नारंगी रंग के और बीज सफेद होते हैं। कुसुम दो प्रकार का होता है। एक वह जिससे तेल निकाला जाता है और जिसमें बीज बहुत होते हैं तथा दूसरा वह जिस से रंग प्राप्त किया जाता है। इसमें बीज कम होते हैं और पहले की अपेक्षा फूल अधिक होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए कछार और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताइ छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद डेढ़सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में दस सेर प्रति एकड़

के हिसाब से इसके बीज बोना चाहिए। पंक्तियों में डेढ़ फुट का अंतर ठीक होता है। इसे छींटकर भी बो सकते हैं। जब तरकारी के लिए बोया जाय तो छींटकर ही घना बोना चाहिए। करीब बीस सेर बीज बोना होगा।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें एक-एक फुट की दूरी पर कर देना चाहिए। यह क्रिया उस फसल के साथ होनी चाहिए जिससे बीज लेना हो। तरकारीवाली फसल के पौधों में चार-चार इंच का अंतर ठीक होता है।

फसल की तैयारी—बोने के समय से एक महीने में पौधे तरकारी के योग्य हो जाते हैं। फाल्गुन तक फसल काट ली जाती है। माघ में फूल चुने जाते हैं। पैदावार मन-सवा-मन फूल और दस-बारह मन बीज तक हो जाती है।

उपयोग और गुण—छोटे-छोटे हरे पौधे तरकारी के काम में लाए जाते हैं। फूलों से रंग निकाला जाता है। तेल खाने के काम में लाया जाता है। खली पशुओं को खिलाई जाती है और खाद के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। जल जाने से जो घाव हो जाता है उसपर इसके तेल का लेप लगाया जाय तो जल्दी आराम आ जाता है। बीज दस्तावर होते हैं। पिसे हुए बीज के लेप से सूजन कम हो जाती है।

सरसों Mustard *Brassica campestris*

अच्छी उपजाऊ जमीन में इसका पौधा तीन-चार फुट ऊंचा हो जाता है इसके फूल पीले होते हैं। फलियां दो-ढाई इंच लंबी होती हैं, जिनमें बहुत-से पीले बीज रहते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए कछार भूमि ही अच्छी होती है। वैसे दूसरी भूमि में भी बोई जा सकती है परंतु पैदावार उतनी अच्छी नहीं होती। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। इसे फा० पे० के खाद से बहुत लाभ पहुंचता है, इसलिए करीब सौ मन गोबर के खाद के साथ दो-ढाई मन सुपरफासफेट या करीब तीन मन तक हड्डी का चूर्ण देना चाहिए।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में इसके बीज बोये जाते हैं। करीब पांच-छः सेर बीज प्रति एकड़ के हिसाब से बोना चाहिए। पंक्ति-से-पंक्ति एक-एक फुट के अंतर पर होनी चाहिए। तरकारी के लिए कभी भी बो सकते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करनी चाहिए। पौधे-से-पौधा पांच-छः इंच की दूरी पर रखना ठीक होता है। अच्छी उपजाऊ जमीन हो और बीज लेना हो तो यह अंतर आठ-दस इंच तक बढ़ाया जा सकता है। पानी जहां आवश्यकता हो वहां देना चाहिए।

फसल की तैयारी—निंदाई के समय जो छोट-छोटे पौधे उखाड़े जाते हैं उनकी तरकारी बनाई जाती है। ऐसे पौधे बोने के समय से तीन-चार सप्ताह में तैयार हो जाते हैं। बीजवाली फसल माघ-फाल्गुन तक तैयार हो जाती है। लगभग आठ-दस मन बीज प्रति एकड़ हो जाते हैं। बीज सुखाकर बंद बर्तन में रखने से सुरक्षित रह जाते हैं।

उपयोग और गुण—छोटे-छोटे पौधों की तरकारी बनाई जाती है। बीज से तेल निकाला जाता है जो खाने के काम में आता है। इसके तेल में अचार आदि रखने से वे सड़ने नहीं पाते और स्वादिष्ट बने रहते हैं। खली पशुओं को खिलाई जाती है। इसकी तरकारी अग्निदीपक होती है। खुजली आदि व्याधियों में इससे लाभ पहुंचता है। इससे बादी भी ठीक हो जाती है। इसका तेल कुछ चर्म-रोगों को दूर करता है और बदन में उष्णता पैदा करता है।

सफेद सरसों White mustard *Brassica alba*

इसकी खेती विशेष नहीं होती। इसके पौधे करीब डेढ़ फुट ऊंचे होते है। पत्तों से सलाद बनाई जाती है।

इसकी खेती पीली सरसों की खेती के समान ही होती है। जिस फसल से बीज लेना हो उसे कार्तिक में बोना चाहिए अन्यथा यह कभी भी बोई जा सकती है।

राई Rai *Brassica juncea*

इसका पौधा सरसों के पौधे से कुछ छोटा होता है। फलियां सरसों की फलियों से छोटी और पतली होती हैं और संख्या में प्रति पौधा बहुत होती हैं। बीज कत्थई रंग के- सरसों के बीज से छोटे, होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—दुमट, मटियार-दुमट या कछार भूमि इसके लिए अच्छी होती है। फा० पे० का खाद इसके लिए भी लाभप्रद होता है। दो-ढाई मन के करीब सुपरफासफेट या हड्डी का चूर्ण डालना चाहिए।

बोना—इसे आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में बोते हैं। चार-पाँच सेर बीज प्रति एकड़ डालना चाहिए। पंक्तियां एक-एक फुट की दूरी पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें छः-छः इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हों वहां होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से तीन सप्ताह में छोटे-छोटे पौधे तरकारी के योग्य हो जाते हैं। माघ-फाल्गुन तक बीजवाली फसल भी तैयार हो जाती है। सरसों से दो-एक सप्ताह पहले यह तैयार होती है।

उपयोग और गुण—छोटे-छोटे पौधे तरकारी के काम में लाए जा सकते हैं। बीज तरकारियों को स्वादिष्ट करने तथा रायता, अचार आदि बनाने के काम में आते हैं। राई तीक्ष्ण, गर्म, कफनाशक, पाचक और क्षुधावर्धक होती है। निमोनिया-जैसी ठंड से होनेवाली व्याधि पर इसका लेप लाभदायक होता है। इसके चूर्ण से कै भी जल्दी होती है। सर्दी या जुकाम में इसका तेल पांव के तलवों में और नाक पर लगाया जाय तो वह बहुत जल्दी छूट जाती है।

पालक Spinach *Spiancia oleracea*

इसके पौधे दस-बारह इंच से डेढ़-दो फुट ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ जमीन को छोड़कर यह सब जमीन में हो जाता है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद सौ मन के करीब देना ठीक होता है।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) में इसके बीज क्यारियों में छींटे जाते हैं। करीब तीन-चार सेर बीज प्रति एकड़ के हिसाब से बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें छः इंच से नौ इंच की दूरी पर कर देना ठीक है। जब फूल आने लगें तो बीज के लिए कुछ फूलों को पौधों पर छोड़कर बाकी को तोड़ डालना चाहिए। जहां पानी देने की आवश्यकता हो वहां देना चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से तीन-चार सप्ताह बाद से पौधे तरकारी के योग्य हो जाते हैं। बोते समय यदि कुछ आगे-पीछे बोये जायं तो चैत्र-वैशाख तक इसकी तरकारी प्राप्त की जा सकती है।

उपयोग और गुण—पत्ते और कोमल पल्लव तरकारी के काम में लाए जाते हैं। इसकी तरकारी ठंडी, दस्तावर, जल्दी पचनेवाली और खून को साफ करनेवाली होती है।

खट्टा पालक Sorrel *Rumex vesicarius*

इसकी खेती पालक की खेती के समान ही होती है। इसकी सलाद भी बनाकर खाई जाती है। स्कर्वी-जैसी व्याधि में इसका सेवन अच्छा होता है। इसकी तरकारी ठंडी और अधिक पेशाब लानेवाली होती है।

बथुआ, चाकवट Goose-foot *Chenopodium Album*

यह दो प्रकार का होता है। एक के पत्ते छोटे होते है और दूसरे के बड़े। बड़े पत्तेवाले के पौधे एक फुट से डेढ़ फुट ऊंचे होते हैं और दूसरे की ऊंचाई एक फुट से कुछ कम ही रहती है। बथुआ के पत्ते बड़े कोमल होते हैं। कहीं-कहीं तो बिना बोये ही यह खेतों में हो जाता है।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ जमीन को छोड़कर यह सब

जमीन में हो जाता है। जमीन की जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद हो सके तो सवा सौ मन दे देना चाहिए।

बोना—अश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में इसके बीज क्यारियों में बोये जाते हैं। एक एकड़ के लिए चार-पांच सेर बीज डालना चाहिए। इसे छींटकर भी बो सकते हैं। जब पंक्तियों में बोया जाय तो नौ-नौ इंच की दूरी पर पंक्तियां होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों को छांटकर छः-सात इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। बड़े पत्तेवाले पौधों में यह अंतर नौ-दस इंच तक बढ़ाया जा सकता है। जो पौधे उखाड़े जायं उनकी तरकारी बनाई जा सकती है। कुछ आगे-पीछे बोने से माघ-फाल्गुन तक इसकी तरकारी प्राप्त की जा सकती है।

उपयोग और गुण—पत्ते और कोमल पौधे तरकारी और रायते के काम में लाये जाते हैं। इसकी तरकारी पाचक, अग्निदीपक, हल्की और दस्तावर होती है। तिल्ली, बवासीर, बुखार आदि में इसकी तरकारी गुणदायक होती है।

साग Sag *Amarantus gangaticus*

साग की दो जातियां हैं। एक हरी, दूसरी लाल। इनके पौधे चार-पांच फुट ऊंचे राजगिरे या रामदाने के पौधे के समान होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ मिट्टी को छोड़कर हर प्रकार की मिट्टी इसके लिए अच्छी होती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इससे पहलेवाली फसल को देना अच्छा होता है।

बोना—इसके बीज बरसात और गर्मी के महीनों में कभी भी बो सकते हैं। परंतु जो बीज आषाढ़-श्रावण में बोये जाते हैं उनकी पैदावार अधिक होती है। बीज खेतों में वैसे ही छींट दिये जाते हैं और फिर मिट्टी में मिला दिये जाते हैं। इन्हें पंक्तियों में भी बो सकते हैं। पंक्तियों में डेढ़ फुट का अंतर रखना चाहिए। प्रति एकड़ तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधोंकी छंटनी करनी चाहिए। छांटे हुए पौधों को तरकारी के काम में लाना चाहिए। अंतिम छंटाई के समय पौधों को एक-एक फुट के अंतर पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फ़सल की तैयारी—तीन-चार सप्ताह में फसल तैयार हो जाती है। पौधे और पत्ते कोमल बने रहें, इसलिए इसे एक-एक मास के अंतर पर बोना चाहिए। देहातों में घरों के आस-पास बीज छींट देने से भी पौधे निकल आते हैं और तरकारी के योग्य हो जाते हैं। दूसरी फसल के लिए सुखाकर बीज बंद बर्तनों में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—पत्ते और कोंपल तरकारी के काम में लाये जाते हैं। इसकी तरकारी हलकी, दस्तावर और पाचक होती है।

चौलाई Chaulai *Amarantus blitum*

इसकी कई जातियां होती हैं परंतु जो तरकारी के काम में लाई जाती हैं उन जातियों के पौधे एक फुट के करीब ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ को छोड़कर सब जमीन में हो जाती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डाल सकते हैं।

बोना—इसके बीज छींटकर पंक्तियों में या क्यारियों में बोने चाहिए। पंक्तियों में नौ इंच का अंतर ठीक होता है। प्रति एकड़ करीब तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है। इसे भी गर्मी और बरसात के महीनों में बो सकते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी होनी चाहिए। उन्हें नौ इंच से बारह इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—डेढ़ महीने में फसल तरकारी के योग्य हो जाती है।

उपयोग और गुण—पत्ते और कोमल कोंपलों की तरकारी बनाई जाती है। यह हल्की, दस्तावर, अग्निदीपक और खून को साफ करने वाली होती है।

राजगिरा, रामदाना Rajgira *Amarantus Paniculatus*

इसकी खेती साग की खेती के समान ही की जाती है। इसके बीज का लावा बनाकर उसे फलाहार के काम में लाते हैं। पत्तों की तरकारी बनाई जा सकती है। जिस फसल से बीज लेना हो उसे आषाढ़ में बोना चाहिए। कार्तिक तक यह फसल तैयार हो जाती है।

लुणिया या कुलफा साग Purslane *Purtulaca oleracea*

इसका पौधा बहुत छोटा होता है। यह दो प्रकार का होता है—एक हरा दूसरा सुनहले रंग का।

जमीन, जुताई और खाद—दुमट और मटियार-दुमट जमीन इसके लिए अच्छी है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद एक सौ मन के लगभग दे सकते हैं।

बोना—चैत्र-वैशाख से ज्येठ-आषाढ़ (मार्च से जून) तक इसे बो सकते हैं। यह बहुत कम दिनों तक रहता है, इसलिए कुछ दिनों तक का अंतर देकर बोना चाहिए। बीज क्यारियों में छींटकर बोना चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब तीन सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें नौ-दस इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। गर्मी में जो फसल बोई जाय उसे सींचने की आवश्यकता होती है।

फसल की तैयारी—बोने के समय से तीन-चार सप्ताह में फसल तरकारी के योग्य हो जाती है।

उपयोग और गुण—पत्ते और कोमल डंडियों की तरकारी बनाई जाती है। स्वाद में यह कुछ खारा और खट्टा होता है। इसकी तरकारी अग्निदीपक और पाचक होती है।

खस-खस, अफीम Poppy *Papaver somniferum*

इसके पौधे के सब अंग काम में लाये जाते हैं, परंतु खेती अफीम के लिए ही की जाती है। पौधे तीन-चार फुट ऊंचे होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए कछार-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इससे पहले-वाली फसल को देना ठीक होता है। अन्तिम जुताई के बाद इसके लिए क्यारियां बनवा लेनी चाहिए, क्योंकि यह क्यारियों में बोया जाता है।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्टूबर) में क्यारियों में इसके बीज घने छींटकर उन्हें दतारी से मिट्टी में मिला देते हैं। दो-तीन सेर बीज प्रति एकड़ छींटने पड़ते हैं।

निंदाई और सिंचाई—बीज मिट्टी में मिलाने के साथ ही पानी दिया जाता है और फिर आवश्यकतानुसार बराबर पानी देते रहते हैं। जब पौधे एक इंच के करीब ऊंचे हो जाते हैं तबसे छंटाई का कार्य प्रारंभ होता है। इसमें निंदाई भी बहुत करनी पड़ती है और प्रत्येक निंदाई में कुछ-कुछ पौधे छांटे जाते हैं। अंतिम छंटाई तक पौधे छः-छः इंच की दूरी पर कर दिये जाते हैं। यह क्रिया उस समय तक समाप्त हो जानी चाहिए जब पौधे पांच-छः इंच ऊंचे हो जायं। जो पौधे छांट दिये जाते हैं। उनकी जड़ें तोड़कर फेंक दी जाती हैं और बाकी के भाग की तरकारी बनाई जाती है।

फसल की तैयारी—तीन-चार सप्ताह में पौधे तरकारी के योग्य हो जाते हैं। अफीम फाल्गुन-चैत्र में निकाला जाता है। जब फल तैयार हो जाते हैं तो दोपहर के बाद उनपर बहुत कम गहरे चीरे दिये जाते हैं, जिनमें से दूध निकलता है और रात्रि में फलों पर जम जाता है। उसे फिर दूसरे दिन सुबह इकट्ठा कर लेते हैं। वैशाख तक फसल सूख जाती है तो फल तोड़ लिये जाते हैं।

उपयोग और गुण—छोटे-छोटे पौधों की तरकारी बनाई जाती है।

इन्हें सुखाकर भी तरकारी के लिए रख लेते हैं। सुखाने से स्वाद नष्ट नहीं होता। जब पौधे छः इंच के करीब ऊंचे हो जाते हैं तो फिर पत्ते और कोंपल ही काम में लाये जाते हैं। जब फल छोटे होते हैं तो उन्हें भी तलकर खाते हैं। इनमें थोड़ी मादकता होती है। अफीम का उपयोग कई प्रकार की व्याधियों में किया जाता है। पेचिस, दस्त, उल्टी, पेट के दर्द के लिए तथा आँखों की व्याधियों के लिए इसका उपयोग किया जाता है। बीज वैसे ही खाए जाते हैं और पकवानों में भी डाले जाते हैं। इसका तेल जलाने और खाने के काम में आता है। खली पशुओं को खिलाई जाती है।

पोई Malabar nightshade

हरी पोई *Bosella alba* **लाल पोई** *Bosella rubra*

यह दो प्रकार की होती है—एक लाल और दूसरी हरी। पत्ते मुलायम, मोटे और पान के आकार के होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट और मटियार-दुमट जमीन अच्छी होती है। इसे बहुधा खेतों में नहीं बोते। बगीचों में घेरों के आस-पास लगा देने से लता उनपर चढ़ जाती है। देहातों में घरों के आस-पास इसे लगाकर छप्परों पर चढ़ा देते हैं। कहीं-कहीं मचान भी बना दिए जाते हैं जिनपर यह चढ़ जाती है। हो सके तो लगाते समय पौधों को कुछ खाद दे देना चाहिए।

बोना—इसे बीज से भी उपजा सकते हैं परन्तु बहुधा रोप से ही लगाते हैं। जहाँ यह होती है वहांपर बीज गिर जाते हैं जिनसे नये पौधे निकल आते हैं। उन्हीं पौधों को लगा देने से यह लग जाती है। इसे बहुधा बरसात में लगाते हैं कि जिससे बिना पानी दिये ही लग जाय।

निंवाई और सिंचाई—पौधों के आस-पास की जमीन को साफ रख-कर आवश्यकतानुसार पानी देना चाहिए।

फसल की तैयारी—करीब एक महीने में लता इतनी बढ़ जाती है

कि तरकारी के लिए पत्ते तोड़े जा सकते हैं। माघ-फाल्गुन तक पत्ते और कोंपल अच्छे आते रहते हैं। इसके बाद कहीं-कहीं इसे उखाड़कर फेंक देते हैं और कहीं-कहीं बरसों तक रख दी जाती है। प्रति वर्ष नई लता लगाना ही अच्छा होता है।

उपयोग और गुण—पत्तों की तरकारी बनाई जाती है। पकौड़े, समोसे आदि भी इससे अच्छे बनते हैं। साग की अपेक्षा इसकी तरकारी अधिक स्वास्थ्यदाई और ठंडी होती है। इससे शरीर पुष्ट होता है और रक्तपित्त के विकार शांत होते हैं।

सौंफ Aniseed *Primpinella anisum*

इसका पौधा तीन-चार फुट होता है।

जमीन, जुताई और खाद—यह बलुआ को छोड़कर साधारण जुताई से सब जमीन में हो जाती है। खाद डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ डालना ठीक होता है।

बोना—इसके बीज सीधे खेतों में बोये जाते हैं और नर्सरी में डालकर भी पोधों को खेतों में लगा सकते हैं। पत्तों के लिए लगाई जाय तो पंक्तियों में छ-छः इंच का और जब बीज के लिए लगाई जाय तो डेढ़ फुट का अंतर ठीक होता है। इसके बोने का समय आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) है। बीजवाली के लिए चार-पांच सेर और पत्तेवाली के लिए दस-बारह सेर बीज प्रति एकड़ डालना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय खेतों में बोई गई फसल के लिए छंटनी करनी पड़ती है। जब पौधे दो-तीन इंच ऊंचे हो जायं तो छांटकर उन्हें डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर कर देना चाहिए। पत्तेवाली फसल के लिए छः इंच का अन्तर ही ठीक होता है। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के महीने-डेढ़ महीने बाद से ही पत्ते काम में लाये जा सकते हैं। बीजवाली फसल चैत्र-वैशाख तक तैयारी हो जाती

है। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो उन्हें खूब सुखाकर नेफ्थलीन के साथ बंद बर्तन में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—भोज्य पदार्थों को स्वादिष्ट करने तथा उनकी सजावट के लिए पत्तों का उपयोग किया जाता है। बीज से सत निकाला जाता है जिसे औषधि के लिए काम में लाते हैं। साबुन-जैसे पदार्थों को सुगंधित करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। बीज पाचक और ठंडे होते हैं। नेत्र-रोग भी इससे दूर होते हैं। पेचिश में इसके उपयोग से विशेष लाभ होता है। संग्रहणी में भी इसका सेवन अच्छा होता है।

बड़ी सौंफ Fennel *Foeniculum vulgare*

इसके पौधे करीब तीन फुट ऊंचे होते हैं। उसकी खेती छोटी सौंफ के समान ही होनी चाहिए। चूंकि इसके पौधे बड़े होते हैं, इसलिए जब पौधे तीन-चार इंच ऊंचे हो जायं तो उन्हें छांटकर एक-एक फुट की दूरी पर कर देना चाहिए।

धनिया Coriander *Coriandrum sativum*

इसके पौधे करीब डेढ़ फुट ऊंचे हो जाते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। साधारण जुताई और खाद सवा सौ मन के लगभग देना ठीक होता है।

बोना—इसके बीज किसी भी ऋतु में बो सकते हैं। परन्तु जिस फसल से बीज लेना हो उसे आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में बोना चाहिए। बीज क्यारियों में छींटकर मिट्टी में मिला दिये जाते हैं। जहां सिंचाई नहीं करनी पड़ती वहां बिना क्यारियों के ही बो सकते हैं। बोने के प्रथम धनिया को हाथ से मलकर दोनों दलों को पृथक्-पृथक् कर लेना चाहिए, क्योंकि इसके बीज दोनों टुकड़ों में होते हैं। एक एकड़ के लिए सात-आठ सेर बीज की आवश्यकता होती है। कहीं-कहीं पंजाब की तरफ बारह सेर भी बोते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें

नौ-दस इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। पानी जहां देना हो वहां आवश्यकतानुसार देना चाहिए।

फसल की तैयारी—इसके बीज करीब पंद्रह दिन में अंकुर फेंकते हैं और एक महीने में पौधों में ऐसी पत्तियां आती हैं जिनका उपयोग किया जा सकता है। इसके बाद आवश्यकतानुसार पत्तियां तोड़ी जा सकती हैं। जो पौधे छांटे जाते हैं वे भी काम में लाये जा सकते हैं। बीजवाली फसल की पत्तियां नहीं तोड़नी चाहिए। चार-पांच महीने में बीजवाली फसल तैयार हो जाती है। प्रति एकड़ चार-पांच मन बीज पैदा हो जाते हैं। मैसूर की तरफ़ चौबीस-पचीस मन तक की उपज भी पाई गई है।

उपयोग और गुण—पत्ते और छोटे पौधे चटनी बनाने तथा तरकारियों को स्वादिष्ट करने के काम में लाये जाते हैं। चटनी की छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूप में सुखाई जाती हैं। सूखी हुई चटनी से नमकीन भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट किये जा सकते हैं। बीज का उपयोग मसाले के लिए किया जाता है। औषधि में भी ये काम देते हैं। हरा धनिया पित्तनाशक होता है। सूखे बीज भूनकर उनका चूर्ण बनाया जाता है जिसे मिश्री के साथ मिलाकर खाने से बल बढ़ता है और मस्तिष्क को तरी पहुंचती है।

पुदीना Mint *Mentha arvensis*

इसके पौधे छोटे-छोटे होते हैं जिनकी डंडियां लाल या हरी होती हैं। शाखाएं जमीन पर फैलती रहती हैं और जगह-जगह जड़ें फेंक देती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। जमीन की जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद सौ-सवा सौ मन के लगभग दे सकते हैं।

बोना—इसे जब चाहें लगा सकते हैं, परन्तु कार्तिक (अक्तूबर) में लगाना अच्छा होता है। इसकी शाखाओं के टुकड़े, जिनके साथ कुछ जड़ें भी हों, क्यारियों में लगा देने चाहिए। पंक्तियों में एक फुट का और पौधों में छः-छः इंच का अंतर रखना ठीक होता है। लगाने के कुछ दिन बाद य

टुकड़े जड़ें फेंक देते हैं और फिर अच्छी तरह से लग जाते हैं। एक बार लगा देने से कई वर्षों तक पौधे लगे रहते हैं; परंतु प्रतिवर्ष कार्तिक में स्थानांतर करना अच्छा होता है। कहीं-कहीं बरसात में पौधे मर जाते हैं इसलिए बरसात के प्रारंभ में कुछ पौधों को उठाकर गमलों में या मिट्टी से भरे हुए देबदारू के चौखटोंमें लगाकर उन्हें छाया में रख देना चाहिए और फिर कार्तिक में क्यारियों में लगा देना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—आवश्यकतानुसार निंदाई करते रहना चाहिए। गर्मी के दिनोंमें तीसरे-चौथे रोज पानी देना पड़ता है। इसे बहुधा लोग कुओं के निकट लगा देते हैं जहांपर बराबर पानी मिलता रहता है। कभी कभी गर्मी में इसमें एक प्रकार के कीट लग जाते हैं जो पत्तों के नीचे की ओर पाए जाते हैं। ये पत्तों का रस चूसते रहते हैं जिससे पत्ते मुड़ जाते हैं। इस व्याधि से बचने के लिए मिट्टीके तेल में भीगी हुई राख छिड़की जाय तो ये कीट मर जाते हैं। राख पौधों को उलट-पलट करके इस रीति से छिड़कनी चाहिए जिसमें वह नीचे की ओर लगे।

फसल की तैयारी—जब पौधे अच्छी तरह से लग जायं तो पत्ते आवश्यकतानुसार तोड़ सकते हैं। गर्मी के दिनों में इसकी बाढ़ अच्छी होती है।

उपयोग और गुण—पत्तों की चटनी बनाई जाती है। इनसे दूसरी चटनियां और तरकारियां स्वादिट भी की जाती है। पुदीना ठंडा और साफ पेशाब लानेवाला होता है। हैजे के दिनों में इसका शरबत पीते रहें तो अच्छा रहता है। यह कै को रोकता है, चित्त को प्रसन्न रखता है और पाचनशक्ति बढ़ाता है।

: १४ :

वे साग-भाजी जिनके फूल की डंडी या फूल काम में आते हैं

फूलगोभी Cauliflower *Brassica oleracea Varo botrytis*

इसकी खेती इसके फूल की डंडी के लिए की जाती है, जिसका रूप परिवर्तन ऐसा हो जाता है कि सर्वसाधारण को वह फूल ही मालूम होता है। पौधा करीब एक फुट ऊंचा होता है, परंतु पत्ते दो फुट ऊंचे हो जाते हैं।

फूल गोभी

जमीन, जुताई और खाद—यह बलुआ और मटियार को छोड़कर सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है। जल्दी होनेवाली को बलुआ-दुमट और देर से होनेवाली को मटियार-दुमट में लगाना चाहिए। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। गोबर की खाद तीन सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना ठीक होता है। अंतिम जुताई के बाद पारियां और नालियां बनवा लेनी चाहिए।

बोना—जिन जातियों ने भारतवर्ष की जलवायु को अपना लिया है उन्हें अषाढ़ से भाद्रपद (जून से अगस्त) तक नर्सरी में बोना चाहिए। लगभग बीस दिन के बाद नर्सरी से उठाकर पौधे छः-छः इंच की दूरीपर दूसरे स्थानमें लगाने चाहिए। वहांसे फिर पंद्रह दिन बाद उठाकर उन्हें खेतों में लगा सकते हैं इसके पौधे कुछ कोमल होते हैं, इसलिए दो बार स्थानांतर करने से वे सुदृढ़ हो जाते हैं। जो बीज बाहर से मंगाये जायं उन्हें आश्विन (सितंबर) में नर्सरी में डालना चाहिए, क्योंकि जब सर्दी

पड़ती है तब वे अच्छे जमते हैं। गर्मी सहन करने की शक्ति कम होने के कारण पहले लगाने से बहुत-से पौधे मर जाते हैं और जो बच जाते हैं उनमें से बहुत-से निर्बल हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि देश-रंजित जातियों के बीज देर से डाले जायं तो उनके फूल अच्छे नहीं बनते और वे जल्दी फूट भी जाते हैं। पहाड़ों पर गोभियां गर्मी में लगानी चाहिए। एक एकड़ के लिए दो-तीन छटांक बीज काफी होते हैं। इनके लिए पंद्रह फुट लंबी और पांच फुट चौड़ी ऐसी दो नर्सरियां होनी चाहिएं। खेतों म लगाते समय पंक्तियां दो फुट और पौधे डेढ़ से दो फुट की दूरी पर, गोभी की जाति के अनुसार, लगाने चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—नर्सरी में छोटे-छोटे कीट बहुत हानि पहुंचाते हैं। इसलिए उनसे बचाने की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। पौधों पर महीन राख छींटते रहने से बहुत-कुछ बचाव हो जाता है। पौधों का स्थानांतर बड़ी सावधानी से करना चाहिए, जिसमें उनकी जड़ों को हानि नहीं पहुंचे। सिंचाई आवश्यकतानुसार दो-दो पंक्तियों के बीच की नालियों में होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से लगभग चार महीने में फूल तैयार हो जाते हैं। श्रावण और भाद्रपद में बोई जानेवाली से कार्तिक से पौष तक और आश्विनवाली से माघ-फाल्गुन तक फूल मिलते रहते हैं। जब फूल अच्छा बन जाय और सफेद रंग पर रहे तब काट लेना चाहिए। कभी-कभी कुछ फूल पीले रंग के हो जाते हैं। यदि ऐसा हो जाय तो पौधे के पत्तों को इकट्ठे करके बांध देना चाहिए जिसमें फूल रोशनी से छिप जाय। ऐसा करने से चार-पांच रोज में फिर सफेदी आ जाती है। तैयार फूल को उखाड़कर उसकी जड़ें कुछ छांट दी जायं और कुछ पत्ते काटकर छाया में लगा दिये जायं तो कुछ दिनों तक वह अच्छा बना रहता है।

गोभियों के बीज सब जगह तैयार नहीं किये जा सकते। पहाड़ों पर ठंडे स्थानों में हो सकते हैं। कहीं-कहीं मैदानों में भी, जहां वातावरण में तरी अच्छी होती है, देश-रंजित गोभियों के बीज पैदा किए जा सकते हैं।

अच्छे बड़े फूलों को उखाड़कर उन्हें अच्छी खाद दी हुई जमीन में लगा देना चाहिए। इनके लग जाने पर जो शाखाएँ निकलें उनमें से थोड़ी-सी मोटी शाखाओं के सिवाय दूसरी शाखाओं को काट देना चाहिए। जो शाखाएँ छोड़ी जाती हैं वे बढ़ जाती हैं और उनमें फूल और फलियां आ जाती हैं। इन फलियों से जो बीज प्राप्त किये जायें, उन्हें सुखाकर डिब्बों में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—फूल की तरकारी, अचार आदि बनाये जाते हैं। सुखाने के लिए गोभी के छोटे-छोटे टुकड़ों को चार-पांच मिनट के लिए उबलते हुए पानी में डालकर बाद में सुखाना चाहिए। पानी में दो शतांश नमक और एक शतांश सोडा डाल दिया जाय तो अच्छा होगा। सुखाने के लिए कृत्रिम गर्मी काम में लाई जाय तो तापमान ६० शतांश से अधिक नहीं होना चाहिए। पत्ते पशुओं को खिलाये जाते हैं। यह बादी बढ़ाने वाली और कब्जकारी होती है। इसकी तरकारी से हृदय को कुछ लाभ पहुंचता है।

ब्रोकोली Broccoli *Brassica oleracea*

यह भी एक प्रकार की फूलगोभी होती है जिसकी खेती फूलगोभी की खेती के समान ही की जा सकती है। इसकी कई जातियां होती हैं जो पृथक्-पृथक् ऋतु में बोई जाती हैं। फूलगोभी की अपेक्षा इसे तैयार होने में कुछ समय अधिक लगता है और इसका फूल फूलगोभी-जैसा ठोस नहीं होता बल्कि गोभी-जैसे छोटे-छोटे कई फूल होते हैं। सात-आठ महीने में फूल तैयार होते हैं। इसके पौधे ढाई फुट के अंतर पर होने चाहिए।

ग्लोब आर्टिचोक Globe Artichoke *Cynara scolymus*

यह सूरजमुखी की जाति का होता है व अधखिले फूल और कलियां तरकारी के काम में लाई जाती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। गोबर का खाद चालीस मन

के लगभग देना ठीक होता है।

बोना—इसे बीज से भी पैदा कर सकते हैं और जमीन में से निकले हुए नये कोंपल भी लगाए जा सकते हैं। जब बीज बोये जायं तो उन्हें भाद्रपद से आश्विन (अगस्त-सितंबर) तक नर्सरी में लगाकर फिर जब पौधे दो-ढाई इंच ऊंचे हो जायं तो स्वस्थ पौधों को चुनकर खेत में लगाना चाहिए। यदि कोंपल लगाए जायं तो उन्हें पांच-छः फुट की दूरी पर पंक्तियों में दो-तीन फुट के अंतर पर लगाना चाहिए। एक एकड़ के लिए पांच-छः छटांक बीज की आवश्यकता होती है।

निदाई और सिंचाई—इसकी फसल बारह महीने में तैयार होती है, इसलिए सिंचाई का प्रबंध अच्छा रखना चाहिए। निदाई के समय कुछ कलियों के तोड़ने का ध्यान रखना चाहिए जिसमें बचाई हुई कलियां अच्छी बन जायं।

फसल की तैयारी—बोने के समय से करीब बारह महीने में फसल तैयार होती है।

उपयोग—कोमल कलियां और फूल तरकारी के काम में लाये जाते हैं। छोटी-छोटी कलियां कच्ची भी खाई जाती हैं।

पटवा Roselle *Hibiscus sabdariffa*

इसकी खेती तरकारियों के बगीचों में सिर्फ इसके फूल के लाल पुट-पत्र (Sepals) के लिए की जाती है, जिससे मुरब्बा, चटनी आदि बनाये जाते हैं। इसका पौधा सात-आठ फुट ऊंचा होता है।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में साधारण जुताई से हो जाता है। खाद इससे पहलेवाली फसल को देना चाहिए।

बोना—वैशाख से आषाढ़ (अप्रैल से जून) तक इसके बोने का समय है, परंतु बहुधा वर्षा ऋतु के प्रारंभ में ही बोया जाता है। प्रति एकड़ पांच सेर बीज की आवश्यकता होती है। पंक्तियों को तीन-चार फुट की दूरी पर रखनी चाहिए। जब सन के लिए बोया जाता है तो यह अंतर एक फुट

का कर दिया जाता है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें तीन-चार फुट की दूरी पर कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी—फूल मार्गशीर्ष से माघ तक आते रहते हैं। जैसे-जैसे फूल आते जायं उनके लाल भाग को तोड़कर काम में लाना चाहिए।

उपयोग और गुण—फूलों के लाल पुट-पत्र चटनी और मुरब्बे के काम में लाये जाते हैं। इससे रक्तपित्त की शांति होती है और बल बढ़ता है। फूलों को सुखाकर भी काम में ला सकते हैं। कहीं-कहीं इसके पत्तों की तरकारी भी बनाई जाती है। इससे सन भी निकाला जाता है।

: १५ :

वे साग-भाजी जिनके फल काम में आते हैं

परवल Parwal *Tricosanthes dioica*

इसकी खेती भारतवर्ष में पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा उत्तरप्रदेश के कुछ हिस्सों में विशेष होती है। अन्य राज्यों में भी कहीं-कहीं इसे स्थान मिल जाता है। इसके गुणों की ओर ध्यान दिया जाय तो इसकी खेती सब राज्यों में होनी चाहिए।

परवल दो प्रकार के होते हैं, एक पतले और भूरे रंग के, दूसरे मोटे हरे रंग के। हरे रंगवालों पर सफेद धारियां भी होती हैं। पकने पर परवल पीले या नारंगी रंग के हो जाते हैं। इसकी बेल पंद्रह-बीस हाथ लंबी और पत्ते पान के आकार के लेकिन खुरदरे होते हैं। फूल कुंदरू के फल के समान होता है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद अच्छा सड़ा हुआ डेढ़ सौ मन के लगभग डाल सकते हैं। बकरी अथवा घोड़े की लीद की खाद से इसे विशेष लाभ पहुंचता है।

बोना—इसके बीज भी बोये जा सकते हैं और लता भी लगाई जाती हैं। बहुधा लता से ही उत्पन्न करते हैं । बोने का समय आषाढ़ (जून) और कार्तिक (अक्तूबर) है। इसके लगाने की यह रीति है कि तीन-चार हाथ ऊपर की बेल लेकर उसको तीन-चार बार ऐसा मोड़ लेना चाहिए कि करीब एक फुट रह जाय। मोड़ी हुई बेल जमीन में करीब चार इंच गहरी इस रीति से गाड़नी चाहिए कि बीच का हिस्सा गड़ा रहे और दोनों मुंह खुले रहें। ऐसा करने से गड़ हुए भाग से जड़ें और खुले हुए मुंह की ओर से नये कोंपल निकल आते हैं। पंक्ति-से-पंक्ति पांच-छः फुट की दूरी पर होनी चाहिए और उतने ही अंतर पर पौधे-से-पौधा पंक्ति में होना चाहिए। लगभग १,५०० टुकड़े प्रति एकड़ लगेंगे।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। पहले साल की फसल के बाद पौधों के आसपास की मिट्टी खुदवा देनी चाहिए और हो सके तो थोड़ा खाद दे देना भी ठीक होता है। लत्तियां जगह-जगह जड़ें फेंकने न पायें, इसलिए निंदाई के समय उन्हें उठाकर देख लेना चाहिए। अधिक जड़ों के फेंक देने से पैदावार कम हो जाती है। सिंचाई की आवश्यकता बंगाल और बिहार में नहीं पड़ती, लेकिन अन्य राज्यों में पानी देना पड़ता है। कार्तिक में जो लत्तियां लगाई जायं उनमें जबतक वे लग न जायं पानी जल्दी-जल्दी देना चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार दे सकते हैं । पंक्तियों के बीच में दो-दो फुट चौड़ी नालियाँ बनाकर उसमें पानी देना चाहिए।

फसल की तैयारी—चैत्र से आश्विन-कार्तिक तक फल आते रहते हैं। जब बाजार में अन्य हरी तरकारियों का अभाव रहता है उस समय यह तरकारी मिलती रहती है। इसकी पैदावार भी अच्छी होती है पचास-साठ मन फल प्रति एकड़ प्राप्त किए जा सकते हैं। प्रथम वर्ष की अपेक्षा दूसरे वर्ष में फल अधिक प्राप्त होते हैं। तीसरे वर्ष में जमीन बदल देनी चाहिए।

उपयोग और गण—पत्ते और कोमल डंडियों की तरकारी भी बन

सकती है परंतु बहुधा फल का ही उपयोग किया जाता है। पत्ते पित्त-नाशक, डंडी कफनाशक और फल त्रिदोषनाशक होते हैं। इसकी तरकारी से पाचन-शक्ति तीव्र होती है और हृदय को लाभ पहुंचता है। खांसी, ज्वर और रक्त-विकार दूर होते हैं।

टमाटर Tomatoes *Lycopersicum esculentum*

इसकी जन्मभूमि अमरीका मानी गई है। भारत में इसकी खेती का फैलाव कुछ ही दिनों से हुआ है। इसके फल अधिकतर संतरे के आकार के होते हैं। ये चिकने और बहुत मुलायम होते हैं। पकने पर ये लाल या गुलाबी रंग के हो जाते हैं। पौधे तीन-चार फुट ऊंचे होते हैं।

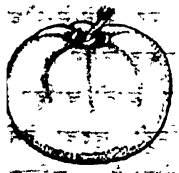

टमाटर

जमीन, जुताई और खाद—वैसे तो यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। परंतु बलुआ-कछार भूमि इसके लिए अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इसमें पहलेवाली फसल को ही देना ठीक होता है। परंतु यदि इसे ही देना हो तो सवा सौ मन के लगभग खूब सड़ा हुआ देना चाहिए। इसे विशेष खाद नहीं दिया जाता, क्योंकि ऐसा करने से शाखाओं की बाढ़ अधिक हो जाती है और फल कम प्राप्त होते हैं। ताज़ा या कम सड़ा हुआ खाद भी इसके लिए हानिकारक होता है। गोबर के खाद के साथ-साथ कुछ राख भी डालनी चाहिए। रासायनिक खाद के रूप में ढाई मन सुपरफास्फेट देना ठीक होता है। ना० के खाद के लिए सोडियम नाइट्रेट करीब सवा मन या एमोनियम सलफेट लगभग एक मन दे सकते हैं। इसमें से आधा, पौधे जब एक महीने के हो जायं तब और आधा जब फल आने लगें तब देना चाहिए। खली का खाद भी लेखक ने देकर देखा तो अच्छा पाया गया। जब रोप तीन सप्ताह के हो गए थे तब खली का चूर्ण पौधों के आसपास की मिट्टी में मिलाकर पानी दिया गया था।

यह दो रीति से लगाया जाता है। एक रीति में दो पानी की नालियों के बीच में एक पंक्ति टमाटर की होती है और दूसरी में दो पंक्तियों के बाद पानी देने की नाली होती है। पहली रीति में पंक्तियां तीन-तीन फुट की दूरी पर होती हैं और बीच में पानी की नाली रहती है। दूसरी रीति में दो नालियों के बीच की भूमि चार फुट चौड़ी होती है, जिसपर किनारों की ओर छः-छः इंच भूमि छोड़कर टमाटर की पंक्तियां लगाई जाती हैं। इसलिए अंतिम जुताई के बाद जिस रीति से लगानी हो उसी के अनुसार नालियां बना लेनी चाहिएं। पहली रीति की अपेक्षा दूसरी में यह लाभ होता है कि यदि पौधों को किसी प्रकार का सहारा न दिया जाय तो पौधे बीच की भूमि में पड़े रहते हैं और पानी से फल बिगड़ते नहीं पाते।

बोना—श्रावण से कार्तिक (जुलाई से अक्तूबर) तक इसके बीज नर्सरी में गिराये जाते हैं। जहां वर्षा अधिक हो वहां आश्विन में और पहाड़ों पर गर्मी में डालना चाहिए। नर्सरी में पंक्तियां चार-चार इंच की दूरी पर रखना ठीक होता है। जब पौधे पांच-छः इंच के हो जायं तो इन्हें उपर्युक्त रीति से तैयार की हुई भूमि में उसकी उर्वरा शक्ति के अनुसार दो फुट से तीन फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। एक एकड़ के लिए वैसे तो एक छटांक बीज काफी होते हैं, परंतु अच्छे स्वस्थ पौधे चुनकर लगाए जायं, इसलिए नर्सरी में दो छटांक डालना चाहिए। टमाटर की कलम भी लगाई जा सकती है। नीचे की टहनी के छः इंच के टुकड़े लगा देने से इनमें जड़ें आ जाती हैं। कलमी पौधों में फल जल्दी आते हैं।

निराई और सिंचाई—निराई के समय बहुत-से लोग पौधों की कुछ शाखाओं को तोड़ डालते हैं। कुछ लोग पौधों को सहारा देने के लिए लकड़ियां गाड़कर उनपर [illegible] बांस लगाना फलों के मूल्य तथा मजदूरी की दर पर निर्भर है। लकड़ियों पर चढ़ाने से फल बड़े-बड़े आते हैं। ऊपर हवा में रहने के कारण वे बिगड़ने भी नहीं पाते। इसके विपरीत यदि जमीन पर पड़े रहें तो कुछ फल बिगड़ जाते हैं।

शाखाओं को तोड़ना या नहीं तोड़ना यह बाजार की मांग पर निर्भर है। जहां अच्छे बड़े फलों से अच्छा मूल्य प्राप्त किया जा सके वहां तो शाखाओं का तोड़ना सार्थक है वरना पैदावार कम होने से हानि होती है। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—खेतों में रोपने के पांच-छः सप्ताह पश्चात उनमें फूल आते हैं और आठ-दस सप्ताह बाद फल भी आ जाते हैं। पैदावार प्रति एकड़ दो सौ से तीन सौ मन तक हो जाती है। कहीं-कहीं इससे भी अधिक होती है।

दूसरी फसल के लिए बीज तैयार करना—अच्छे पके हुए फलों के बीज निकालकर उन्हें जल से धो डालना चाहिए ताकि चिकना पदार्थ धुल जाय। फिर राख के साथ मिलाकर धूप में सुखा करके किसी बंद बर्तन में रख सकते हैं। जब बहुत अधिक बीज निकालना हो तो अच्छे पके हुए लाल फलों को तोड़कर एक लकड़ी के पीपे में या किसी बर्तन या हौज में डाल देना चाहिए। दो-तीन दिन में गूदा सड़ने लग जाता है और बीज नीचे बैठ जाते हैं। जब इस स्थिति पर पहुंच जायं तो ऐसी चलनीमें छानना चाहिए जिसमें छिलके ऊपर रह जायं और बीज और रस नीचे गिर जायं। बाद में पानी देकर धोना चाहिए। बीज नीचे बैठ जाते हैं और चिकना पदार्थ धुलकर पानी के साथ बहा दिया जा सकता है। फिर बीज को सुखाकर बंद बर्तन में रखना चाहिए। बीज-विक्रेता इन्हें व्याधि-रहित करने के लिए पारे के नमक (Mercuric chloride) के घोल में सात-आठ मिनट तक डुबोकर खूब अच्छी तरह से धोकर सुखा करके रखते हैं। पारे के नमक का उपयोग सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि यह बहुत तेज विष होता है।

उपयोग और गुण—इसके फल बिना पकाये भी खाये जाते हैं जो अधिक गुणकारी होते हैं। इनके द्वारा खाद्योज 'सी' की पूर्ति अच्छी होती है। वैसे 'ए' और 'बी' खाद्योज भी इनमें होते हैं। जिन्हें संतरे या नींबू न मिल सकें उनके लिए इनका सेवन अच्छा होता है। यदि पके हुए कच्चे खाये

जायं तो और भी अच्छा होता है। इंडियन एग्रिकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट ने कुछ जातियां ऐसी निकाली हैं जिनके फल बेर के आकार के बड़े स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। तरकारी भी इनकी अच्छी और लाभदायक होती है। पके हुए फलों से मुरब्बा, अचार, चटनी आदि बनाए जाते हैं। इन्हें सुखाकर भी रख सकते हैं। टमाटर को साफ धोकर पतले-पतले काटकर सुखा सकते हैं। इन्हें छिलकारहित करके भी सुखा सकते हैं। उबलते हुए पानी में एक मिनट के लिए डालकर तुरंत ठंडे पानी में डाल देने से गूदे से छिलका अलग हो जाता है और फल आसानी से छीले जा सकते हैं। छीले हुए टमाटर के टुकड़े काटकर सुखा सकते हैं। कलईदार या बांस की चलनी से यदि गूदा छान लिया जाय तो बीज भी अलग हो जाता है। छाना हुआ गूदा सुखाया जा सकता है। इससे टमाटर की चटनी वगैरा भी बनाते हैं। कृत्रिम गर्मी में सुखाए जायं तो उसका ताप-परिमाण ६५ शतांश से अधिक नहीं होना चाहिए। टमाटर दस्तावर, वीर्यवर्धक और अग्निदीपक होते हैं। बेरीबेरी, स्कर्वी तथा रिकेट्स आदि व्याधियों में इनका सेवन अच्छा होता है। नेत्रों को भी इसके सेवन से लाभ पहुंचता है।

बैंगन Brinjal *Solanum melongena*

इसके पौधे दो-ढाई फुट ऊंचे होते हैं। फल के आकारानुसार यह दो जाति का होता है। एक के फल गोल होते हैं और दूसरे के लंबे। फलों का रंग बैंगनी, हरा या सफेद होता है।

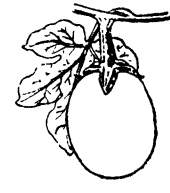

बैंगन

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद दो सौ मन प्रति एकड़ के करीब देना ठीक होता है। राख भी इसके लिए लाभदायक होती है। गोबर का खाद जुताई के समय डाल देना चाहिए। राख बाद में भी डाली जा सकती है।

बोना—इसके बीज पहले नर्सरी में बोये जाते हैं। एक एकड़ के लिए चार-पांच छटांक बीज काफी होते हैं। इन बीजों को पांच फुट चौड़ी और बारह फुट लंबी ऐसी दो नर्सरियों में बोना चाहिए। बीज साल भर में तीन बार बोए जाते हैं। कहीं-कहीं एक ही बार बोने से बारह महीने फसल आती रहती है। बरसात के प्रारंभ में जो बीज गिराए जाते हैं उनके पौधे जब दो इंच ऊंचे हो जाते हैं तो उन्हें दो-दो फुट के अंतर पर लगा देते हैं। दूसरी फसल के बीज कार्तिक (अक्तूबर) में नर्सरी में डाल कर पांच-छः सप्ताह बाद पौधे खेतों में लगाए जाते हैं। इस फसल को सींचना पड़ता है, इसलिए पंक्तियां ढाई-ढाई फुट की दूरी पर होनी चाहिए और दो-दो पंक्तियों के बीच की भूमि में नाली बनाकर पानी देना चाहिए। पंक्तियों में पौधे-से-पौधे का अंतर डेढ़ फुट कर देना ठीक होता है। इस फसल के लिए गोल जाति के बैंगन अच्छे होते हैं। गर्मी में ये अच्छे फलते हैं। कहीं-कहीं फाल्गुन (मार्च) में भी बीज नर्सरी में डाले जाते हैं और चार-पांच सप्ताह बाद पौधे खेतों में लगा देते हैं। उन्हें नालियों में लगाना चाहिए और जब बरसात शुरू हो जाय तो पौधों पर मिट्टी चढ़ा देना चाहिए। ऐसा करने से दो पंक्तियों के बीच में नालियां बन जायंगी जिनके द्वारा बरसाती पानी बह जायगा और पौधे स्वस्थ बने रहेंगे।

निराई और सिंचाई—आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—श्रावण में जो फसल लगाई जाती है उससे आश्विन से पौष तक, दूसरी फसल से माघ-फाल्गुन से वैशाख तक और फाल्गुनवाली से बरसात में तरकारी प्राप्त की जा सकती है। कहीं-कहीं आषाढ़वाली फसल ही बारह महीने तक फल देती रहती है। पैदावार डेढ़ सौ मन तक हो जाती है। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो अच्छे बड़े पके हुए बैंगन के बीज सुखा करके राख में मिलाकर या वैसे ही बंद बर्तन में रक्खे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—फलों की तरकारी बनाई जाती है। सुखाना हो तो वैसे ही पतले-पतले काटकर सुखा सकते हैं या उबलते हुए पानी में

दो शतांश नमक पड़ा हुआ हो तो दो मिनट के लिए उबालकर सुखा सकते हैं। कृत्रिम गर्मी काम में लाई जाय तो उसका ताप-परिमाण ६५ शतांश से अधिक नहीं होना चाहिए। ये मूत्र, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक और कफ-नाशक होते हैं। छोटे, सफेद अण्डाकृतिवाले बैंगन बवासीर में हितकारी माने गये हैं।

भिंडी, रामतरोई Ladies' fingers *Abelmoschus Hibiscus esculentus*

यह दो प्रकार की होती है। एक बरसात में बोई जाती है और दूसरी जाड़े में। बरसातवाली का पौधा चार-पांच फुट और दूसरी का डेढ़-दो फुट ऊंचा होता है। फूल पीले रंग के होते हैं। फल चार-पांच इंच लंबे और साफ होते हैं। किसी-किसी जाति के फलों पर महीन रोंएदार कांटे भी होते हैं। जब फल पक जाते हैं तो सूखकर फट जाते हैं और जब वे उखाड़ जाते हैं तो बीज बिखर जाते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में हो जाती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ तक दे सकते हैं। माघ में बोई जानेवाली के लिए क्यारियां या चौड़ी नालियां बना लेनी चाहिए।

बोना—माघ से आषाढ़ (जनवरी से जून) तक कभी भी इसे बो सकते हैं, परंतु बहुधा आषाढ़ (जून) और माघ (जनवरी) में ही बोई जाती है। माघ में बोई जानेवाली फसल को पानी की नालियों के दोनों ओर कुछ जमीन छोड़कर बीच की भूमि में दो पंक्तियां लगानी चाहिए। पंक्तियों में बोई जानेवाली के बीज एक-एक फुट के अंतर पर बोना चाहिए। आषाढ़वाली फसल को समतल खेत में ढाई-ढाई फुट की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए। भिंडी के पौधे स्थानांतर भी किये जा सकते हैं। इसलिए नर्सरी में बोकर भी खेतों में लगा सकते हैं। एक फुट के

लिए चार-पांच सेर बीज की आवश्यकता होती है। बरसात में बोई जाने-वाली के लिए तीन सेर काफी होंगे।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय बरसातवाली फसल के पौधों को छांटकर उनमें दो-दो फुट का और माघवाली में एक-एक फुट का अंतर कर देना चाहिए। सिंचाई माघवाली फसल के लिए करनी होती है।

फसल की तैयारी—बोने के डेढ़-दो महीने बाद फल आने आरंभ हो जाते हैं। आषाढ़वाली फसल से भाद्रपद से कार्तिक तक और माघवाली से फाल्गुन से ज्येष्ठ तक फल प्राप्त किए जा सकते हैं। भिंडी की खेती में तैयार फलों को तोड़ने की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि तैयार हो जाने पर यदि दो-तीन दिन के लिए छोड़ दिए जायं तो उनकी कोमलता और स्वाद दोनों नष्ट हो जाते हैं। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो पौधों पर ही फलों को पकने देकर तोड़ना चाहिए। ये फटने न पायं इससे पहले तोड़कर सुखा करके फल रखना अच्छा है। बीज ही रखना हो तो उन्हें बंद बर्तन में रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—फलों की तरकारी बनाई जाती है। गोल टुकड़े काटकर इन्हें सुखाकर भी रख सकते हैं। सूखने पर भी उनका स्वाद अच्छा बना रहता है। भिंडी भारी, चिकनी, कफकारक और बलवर्धक होती है।

मिर्च, मिर्चाई Chillies *Capsicum frutescens (annum)*

मिर्चें कई जाति की होती हैं। छोटी मिर्चें बड़ी तीक्ष्ण होती हैं। कुछ मिर्चें ऐसी भी होती हैं जिनमें तीक्ष्णता बिल्कुल नहीं रहती। ऐसी मिर्चों की तरकारी बनाई जाती है। ये तीन इंच से लगाकर छः-सात इंच लंबी और एक इंच से लगाकर दो-तीन इंच मोटी होती हैं। कुछ मिर्चें आकार में गोल भी होती हैं। उपज तथा तेजी के विचार से निम्नलिखित मिर्चें

मिर्च, मिर्चाई

उत्तम होंगी। ये पतलीं लाल मिर्चें हैं। एन० पी० ३४, ४१ और ४६ ए। पहली जल्दी आती है, लेकिन फल छोटा और अपेक्षाकृत उपज कम होती है। दूसरी देरी से आनेवाली और तीसरी दूसरी जैसी परंतु सुखाने पर इसका लाल रंग कुछ कम हो जाता है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ के करीब देना ठीक होता है।

बोना—श्रावण (जुलाई) में बीज नर्सरी में डाले जाते हैं और भाद्रपद में पौधे खेतों में डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर लगाये जाते हैं। कहीं-कहीं वैशाख से आषाढ़ (अप्रैल से जून) तक बीज गिराकर एक महीने बाद पौधे खतों में लगाए जाते हैं। एक एकड़ के लिए आधा सेर से तीन पाव के लगभग बीज गिराना चाहिए। बीज चार-पांच रोज में अंकुर फेंक देते हैं। बड़ी तरकारीवाली मिर्च के बीज भाद्रपद में नर्सरी में गिराकर आश्विन-कार्तिक में खेतों में रोपना चाहिए। जहां पानी देने की आवश्यकता हो वहां क्यारियों में लगाना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—आवश्यकतानुसार निंदाई और सिंचाई होनी चाहिए। जब फूल आने लगें तब पानी कुछ कम देना चाहिए नहीं तो फूल झड़ जाते हैं। फलों के बन जाने पर फिर पूरा पानी देना चाहिए।

फसल की तैयारी—हरी, तरकारीवाली मिर्च माघ-फाल्गुन में तैयार हो जाती है। दूसरी मिर्च उस वक्त तक पक जाती है। ज्यों-ज्यों फल पकते जायं उन्हें तोड़ते जाना चाहिए। जब तीन बार फल तोड़ लिए जाते हैं तो कुछ लोग पौधों को उखाड़कर फेंक देते हैं और कुछ लोग रहने देते हैं। इनमें फिर मिर्चें आ जाती हैं। चैत्र के अंत तक यह फसल भी तोड़ ली जाती है। मिर्च की पैदावार दस-बारह मन प्रति एकड़ हो जाती है। वैसे कहीं तीस मन तक पहुंच जाती है तो दूसरी ओर तीन मन पर ही ठहर जाती है। मिर्चें जब सुखाई जायं तो उन्हें दबा देना चाहिए ताकि बोरों में अधिक भरी जा सकें और बीज बिखरने न पायें।

उपयोग और गुण—बड़ी, हरी मिर्च तरकारी के काम में आती है। छोटी मिर्च की भी तरकारी बनाई जाती है और अचार भी बनाते हैं। सूखी मिर्चें मसाले के काम में लाई जाती हैं, जिनसे तरकारियां स्वादिष्ट होती हैं। मिर्च क्षुधावर्धक, उत्तेजक और कफनाशक होती है। नेत्रों को इससे हानि पहुंचती है। रक्त-विकार और दाह इससे बढ़ते हैं।

मोगरी Mogri *Raphanus sativus Var. Candatus*

इसका पौधा तीन-चार फुट ऊंचा होता है। फूल सफेद होते हैं। फलियां बैंगनी रंग की एक फुट से ढाई फुट लम्बी, सिर की ओर आधे इंच से कुछ ही कम मोटी और दूसरी ओर नोकीली होती हैं। कच्ची खाई जाय तो स्वाद में यह हल्की चरपरी और अच्छी स्वादिष्ट होती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। इसे फा० पे० के खाद से भी अच्छा लाभ पहुंचता है, इसलिए सौ-सवा सौ मन गोबर के खाद के साथ में दो-ढाई मन प्रति एकड़ सुपरफासफेट भी डालना चाहिए।

बोना—इसे आश्विन-कार्तिक में पंक्तियों में बोना चाहिए। पंक्तियों में डेढ़-दो फुट का अन्तर रखना ठीक होता है। एक एकड़ के लिए दो सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निराई और सिंचाई—जब पौधे तीन-चार इंच ऊंचे हो जाएं तो निराई के समय छांटकर उन्हें एक-एक फुट की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से तीन-चार महीने में फल आने लग जाते हैं। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो फलियों को अच्छी तरह पकने देकर तोड़ना चाहिए। जब खूब सूख जाएं तो बीज निकालकर बन्द बर्तन में रखे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—फलियों की तरकारी बनाई जाती है। इन्हें कच्ची भी खाते हैं। सलाद भी इनकी अच्छी बनती है। यह पाचक और दस्तावर होती है।

कद्दू, कदीमा, काशीफल, कुम्हड़ा, Pumpkin

Cucurbita moschata

इसकी बेल बहुत लंबी होती है। पत्ते और डंडी बालदार और खुर-दरे होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं। नर-फूल पहले और मादा-फूल कुछ दिनों के बाद खिलते हैं। फल बहुत बड़े और भांति-भांति के रंग के होते हैं। इनका रंग पकने पर पीला या हरी-पीली जालीदार हो जाता है। गूदा पके हुए फल का नारंगी रंग का और कच्चे का सफेद या पीले रंग का होता है। वजन में कोई-कोई फल दस-बारह सेर तक होते हैं।

काशीफल

जमीन, जुताई और खाद—देहातों में घरों के आस-पास बीज बो दिये जाते हैं। बेल छप्परों पर चढ़ा दी जाती है जिसमें फल लग जाते हैं। मक्का के खेत में भी इसका बीज डाल दिया जाता है। तरकारी के व्यवसायी इसकी अकेली फसल भी लगा सकते हैं। यह सब प्रकार की उपजाऊ मिट्टी में हो जाता है, परन्तु दुमट मिट्टी अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी और खाद सौ सवा-सौ मन के करीब डालना चाहिए।

बोना—साधारणतः इसे आषाढ़ (जून) में बोते हैं, परन्तु जल्दी फल प्राप्त करने के लिए फाल्गुन-चैत्र में भी बो देते हैं। खेत में छः-छः फुट की दूरी पर पौधे होने चाहिए। फाल्गुन में जो बीज बीए जायं उनके लिए पंक्तियों में छः फुट का और पौधों में तीन-तीन फुट का अंतर ठीक होता है। पंक्तियों के बीच की भूमि में नाली बनाकर सिंचाई करनी चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब दो सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निदाई और सिंचाई—निदाई के समय पौधों की छंटनी होनी चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार की जा सकती है।

फसल की तैयारी—फाल्गुन-चैत्रवाली फसल के कद्दू बरसात में और बरसात में बोई जानेवाली के फल आश्विन तक तैयार हो जाते हैं। जैसे-

जैसे फल पीले पड़ते जायं उन्हें तोड़ सकते हैं। आवश्यकता न हो तो लता सूख जाय तबतक उन्हें लता के साथ ही रखना ठीक होता है। कद्दू के फल साल भर तक रखे जा सकते हैं। जहां चूहों की पहुंच न हो ऐसे मचानों पर रखना चाहिए, नहीं तो वे काटकर बिगाड़ देते हैं। दूसरी फसल के लिए अच्छे कद्दू के बीज राख में मिलाकर रख सकते हैं। नेपथलीन के साथ भी रखे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—कोमल डंडियां, फूल और फल तीनों की तरकारी बनाई जाती है। बीज छीलकर कच्चे या तलकर खाये जाते हैं। कद्दू की तरकारी मीठी, रुचिकारक, कफवर्धक और कब्जकारक होती है। बीज पाचक और दस्तावर होते हैं।

विलायती कद्दू Vegetable Marrow *Cucurbita pepo*

यह भी एक प्रकार का कद्दू ही होता है। इसके फूल सफेद होते हैं। कद्दू की भांति यह अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकता। यदि रखा जाय तो गूदा सूखकर छिलके के साथ चिपक जाता है। सिर्फ बीज-ही-बीज अन्दर रह जाते हैं। इसकी तरकारी, जब यह ताजा हो, तब ही बनानी चाहिए।

इसकी खेती कद्दू की खेती के समान की जा सकती है।

स्क्वाश Squash *Cucurbita melopepo*

इसकी एक जाति का फल नासपाती के आकार का होता है और बड़े पपीते जितना बड़ा होता है। कुछ ऐसी भी जातियां हैं जिनके फल सफेद और चपटे छोटे कद्दू जैसे होते हैं। कुछ छोटी ककड़ी जैसे, परन्तु पीले रंग के होते हैं। इसकी दो मुख्य जातियां हैं। एक गर्मी में फलती है और दूसरी सर्दी में। दोनों मैदानों में नहीं होतीं पहाड़ों पर होती हैं।

स्क्वाश

जमीन, जुताई और खाद—सौ-डेढ़ सौ मन खाद और साधारण जुताई से यह बलुआ-दुमट जमीन में पैदा किया जा सकता है।

बोना—ज्येष्ठ-आषाढ़ (मई-जून) में सर्दीवाले स्क्वाश के और माघ-फाल्गुन में गर्मी में होनेवाले स्क्वाश के बीज छः-छः फुट की दूरी पर बोना चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब दो सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय फलों को जमीन पर न रहने देकर ईंट-पत्थर आदि के टुकड़ों पर रख देना चाहिए, ताकि वे सड़ने न पायें। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से चार-पांच महीने में फसल तैयार हो जाती है।

उपयोग—फलों की तरकारी बनाई जाती है।

भूरा कद्दू, शिष्कुम्हड़ा, पेठा White gourd

Benincasa hispida

यह भी एक जाति का कद्दू होता है, जिसकी डंडी और पत्ते बहुत मुलायम होते हैं। फूल सफेद होते हैं और फलों पर भूरा-भूरा मोम-सा पदार्थ रहता है जो ऐसा मालूम होता है मानों फलों पर राख छिटक दी हो। इसे लोग देहातों में घरों के आस-पास लगा देते हैं। लताएं मचान या छप्परों पर चढ़ा दी जाती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी और खाद डेढ़ सौ मन के लगभग डालना चाहिए।

बोना—आषाढ़ (जून) मास में घरों के आस-पास की मिट्टी गोड़कर बीज बो देते हैं और लताओं को मचान या छप्परों पर चढ़ा देते हैं। जब खेतों में लगाया जाय तो दो-दो बीज पांच-पांच फुट के अंतर पर गिराना चाहिए। जब पौधे जम जायं तो सबल को रखकर निर्बल को निकाल देना चाहिए। एक एकड़ के लिए एक सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और जहां आवश्यकता हो

वहां सिंचाई होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—पौष-माघ तक फल तैयार हो जाते हैं।

उपयोग और गुण—इसके फल का मुख्य उपयोग एक प्रकार की मिठाई के लिए किया जाता है जिसको पेठा कहते हैं। इसके फलों की तरकारी भी बनाई जा सकती है। यह कद्दू ठंडा, वीर्यवर्धक, खूनको साफ करनेवाला और बलदायक होता है। मृगी, पागलपन आदि रोगों पर इसका सेवन अच्छा होता है। ताजे रस के सेवन से आंतरिक अंगों से यदि रक्त बहता हो तो वह बंद हो जाता है। क्षय-रोग, अर्श, आदि शक्ति नाशक व्याधियों में पेठे का सेवन लाभदायक होता है।

लौकी, आल, कदुआ, सजवन Bottle gourd

Lagenaria vulgaris

इसकी लता भूरे कद्दू की लता-जैसी होती है। फूल सफेद और फल अंगूरी रंग के होते हैं जिनकी लंबाई डेढ़-दो फुट और मोटाई तीन-चार इंच की होती है। कहीं-कहीं फल तीन-चार फुट लंबे भी होते हैं। लौकी दो जाति की होती है। एक गर्मी में फलनेवाली और दूसरी सर्दी के दिनों में फल देनेवाली। इसकी एक जाति और भी होती है, जिसका फल तुंबे के आकार का होता है।

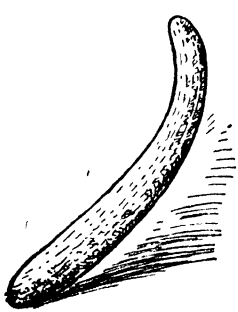

लौकी

जमीन, जुताई और खाद—दुमट या बलुआ-दुमट जमीन में साधारण जुताई से यह पैदा की जा सकती है। खाद डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना ठीक होता है। गर्मीवाली फसल के लिए चार-चार फुट के अंतर पर दो-दो फुट चौड़ी नालियां बना लेनी चाहिएं।

बोना—ज्येष्ठ से श्रावण (मई से जुलाई) तक इसके बीज खेती में बोये जाते हैं; परंतु बहुधा आषाढ़ में ही बोते हैं। बीज छः फुट के अंतर पर

बोना चाहिए और इसमें भी प्रत्येक स्थान पर दो-दो बीज डालना चाहिए ताकि सबल पौधे रखकर निर्बल नष्ट कर दिये जायं। गर्मी में होनेवाली फसल के बीज ऊपर बतलाई हुई रीति से बनाई हुई पानी की नालियों में तीन-तीन फुट की दूरी पर माघ (जनवरी) में लगाना चाहिए। बरसात में लगाई जानेवाली के लिए आधा सेर और माघवाली के लिए एक सेर बीज काफी होंगे। देहातों में इसे घरों के आस-पास आषाढ़ महीने में लगाकर लताओं को छप्परों पर चढ़ा देते हैं ,जहांपर वे अच्छी फैल जाती हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय मचान बनवाकर लताओं को उनपर चढ़ाना चाहिए ताकि वे अच्छी फलें। माघ में बोई जानेवाली फसल के लिए खेतों में सूखी टहनियां ही डालने से काम चल जाता है। लताओं को नालियों के बीच की भूमि पर चढ़ाते रहना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—आषाढ़ में बोये जानेवाले बीज की लताएं कार्तिक से माघ तक और माघवाली वैशाख से आषाढ़ तक फल देती हैं।

उपयोग और गुण—फलों से तरकारी, रायता आदि बनाते हैं। इसकी खीर भी अच्छी बनती है। साबूदाने के अभाव में इसकी खीर काम में लाई जा सकती है। लौकी ठंडी, शीघ्र पचनेवाली, दस्तावर और बलदायक होती है। निर्बल व्याधि-ग्रस्त लोगों के लिए यह उत्तम होती है।

चिचड़ा, Snake gourd *Trichosanthes anguina*

इसकी बेल और पत्ते लौकी की बेल और पत्तों से छोटे होते हैं। फल तीन-चार फुट लंबे और इंच-डेढ़इंच मोटे होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। एक के फल सफेद और दूसरे के हरे होते हैं। हरे फलों में सफेद धारियां भी होती हैं। फूल लौकी के फूल-जैसे सफेद होते हैं।

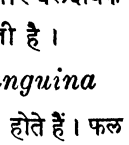

चिचड़ा

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन, सवा सौ मन खाद और जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए।

बोना—वैशाख से श्रावण (अप्रैल से जुलाई) तक इसे बो सकते हैं परंतु बहुधा आषाढ़ में ही बोया जाता है। पंक्ति-से-पंक्ति छः फुट और पंक्तियों में पौधों का अंतर दो-दो फुट का होना चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब दो सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय लताओं को मचान पर चढ़ाने का प्रबंध करना चाहिए। फल ज्योंही मचानों पर से नीचे लटकने लगें कि उनकी नोक पर वजनदार ढेला या पत्थर बांध देना चाहिए ताकि फल लंबे पतले और सीधे बने रहें। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—वैशाखवाली फसल से श्रावण-भाद्रपद में और आषाढ़वाली से आश्विन-कार्तिक में फल मिलते हैं। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो फल ही सुखाकर रख लेने चाहिए।

उपयोग और गुण—फलों की तरकारी बनाई जाती है जो रुचिकर और बलदायक होती है।

तरोई, झिंगुनी Sponge gourd *Luffa acutangula*

इसकी लता चिचड़े की लता से कुछ बड़ी होती है और फूल पीले होते हैं। इसकी कई जातियां हैं। एक को झुमकी या सतपुतिया तरोई कहते हैं। जहांपर ये फलती हैं वहां पांच-सात एक साथ रहती हैं। प्रत्येक एक-दो इंच लंबी होती है। इनके छिलकों पर धारियां होती हैं परंतु इतनी उठी हुई नहीं होतीं जितनी बड़ी तरोई पर होती हैं। दूसरी जाति की वे तरोई हैं जो एक-एक फुट के करीब लंबी होती हैं। एक जाति ऐसी भी होती है जिसके फल तीन-चार फुट लंबे होते हैं। इसे गजी तरोई कहते हैं। ये करीब दो इंच मोटी होती है।

जमीन, जुताई और खाद—वैसे तो यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है परंतु दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। जुताई साधारणतः पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए और खाद सवा सौ मन प्रति एकड़ के

हिसाब से देना ठीक होता है। जिस जाति से गर्मी में फल प्राप्त किये जाते हैं उसके लिए दो-दो फुट चौड़ी, ढाई फुट से तीन फुटके अन्तर पर पानी की नालियां बना लेनी चाहिए।

बोना—पानी का अच्छा प्रबन्ध होने से चैत्र से ज्येष्ठ तक और नहीं तो आषाढ़-श्रावण (जून-जुलाई) में बोना चाहिए। जिससे गर्मी में फल प्राप्त होते हैं उसे माघ (जनवरी) में उपर्युक्त रीति से नालियां बनाकर उनमें लगाना चाहिए। बरसाती फसल की पंक्तियां छः फुट की दूरी पर और ग्रीष्मावाली की चार फुट की दूरी पर होनी चाहिए। पहली में पौधे ढ़ाई फुट के और दूसरी में डेढ़-डेढ़ फुट के अंतर पर होने चाहिए। बरसाती तरोई के लिए करीब दो सेर और दूसरी के लिए तीन सेर बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है। देहातों में तरोई घरों के आस-पास लगा दी जाती है और लताएं घरों या मचानों पर चढ़ा दी जाती हैं। मक्का आदि दूसरी फसलों में भी इसके बीज डाल दिये जाते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों को मचानों पर चढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिए। मचान के अभाव में सूखी टहनियां ही गाड़ देनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु की फसल के लिए उन्हें न गाड़कर इधर-उधर डाल देना ही ठीक होता है। इनपर जो लताएं चढ़ जाती हैं उनमें उत्तम फल आते हैं। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से दो-ढाई महीने में फल आने प्रारंभ हो जाते हैं। पहली फसल में भाद्रपद से कार्तिक तक और माघ-वाली से वैशाख से ज्येष्ठ तक फल मिलते रहते हैं। यदि चैत्र-वैशाख में बोने का का प्रबन्ध हो सके तो ज्येष्ठ-आषाढ़ में भी कुछ फल मिल जाते हैं। बीज सुरक्षित रखने के लिए समूचे फल सुखाकर रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—फलों की तरकारी बनाई जाती है जो शीतल और पित्तनाशक होती है। कफ और बादी को बढ़ाती है।

घिया तरोई, घिवरा Cylindrical shaped sponge gourd *Luffa cylindrica*

यह तरोई-जैसी ही होती है परन्तु छिलका साफ होता है। लताएं दोनों की करीब-करीब एक-सी होती हैं। फूल इसके कुछ बड़े-बड़े होते हैं। फल हरे अंगूरी रंग के करीब एक फुट लंबे होते हैं।

इसकी खेती की रीति तरोई की खेती की रीति के समान ही है। इसे भी आषाढ़ (जून) और माघ (जनवरी) में उसी रीति से उतनी ही दूरी पर बोना चाहिए। इसकी फसल तरोई की फसल से दो-एक सप्ताह बाद तैयार होती है। इसके बीज भी उसी भांति सुरक्षित रखे जा सकते हैं। तरोई की अपेक्षा इसकी तरकारी कुछ विशेष गुणकारी होती है।

करेला Bitter gourd *Momordica charantia*

इसकी लता छोटी कटे हुए पत्तों की होती है। फूल पीले होते हैं। करेले की दो जातियां है—एक जाति बरसात और जाड़ों में और दूसरी गर्मी में फलती है। फल दो इंच से छः इंच तक लंबे होते हैं। बरसाती करेला पतला और लंबा होता है। ग्रीष्म ऋतुवाला लंबाई में छोटा लेकिन मोटा होता है। करेले बहुधा हरे रंग के होते हैं। इनमें एक जाति ऐसी भी होती है, जिसके फल सफेद होते हैं। पकने पर दोनों के फलों का रंग नारंगी या लाल हो जाता है।

करेला

जमीन, जुताई और खाद—साधारण जुताई और लगभग डेढ़सौ मन खाद से यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। गर्मी में फल देने-वाली फसल के लिए तीन-तीन फुट की दूरी पर डेढ़-दो फुट चौड़ी नालियां बनवा लेनी चाहिए।

बोना—इसके बोने का समय चैत्र से श्रावण तक है, परन्तु बहुधा आषाढ़ (जून) में ही बोते हैं। प्रत्येक पंक्ति में दो-दो फुट की दूरी पर बीज बोना चाहिए और पंक्तियों में पांच-पांच फुट का अंतर रखना चाहिए।

माघ (जनवरी) में बोए जानेवाले बीज उपर्युक्त रीति से तैयार की हुई नालियों में बोना चाहिए। प्रति एकड़ करीब तीन सेर बीज बोने पड़ते हैं।

निंदाई और सिंचाई - निंदाई के समय पौधों की लताओं के सहारे का प्रबन्ध करना चाहिए। बरसाती फसल के लिए चार फुट ऊंचा मचान बनवाना अच्छा होता है। माघवाली के लिए यदि सूखी टहनियां ही खेतों में डाल दी जायं तो उनसे भी काम चल जाता है। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—आषाढ़ में बोई जानेवाली फसल से भाद्रपद से कार्तिक तक और माघवाली से चैत्र से आधे आषाढ़ तक फल मिलते रहते हैं। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो पके हुए फलों के बीज धोकर सुखा करके वैसे ही या राख के साथ बन्द बर्तन में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—इसके फलों की तरकारी बनाई जाती है जो शीतल, कड़वी और दस्तावर होती है। पीलिया, रक्त-विकार आदि में इसका सेवन अच्छा होता है। यह बलदायक, कीट-नाशक और पेट के दर्द को दूर करने वाली होती है।

उच्चे Ucche *Momordica muricata*

यह भी एक अन्य जाति का करेला होता है जिसके फल बहुत छोटे-छोटे होते हैं। इसे माघ-फाल्गुन में लगाकर गर्मी और बरसात में फल प्राप्त करते हैं। इसकी खेती करेले की खेती के समान ही होती है।

कुंदरू Kundru *Trichosenthes diseca*

इसके फल इंच डेढ़ इंच लंबे और करीब आधा इंच मोटे होते हैं। इसकी लता घरों पर या छोटे दरख्तों पर चढ़ा दी जाती है। फूल इसके सफेद होते हैं। कुंदरू की दो जातियां हैं। एक जंगली जिसके फल कड़वे होते हैं और दूसरी वह जिसके फल कड़वे नहीं होते और जिसकी तरकारी बनाई जाती है। कच्चे फल हरे सफेद धब्बेवाले होते हैं और पकने पर

लाल रंग के हो जाते हैं।

इसे खेतों में नही लगाते हैं। बगीचों में एक तरफ लगाकर लता किसी पेड़ पर या घेरे पर चढ़ा दी जाती है। एक बार लगा देने से यदि सावधानी से रखी जाय तो बरसों तक फल देती रहती है। इसके लगाने की यह रीति है कि बरसात में इसकी गांठ लगाई जाती है। पुराने पौधों की जड़ के निकट ऐसी गांठें निकल आती हैं। वहीं से काटकर लगा देनी चाहिए। इसे बीज से भी पैदा कर सकते हैं।

इसकी लता बरसात में अधिक फलती है, परन्तु यदि पानी मिलता रहे तो हमेशा फल देती रहती है।

उपयोग और गुण—इसकी तरकारी शीतल, दस्तावर, अधिक पेशाब लानेवाली और कफनाशक होती है।

चथैल, किंकोडा Chathail *Momordica cochinchinensis*

इसके फल हरे रंग के गोल और कांटेदार होते हैं। कहीं-कहीं लंबी जातिवाला भी होता है, जिसकी लंबाई दो-तीन इंच की होती है।

इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। कुंदरू की भांति एक बार लगा देने से यह भी कई साल तक फलता रहता है। इसे भी बगीचों में एकांत स्थान ही देना चाहिए। बरसात के आरम्भ में इसे लगाते हैं। यह बीज से भी पैदा किया जा सकता है परन्तु बहुधा पौधों के निकट की गांठ ही लगाई जाती है। लता बरसात में फलती है और जाड़े में सूख जाती है। दूसरी बरसात में उसी गांठ से फिर नई लताएं निकल आती हैं।

उपयोग और गुण—फलों के कांटे हटाकर उनकी तरकारी बनाई जाती है जो अग्निदीपक होती है और बुखार तथा खांसी का नाश करती है। इसके बीज भूजकर भी खाये जाते हैं। इसकी जड़ से बाल बढ़ते हैं और उनका गिरना बन्द हो जाता है।

फूट Cucumber *Cucumis melo Var. momordica*

इसके फल का आकार खरबूजे के आकार-जैसा होता है। पका हुआ फल पीला या सफेद रंग का होता है। अच्छा पक जाने पर आप-ही-आप फट जाता है। इसकी बेल ककड़ी की बेल-जैसी होती है।

जमीन, जुताई और खाद—सिर्फ इसीकी खेती कम की जाती है। मक्का के खेत में कहीं-कहीं बीज गिरा देने से बेल निकलकर फैल जाती है। मकानों के आस-पास बाड़ों में भी इसे लगा देते हैं। इसके लिए बलुआ और बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है।

बोना—बरसात के प्रारम्भ में आषाढ़ (जून) महीने में इसके बीज बोये जाते हैं। यदि सिर्फ इसे ही लगाना हो तो पौधों में छः-छः फुट का अन्तर रहे इस अंदाज से बीज लगाना चाहिए। इसे माघ में भी बो सकते हैं। एक एकड़ के लिए सात-आठ छटांक बीज काफी होते हैं।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय फलों को देखते रहना चाहिए। ताकि वे सड़ने न पावें। सिंचाई माघवाली फसल के लिए करनी चाहिए

फसल की तैयारी—कच्चे फल भाद्रपद में और पके हुए आश्विन-कार्तिक में प्राप्त होते हैं। दूसरी फसल के लिए बीज रखना हो तो अच्छे पके हुए मीठे फलों के बीज धोकर सुखा करके रखना चाहिए। सूखी राख या नेफ्थलीन के साथ इन्हें रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—कच्चे फल से सलाद बनाई जा सकती है। पके हुए फल चीनी के साथ खाये जाते हैं।

ककड़ी या खीरा Cucumber *Cucumis sativus*

इसके फल छः इंच से डेढ़ फुट लम्बे और एक इंच से तीन-चार इंच मोटे होते हैं। इसकी बेल दस-बारह फुट लम्बी होती है और फूल छोटे-छोटे पीले रंग के होते हैं। मध्यभारत में रतलाम और सैलाने के निकट-वर्ती ग्रामों में ककड़ियां अच्छी होती हैं। वहां से बम्बई तक इनका चालान होता है, जो चारसौ मील से कुछ अधिक दूरी पर है। ये ककड़ियां एक

फुट से डेढ़ फुट लंबी और सिर की तरफ कुछ मोटी होती हैं। काटने पर अन्दर से हरी निकलती हैं और बड़ी स्वादिष्ट होती हैं। ऊपर का छिलका अधिकांश का सफेद रंग का होता है। कुछ ककड़ियां हरी और पीली भी होती है। पकने पर सब पीली हो जाती हैं।

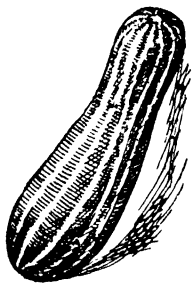

खीरा

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद डेढ़सौ मन के लगभग डालना ठीक होता है।

बोना—इनके बोने का समय चैत्र से आषाढ़ तक है; परन्तु बहुधा आषाढ़ (जून) में ही बोते हैं। मध्यभारत में बहुधा मक्का के खेतों में ही लगा देते हैं। जब सिर्फ इसे ही लगाना हो तो पंक्तियों में लगाना चाहिए जो एक-दूसरे से छः फुट के अन्तर पर रहें। पौधों में चार-चार फुट का अन्तर ठीक होता है। प्रत्येक स्थान पर दो-दो बीज बोना चाहिए ताकि निर्बल पौधे उखाड़कर सबल ही रखे जायं। एक एकड़ के लिए आठ दस छटांक बीज की आवश्यकता होती है। इसकी एक जाति ऐसी भी होती है, जिसके बीज माघ में बोये जाते हैं। इन्हें नालियों में एक-एक फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। नालियां इस अन्दाज से बनानी चाहिएं कि जिससे पंक्तियां चार-चार फुट की दूरी पर रहें।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय लताएं भूमि से कुछ ऊपर रहें, इसलिए कुछ सूखी टहनियां इधर-उधर खेतों में डालकर रखनी चाहिए अगर चार-पांच फुट ऊंचा मचान बनाया जा सके तो और भी अच्छा होगा। यदि कुछ भी प्रबन्ध न हो तो कभी-कभी फलों को उठाकर देख लेना चाहिए ताकि वे सड़ने न पावें या कीट उन्हें हानि न पहुंचावें। आषाढ़ में लगाई जानेवाली फसल सींची नहीं जाती, परन्तु यदि इससे पहले लगाई जाय तो नालियों में लगाकर सींचना चाहिए और जब

बरसात प्रारम्भ हो जाय तो उन नालियों को मिट्टी से भर देना चाहिए। माघ में लगाई जानेवाली फसल को आवश्यकतानुसार सींचना चाहिए।

फसल की तैयारी—आषाढ़वाली फसल आश्विन-कार्तिक में और माघवाली वैशाख-ज्येष्ठ में तैयार होती है। जब ककड़ियां छोटी होती हैं तब ही से इनका उपयोग शुरू होता है। जब काफी बड़ी हो जायं और रंग बदलने लगे तब तोड़ लेना चाहिए। बीज नेफ्थलीन की गोलियों के साथ रखे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—छोटी-बड़ी सब ककड़ियों से सलाद बनाई जा सकती है। बिना मसाले के भी लोग इन्हें खाते हैं। इनकी तरकारी भी बनाई जा सकती है। ककड़ियां ठंडी और स्वादिष्ट होती हैं। रक्तपित के विकारों को शांत करती हैं।

गोल खीरा Gherkin *Cucumis anguria*

इन्हें कहीं-कहीं कचरी या काचरी भी कहते हैं। ये बहुधा छोटी, अण्डे के आकार की होती हैं। कच्चा फल हरे रंग का सफेद धारीवाला होता है और पकने पर पीला हो जाता है। इसकी खेती खीरे की खेती के समान ही होनी चाहिए। चूंकि पौधे छोटे होते हैं, पंक्तियों में डेढ़ फुट का और पौधों में एक-एक फुट का अन्तर रखना ठीक होता है। बोने के तीन-चार महीने बाद इसकी फसल तैयार होती है। फल कच्चे भी खाये जाते हैं और उनकी तरकारी भी बनाई जा सकती है।

रेती ककड़ी, रैंता Cucumber
Cucumis melo Var. utilitimus

इसके फल एक फुट से दो फुट लम्बे और डेढ़-दो इंच मोटे होते हैं। इनपर एक से दूसरे सिरे तक पतली और गहरी लकीरें होती हैं। छोटे फलों पर कुछ रुआं भी होता है। कच्चा फल पहले हरा और फिर अंगूरी रंग का होता है। पकने पर यह पीला हो जाता है। लखनऊ की ककड़ियां

जो विख्यात हैं, एक इंच से कुछ मोटी और एक फुट के करीब लम्बी होती हैं।

ककड़ी

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ जमीन होनी चाहिए। यह बहुधा नदी के बीच की बालू पर लगाई जाती है, जो करीब-करीब पानी की सतह के बराबर होती है। साधारण जुताई के बाद तीन-तीन फुट अन्तर पर डेढ़-डेढ़ फुट चौड़ी और आठ-दस इंच गहरी नालियाँ बना ली जाती हैं, जिनमें प्रति एकड़ सवासौ मन के हिसाब से खाद डालकर उसे बालू में अच्छी तरह से मिला देते हैं।

बोना—माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में उपर्युक्त रीति से बनाई हुई नालियों में तीन-तीन फुट की दूरी पर दो-दो बीज लगा दिए जाते हैं। एक एकड़ के लिए करीब एक सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय दो-दो पौधों में से एक-एक सबल को रखकर दूसरे निर्बल को निकाल देना चाहिए। सिंचाई के लिए नालियों में पानी देना चाहिए।

फसल की तैयारी—वैशाख-ज्येष्ठ में इसके फल प्राप्त किए जाते हैं। दूसरी फसल के लिए पकी हुई ककड़ी के बीज रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—हरी ककड़ियां कच्ची ही खाई जाती हैं और इनकी तरकारी भी बनाई जाती है। ये शीतल, हल्की और रुचिकारक होती हैं।

खरबूजा Melon *Cucumis melo*

इसके फल जाति-अनुसार कई रंग और आकार के होते हैं। वजन में फल पाव भर से ढाई सेर तक होते हैं। कच्चे फल हरे और पकने पर अधिकांश पीले रंग के हो जाते हैं। कुछ पर हरी-हरी लकीरें भी रहती हैं। इनका स्वाद इनकी जाति और भूमि पर निर्भर है। भूमि बदलते ही स्वाद

में अंतर पड़ जाता है। परन्तु यदि बीज उसी स्थान से मंगवाये जायं, जहां के खरबूजे अच्छे स्वादिष्ट होते हैं तो स्वाद में विशेष अंतर नहीं पड़ता। भारतवर्ष में लखनऊ के खरबूजे अच्छे माने गये हैं। ये चपटे और छोटे परन्तु स्वाद में मीठे और खुशबूदार होते हैं। इनका वजन पाव भर से आधे सेर के लगभग होता है। बेल छोटी ही होती है और जमीन पर फैली रहती है।

खरबूजा

जमीन, जुताई और खाद—खरबूजे के लिए बलुआ जमीन होनी चाहिए। रेती ककड़ी की भांति ये भी पानी के निकट नदी की बालू पर लगाये जाते हैं। खरबूजे बलुआ-दुमट और दुमट जमीन में भी अच्छी सिंचाई से पैदा किये जाते हैं। साधारण जुताई के पश्चात डेढ़ फुट चौड़ी और आठ-दस इंच गहरी नालियां तीन-तीन फुट के अंतर पर बना ली जाती हैं। उन्हीं नालियों में डेढ़सौ मन के लगभग सड़े हुए गोबर का खाद डालकर उसे बालू में भलिभांति मिला देना चाहिए।

बोना—माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में इनके बीज नालियों में तीन-तीन फुट की दूरी पर बोना चाहिए। प्रति एकड़ करीब सेर-डेढ़ सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय बेलों को पारियों पर चढ़ाते रहना चाहिए। बहुत-से कृषक, जब पौधों में तीन-चार पत्ते आ जाते हैं, तो बढ़ते हुए कोंपल को तोड़ डालते हैं। ऐसा करने से नई शाखाएं निकल आती हैं, जिनमें तीसरे-चौथे पत्ते पर फूल आने लगते हैं। यदि ये बहुत बढ़ जायं और फूल आते न दिखलाई दें तो इनके कोंपल को भी तोड़ देना चाहिए। इनके तोड़ने पर जो शाखाएं निकलती हैं उनमें फूल अवश्य आते हैं। अच्छे फल प्राप्त करना हो तो जिन शाखाओं में एक या दो फल आ जायं तब उनके आगे चार-पांच पत्ते रखकर लता की शेष कोंपल तोड़ देनी चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। जब फल काफी बढ़ जायं तब पानी कुछकम देना चाहिए और और जब पकने लगें उस समय तो इतना ही

देना चाहिए कि जिसमें लता मुर्झाने न पाये। ऐसे अवसर पर विशेष पानी दिया जाय तो फलों का मिठास कम हो जाता है।

फसल की तैयारी—जब फलों का रंग पीला या सफेद हो जाए और उनमें से मीठी सुगंध निकलने लगे तब तोड़ना चाहिए। वैशाख-ज्येष्ठ में फल पक जाते हैं। ज्येष्ठ के अंत तक फसल समाप्त हो जाती है। बीज सुखाकर बन्द बर्तन में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—कच्चे फलों की तरकारी बनाई जाती है। पक्के फल वैसे ही या चीनी के साथ खाये जाते हैं। छीले हुए बीज से मिठाई बनाई जाती है। इन्हे तलकर भी खाते हैं। खरबूजा दस्तावर और बलदायक होता है। छिलकों की चने की दाल के साथ तरकारी बनाई जाय तो अच्छी स्वादिष्ट होती है। बीज बलदायक, ठंडे और अधिक पेशाब लानेवाले होते हैं।

तरबूज, कलिंगड़ा, हिंदवाना Watermelon

Citrullus vulgaris

इसके फलों की मांग गर्मी के दिनों में बहुत होती है। कच्चे फल हरे और पके हुए गहरे हरे या अंगूरी रंग के होते हैं। इसकी बेल खरबूजे की बेल से कुछ बड़ी होती है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के तरबूज बड़े स्वादिष्ट होते हैं। इन फलों का व्यास नौ-दस इंच का होता है। कहीं-कहीं बंगाल की तरफ तरबूज के फल दो-दो फुट लंबे होते हैं। इनका व्यास लगभग एक फुट का होता है।

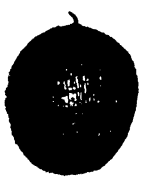

तरबूज

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ मिट्टी अच्छी होती है परन्तु बलुआ-दुमट और दुमट में भी ये हो जाते हैं। मटियार जमीन में ये नहीं हो सकते। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। जुताई के समय डेढ़सौ से दोसौ मन प्रति एकड़ के करीब खाद मिट्टी में मिला देना चाहिए। इसे नदियों में भी खरबूजे के समान

बो सकते हैं। जब नदी में बोया जाय तो खाद नालियों की बालू या मिट्टी में मिलाना चाहिए। इसके लिए खरबूजे की अपेक्षा नालियां कुछ अधिक दूरी पर होनी चाहिएं। चार-पांच फुट का अंतर ठीक होता है।

बोना—एक एकड़ के लिए करीब एक सेर से डेढ़ सेर बीज की आवश्यकता होती है। माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में इसके भी बीज बोये जाते हैं। कहीं-कहीं खरबूजे के साथ ही इसे बो देते हैं। जब अलग बोना हो तो ऊपर बतलाई हुई रीति से तैयार की हुई नालियों में तीन-चार फुट के अंतर पर बीज बोना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों को पारियों पर चढ़ाते रहना चाहिए। सिंचाई पहले अच्छी होनी चाहिए परन्तु जब फलों के पकने का समय आवे तब बेल न मुर्झाये इतना ही पानी देना चाहिए। उस समय विशेष पानी देने से फलों का स्वाद नष्ट हो जाता है।

फसल की तैयारी—माघ-फाल्गुन में बोई गई फसल वैशाख-ज्येष्ठ तक तैयार होती है। तैयार फलों को पहचानने में बड़ी कठिनाई होती है। अन्य फसल के फल उनके रंग, आकार सुगंध या छूने से आसानी से पहचाने जा सकते हैं परन्तु इसके फल जल्दी नहीं पहचाने जाते। इनको पहचानने के लिए कुछ अनुभव होना चाहिए। अनुभवी लोग छिलके की चमक से और फलों को उंगली से ठोंककर उनकी आवाज से पहचान लेते हैं कि फल पका हुआ है या कच्चा। जिन्हें अनुभव न हो उनके लिए सरल पहचान यह है कि जब फल तोड़ा जाय और वह डंडी से जल्दी पृथक् हो जाय तो समझना चाहिए कि फल पक गया है। यदि जल्दी न टूटे और डंठल का चिह्न साफ और गोल न होकर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाय तो फल कच्चा समझना चाहिए। जब दो-चार फल साफ टूटने लगें तब समझना चाहिए कि अब फसल तैयार हुई है। फिर ज्यों-ज्यों फल तैयार-जैसे मालूम होते जायं तोड़ते जाना चाहिए। मौसम के प्रारम्भ में फल धीरे-धीरे पकते हैं परन्तु कुछ समयोपरांत जल्दी-जल्दी पकते हैं। इसलिए प्रारम्भ में दूसरे-तीसरे दिन और बाद में नित्य प्रति उन्हें तोड़कर बाजार

में भेजना चाहिए। जब कहीं दूर भेजना हो तो फल के साथ डंठल भी रहने देना चाहिए। दूसरी फसल के लिए बीज का चुनाव खेतों में ही हो जाना चाहिए। जिस लता में अच्छे फल हों उनमें दो-चारको छोड़कर दूसरों को तोड़ डालना चाहिए। जब ये फल पक जायं तो उनके गूदे को पानी में मसल देना चाहिए। ऐसा करने से बीज नीचे बैठ जाते हैं जिनको निकालकर सुखा करके बन्द बर्तन में रख लेना चाहिए। यदि अधिक बीज रखना हो तो चुने हुए फलों के गूदे को एक लकड़ी के नांद में भरकर कुछ घंटों के लिए छोड़ देना चाहिए जिसमें वह सड़ जाय। ऐसा करने से बीज गूदे से छूटकर नीचे बैठ जाते हैं। फिर ऊपर के पदार्थ और पानी को फेंककर बीज निकाल करके धो डालना चाहिए। इन्हें सुखा करके रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—फलों के अंदर का लाल गुदा खाया जाता है और सफेद फाग की तरकारी बन सकती है। तरबूज ठंडा, पाचक और दस्ताअर होता है।

दिलपसंद, टिंडा, टिंडसी Dilpasand

Citrullus Var.fistulosus

इसका फल खरबूजे के फल से बहुत छोटा होता है। वजन करीब एक छटांक से आधे सेर तक होता है। इसकी खेती सिंध की तरफ बहुत होती है। वैसे दिल्ली के आस-पास और उत्तरीय राजस्थान में भी तरकारी के लिए इसकी खेती का प्रचार है। इसकी खेती में खास लाभ यह है कि इसकी सब्जी गर्मी के दिनों में जब अन्य हरी सब्जियों की कमी होती है उन दिनों में मिलती रहती है। छोटे-छोटे फलों पर कुछ रोंए होते हैं, जो जब फल बड़े होते हैं, तो गिर जाते हैं। कच्चे फलों का रंग हरा और पक्के का नारंगी-सा होता है।

टिंडा

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ जमीन साधारण

बुताई और सवासौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से खाद डालना ठीक होता है।

बोना—आषाढ़-श्रावण (जून-जुलाई) और माघ-फाल्गुन (फरवरी-मार्च) में दो-दो फुट के अंतर पर इसके बीज बोना चाहिए। प्रत्येक गढ़े में दो-दो बीज बोना चाहिए ताकि निकालने पर सबल को रखकर निर्बल पौधा उखाड़ दिया जाय। ऐसा नहीं करने से यदि बीज नहीं निकले तो जगह खाली रह जाती है। प्रति एकड़ करीब दो सेर बीज की आवश्यकता होती है। सिंध और गुजरात में इसे गर्मी में बोते हैं।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से डेढ़-दो महीने में कच्चे और तीन चार महीने में पके हुए फल आ जाते हैं।

उपयोग और गुण—कच्चे फलों की तरकारी बनाई जाती है जो स्वादिष्ट होती है। विशेषतः चने की दाल के साथ ज्यादा बनाते हैं। पके हुए फल वैसे ही खाए जाते हैं। टिंडे रुचिकारक, दस्तावर, शीतल, अधिक पेशाब लानेवाले, पित्तनाशक और कफनाशक होते हैं। पथरी रोग में इनका सेवन अच्छा माना गया है।

: १६ :

दलहन वर्ग की साग-भाजी

Leguminous Vegetables

दलहन की तरकारियां दो प्रकार की होती हैं—एक वे जिनकी फलियां और बीज काम में लाए जाते हैं और दूसरी वे जिनके बीज ही काम में आते हैं। प्रथम जाति की तरकारियां उस समय काम में लानी चाहिए जब तीन चौथाई पकी हों। यदि उन्हें पूर्ण पकने दिया जाय तो उनका स्वाद नष्ट हो जाता है। दूसरे वर्ग की करीब-करीब पूर्ण पकी हों।

इन्हें भी पूर्ण नहीं पकने देना चाहिए, क्योंकि विशेष पक जाने से बीज का मिठास चला जाता है।

प्रथम वर्ग में चंवली (बरबटी, बोरा) ग्वार, सेम, बीन आदि की गणना होगी। दूसरे वर्ग में मटर, किराओ, सॉय-बीन, चना आदि को स्थान देना चाहिए।

चंवली, बरबटी, बोरा, Cowpea *Vigna catiang*

यह दो प्रकार की होती है एक बड़े दानेवाली जिसका दाना मूंग-फली के दाने के बराबर होता है और दूसरी छोटे दानेवाली जिसका दाना तूवर के दाने के समान होता है। पहली का दाना सफेद और दूसरी का सफद, पीला या बैंगनी रंग का होता है। इनकी फलियां आठ-नौ इंच लंबी होती हैं, जिनमें कई बीज होते हैं। इसकी एक जाति और होती है (Viqnasinensis) जिसकी फलियां दो-तीन फुट लम्बी होती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट और दुमट जमीन अच्छी होती है। जिस जमीन में पानी का निकास अच्छा हो और यदि मटियार-दुमट भी हो तो उसमें भी यह अच्छी हो जाती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। इसके लिए खाद नहीं दिया जाता। अगर हो सके तो ढाई मन के करीब हड्डी का चूर्ण प्रति एकड़ के हिसाब से जुताई के समय दे देना चाहिए। अधिक अम्लदार मिट्टी में दलहन की फसल पैदा करना पड़े तो उसमें चूना अवश्य डालना चाहिए।

बोना—वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में यह बोई जाती है। पंक्तियां दो-दो फुट की दूरी पर होनी चाहिए। प्रति एकड़ सात-आठ सेर बीज की आवश्यकता होती है। इसे हरे खाद के लिए भी काममें लाते हैं, इसलिए यदि उसके लिए बोई जाय तो बीस सेर के करीब बीज डालना चाहिए और पंक्तियों का अंतर भी घटा देना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें एक-एक फुट की दूरी पर कर देना ठीक होता है। लताओं को सूखी

टहनियों पर चढ़ाने का प्रबंध भी करना चाहिए। मटर की लताओं से इसकी लताएं लंबी होती हैं। इसलिए जो टहनियां गाड़ी जायं, करीब पांच-छः फुट ऊंची होनी चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां दे सकते हैं।

फसल की तैयारी—तरकारी के योग्य भाद्रपद में फलियां तैयार हो जाती हैं। पकी हुई फसल कार्तिक तक काटी जा सकती है। दूसरी फसल के लिए बीज सुखाकर राख या नेफ्थलीन की गोलियों के साथ बंद बर्तन में रखना चाहिए। प्रत्येक दो-ढाई मन बीज में करीब ढाई सेर गंधक का चूर्ण मिलाकर रखा जाय तो भी ठीक होता है।

उपयोग और गुण—हरी फलियों की तरकारी बनाई जाती है। लताएं पशुओं को खिलाई जाती हैं। हरे खाद के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। सूखे बीज की दाल भी बनती है और उन्हें उबालकर तरकारी भी बनाते हैं। पशुओं के दाने के लिए भी चंवली काम में लाई जाती है। इसकी तरकारी हल्की, दस्तवार और रुचिकारक होती है; परन्तु पेट में वायु पैदा करती है।

ग्वार Guar or Cluster beans *Cyamopsis psoraloides*

इसका पौधा कोमल, घने पत्तोंवाला और सीधा होता है। अच्छी फसल चार फुट ऊंची हो जाती है। ग्वार की फलियां डेढ़-दो इंच लंबी होती हैं। एक जाति ऐसी भी है जिसके पौधे आठ-दस फुट ऊंचे होते हैं। ऐसी ग्वार कुछ कम फलती है, परन्तु फलियां बड़ी कोमल और तीन-चार इंच लंबी होती हैं। तरकारी के लिए यही उत्तम होती है। इसे मखनिया ग्वार कहते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह हर प्रकार की जमीन में हो जाती है। इसके लिए खाद की आवश्यकता नहीं होती। जुताई साधारण होनी चाहिए।

बोना—वर्षा ऋतु के प्रारंभ में आषाढ़ (जून) में बोना चाहिए। पंक्तियां एक-एक फुट की दूरी पर रखी जाती हैं। एक एकड़ के लिए सात-आठ सेर बीज होना चाहिए। ताजे की अपेक्षा एक साल का पुराना बीज अच्छा होता है। जो कोमल और बड़ी फलीवाली ग्वार है वह बहुत फलती है। इसलिए उसकी पंक्तियां दो फुट के अंतर पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय घने पौधों की छंटनी करके उन्हें एक-एक फुट की दूरी पर कर देना चाहिए। जब पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं तो इनमें एक प्रकार के जन्तु (Mites) लग जाते हैं जिससे पत्ते मुड़ जाते हैं और काले-काले हो जाते हैं। बढ़ती हुई कोंपल में जब ये लग जाते हैं तो पौधों की बाढ़ रुक जाती है और फल प्राप्त नहीं होते। बहुत ध्यानपूर्वक धूप में रखकर देखने से ये जन्तु पत्तों के नीचे की ओर चलते हुए दिखाई देते हैं। दस-पन्द्रह गुना आकार बढ़ानेवाले लेंस से देखे जायं तो ये साफ दिखाई देंगे। जब इनका आक्रमण दिखलाई दे और पत्ते कुछ मुड़ते हुए दिखें तो व्याधिग्रस्त पत्तों के नीचे की ओर गंधक का महीन चूर्ण लगा देना चाहिए। एक मलमल के कपड़े में बांधकर यह चूर्ण पत्तों पर गिराया जाय तो अच्छी तरह से गिर जाता है और हानिकारक जंतु मर जाते हैं। छिड़कने के पहले पत्तों को जरा गीला कर लेना चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—तरकारी के लिए फलियां मार्गशीर्ष तक तैयार हो जाती हैं। एक एकड़ से लगभग १०० मन फलियां मिल सकती हैं। पकी हुई फसल पौष में काट ली जाती है। दूसरी फसल के लिए बीज खूब सुखाकर बंद बर्तन में गंधक, राख या नेफ्थलीन के साथ रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—हरी फलियों की तरकारी बनाई जाती है। कोमल फलियां सुखाकर रखी जाती हैं जो तलकर जिन्हें और नमक मसाला छिड़ककर काम में लाया जाता है। हरे पौध पशुओं को खिलाए जाते हैं और खाद के लिए भी काम में लाये जाते हैं। सूखे बीज का दाना पशुओं को दिया जाता है। इसकी तरकारी गर्म और दस्तावर होती है।

सेम, बालोर Sem *Dolichos lablab*

इसकी खेती भारतवर्ष के सब प्रांतों में होती है। देहातों में घरों के आस-पास लगाकर छप्पर या मचानों पर लताएं चढ़ा दी जाती हैं। बगीचों में घेरों के आसपास लगा देने से उनपर चढ़ जाती है। बंबई प्रांत में कहीं-कहीं इसके खेत-के-खेत बोये जाते हैं। अन्य प्रांतों में तरकारी की खेतीवाले कृषक इसे बगीचों में स्थान देते हैं। अधिकांश लोग निज के उपयोग के लिए घरों के आस-पास ही लगा देते हैं। सेम कई प्रकार की होती है। कुछ ऐसी होती हैं जिनके बीज चपटे और फलिया चौड़ी होती हैं। कुछ के फल बड़े दानेवाले होते हैं। रंग में कोई सफेद, कोई हरी और कोई बैंगनी रंग की होती है। सफेद और बड़े बीजवाली सेम तरकारी के लिए अच्छी होती है। बम्बई की तरफ सूरती पापड़ी नाम की सेम अच्छी मानी गई है।

सेम

जमीन, जुताई और खाद—यह सब प्रकार की जमीन में हो जाती है; परंतु मटियार-दुमट जमीन ठीक होती है। खाद इसके लिए नहीं दिया जाता परंतु यदि हल्की जमीन में लगाई जाय तो एकसौ मन प्रति एकड़ के लगभग दे देना चाहिए। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए।

बोना—यह आषाढ़से भाद्रपद (जून से अगस्त) तक बोई जाती है। खेत की फसल के लिए नाई यानि नालीवाले हल से बो सकते हैं। पंक्तियां चार-चार फुट की दूरी पर होनी चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब दस सेर बीज की आवश्यकता होती है। जहां धान के बाद लगाई जाती है वहां पचीस-तीस सेर बीज प्रति एकड़ बोते हैं। जब घरों के आस-पास बाड़ों में लगाना हो तो थोड़ी-सी मिट्टी खोदकर दो-दो इंच की गहराई पर बीज बो देना चाहिए। जहां बीज हाथ से बोये जायं वहां बोते समय इतना ध्यान रखना चाहिए कि बीज का मुंह अर्थात् बीज जिस स्थान से

फली से चिपका रहता है वह नीचे की ओर रहे।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों को छांटकर एक-एक फुट की दूरी पर कर देना चाहिए। जब पौधे कुछ बढ़ जायं तो मचान पर चढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिए। खेत में जब बहुत लगाई जाती है तो मचान नहीं बनाए जाते। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसलकी तैयारी—बोने के समय से पांच-छः महीने बाद तरकारी के योग्य फलियां आती हैं और एक-दो महीने तक मिलती रहती हैं। कुछ आगे-पीछे लगाई जाय तो मार्गशीर्ष से फाल्गुन-चैत्र तक फलियां प्राप्त की जा सकती हैं। दूसरी फसल के लिए बीज सुखाकर बन्द बर्तन में चंवली के बीज की भांति रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—हरी फलियों की तरकारी बनाई जाती है। सूखे बीज से तरकारी और दाल बनाते हैं। लता पशुओं को खिलाई जाती है। इसकी तरकारी रूखी, बलदायक और अग्निमन्द करनेवाली होती है।

चारकोनी सेम Charconi sem, Goa bean

Psophocarpus tetragonolobus

यह भी एक प्रकार की सेम होती है जिसकी फलियां साधारण सेम की भांति चपटी या गोल नहीं होतीं बल्कि चार कोनेवाली होती हैं। इसकी खेती सेम की खेती के समान ही होती है।

ब्राड बीन, बकला सेम Broad bean *Vicia Faba*

इसकी दो जातियां होती हैं। एक की फली छः इंच से नौ इंच लंबी और दूसरी की तीन से छः इंच लंबी होती है। पहली की फलियों में चार से छः और दूसरी में प्रायः तीन ही बीज रहते हैं। पौधों की ऊंचाई तीन फुट तक होती है।

जमीन, जुताई और खाद—साधारण जुताई से मटियार-दुमट जमीन

में यह अच्छी होती है। खाद हो सके तो डेढ़सौ मन के लगभग दे सकते हैं। अंतिम जुताई के बाद दो-दो फुट चौड़ी और तीन इंच गहरी तीन-तीन फुट के अंतर पर नालियां बना लेनी चाहिए।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) में पानी देने की नालियों के दोनों ओर नौ-नौ इंच की दूरी पर इसके बीज लगाने चाहिए। एक एकड़ के लिए बीस सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पंक्तियों के बीच की भूमि में नई नालियां बनाकर पानी दिया जाता है। साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—बोने के समय से चार-पांच महीने में फल आना प्रारंभ हो जाते हैं।

उपयोग और गुण—फलों की तरकारी बनाई जाती है, जो रूखी, बलदायक और मंदाग्नि करनेवाली होती है।

फ्रेंच बीन, विलायती सेम French bean

Phaseolus vulgaris

इसकी भी दो जातियां होती हैं। एक छोटी जिसके पौधे अठारह इंच ऊंचे होते हैं और जिनके लिए सहारे का प्रबन्ध नहीं करना पड़ता। दूसरी जाति के पौधे पांच-छः फुट ऊंचे होते हैं। इनके लिए सूखी टहनियां लगानी पड़ती हैं, जिनपर लताएं चढ़ जाती हैं। फ्रेंच बीन के लिए ठंडी छायादार जगह अच्छी होती है। इनकी फलियां चार इंच से छः इंच लंबी होती हैं।

जमीन, जुताई और खाद—मटियार-दुमट जमीन में ये अच्छे होते है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद डेढ़सौ मन के लगभग देना ठीक होता है। अंतिम जुताई के बाद डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर नालियां बना लेनी चाहिएं।

बोना—इसे भाद्रपद-आश्विन (अगस्त-सितंबर) में पारियों पर

बोते हैं। परियां डेढ़-डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए। बीज-से-बीज छः इंच की दूरी पर बोना ठीक होता है। बड़ी जातिवाले को कुछ अधिक दूरी पर बोना चाहिए। प्रति एकड़ १५ सेर बीज की आवश्यकता होगी।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय बड़े पौधेवाले बीज के लिए सहारे का प्रबंध करना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार की जाती है।

फसल की तैयारी—छोटे पौधेवाले के फल ढाई-तीन महीने में और बड़े पौधेवाले के चार-पांच महीने में तैयार हो जाते हैं।

उपयोग और गुण—फलों की तरकारी बनाई जाती है। गुण इसमें भी सेम के गुण-जैसे होते हैं।

स्कारलेट रनर बीन Scarlet runner bean

Phaseolus coccineus

इसकी खेती फ्रेंच बीन की खेती के समान ही होती है। बीज पंक्तियों में एक-एक फुट की दूरी पर बोये जाते हैं। पंक्तियों में पांच-छः फुट का अंतर होना चाहिए। लताओं के सहारे के लिए पंक्तियों के पास सूखी लकड़िया गाड़नी चाहिए।

लाईमा बीन, डबल बीन Lima bean

Phaseolus Lunatus

इसकी जन्मभूमि ब्राजील (दक्षिण अमेरिका) मानी गई है। इसकी लताएं रोएंदार लंबी होती हैं जिन्हें मचान पर चढ़ाना पड़ता है। फलियां पाँच-छः इंच लंबी और एक इंच चौड़ी होती हैं। प्रत्येक फल में कम-से-कम दो और अधिक-से-अधिक चार चपटे बीज रहते हैं। फलियों की नोंक मुड़ी हुई होती है। बीज अधिकांश सफेद, कुछ भूरे और धब्बेदार होते हैं।

जिस भांति फ्रेंच बीन की खेती की जाती है उसी भांति इसकी भी करनी चाहिए।

रहरिया सेम, बकला सेम या दक्षिणी ग्वार

Velvet bean *mucuna*

इसका पौधा एक फुट से डेढ़ फुट ऊंचा होता है जिसपर गोल-गोल करीब एक इंच लम्बी कोमल फलियां लगी रहती हैं। इन फलियों पर छोटे-छोटे रोएं होते हैं जो छूने से मखमल-जैसे मालूम होते हैं। फलियां गहरे हरे रंग की होती हैं जिनके दोनों छोर कुछ काले होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—साधारण जुताई से यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है। खाद देने की आवश्यकता नहीं होती।

बोना—आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) में इसके बीज पंक्तियों में बोये जाते हैं। पंक्तियां अठारह इंच की दूरी पर होनी चाहिए। एक एकड़ के लिए पन्द्रह सेर बीज की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें एक-एक फुट की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार कर सकते हैं।

फसल की तैयारी—माघ-फाल्गुन से चैत्र तक इससे तरकारी मिलती रहती है।

उपयोग—फलियों की तरकारी बनाई जाती है।

उदा सेम Uda sem *Mucuna capitata*

कमच Kamach *Mucuna nivea*

इनकी फलियां करीब छः इंच लम्बी होती हैं जिनपर काले मखमल-जैसा मोम जमा रहता है, जिसे हटा देने से हरी फलियां निकल आती हैं। इन्हें वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में बोना चाहिए। बीज-से-बीज छः इंच और पंक्तियां छः-छः फुट की दूरी पर होनी चाहिए। इनकी लताओं को सहारे की आवश्यकता होती है। बोने के समय से पांच-छः महीने में फसल तैयार हो जाती है। इनकी खेती विशेष नहीं की जाती।

दलहन की वे साग-भाजी जिनके बीज काम में लाये जाते हैं

मटर Peas *Pisum sativum*

मटर दो प्रकार की होती है। एक देशी, दूसरी विलायती। देशी मटर का पौधा तीन-चार फुट ऊंचा होता है और यदि सहारा न पाए तो भूमि पर गिरा रहता है। जब खेत-के-खेत लगाये जाते हैं तो सहारे का प्रबन्ध नहीं किया जाता। इसकी फलियां अधिक-से-अधिक दो इंच लम्बी होती हैं। विलायती मटर के पौधे देशी मटर के पौधों से कुछ लम्बे होते हैं। इनकी कुछ जातियां ऐसी भी होती हैं जिनकी ऊंचाई सिर्फ एक ही फुट की होती है। ऐसी के लिए सहारे की आवश्यकता नहीं होती, परंतु उन जातियों के लिए जो तीन-चार फुट ऊंची होती हैं सहारे का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए। सहारे के लिए किसी भी पेड़ की सूखी टहनियां काम में लाई जा सकती हैं। इसके लिए झाऊ अच्छे होते हैं जो नदी-नालों के किनारे मिल जाते हैं। विलायती मटर की फलियां तीन-चार इंच लंबी होती है। बीज भी बड़े-बड़े होते हैं। सूखे बीज सफेद और हरे रंग के होते हैं जिनपर झुर्रियां पड़ी हुई होती हैं। ये ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो बीज ठीक से न बन पाये हों। देशी की अपेक्षा विलायती मटर मीठी और अधिक स्वादिष्ट होती है। देशी मटर के सूखे बीज सफेद रंग के होते हैं। एक जाति ऐसी भी है जिसके बीज लाल होते हैं। यह ज्यादा स्वादिष्ट नहीं होती। कुछ कड़वी-सी लगती है।

जमीन, जुताई और खाद—देशी मटर के लिए बलुआ को छोड़कर सब जमीन ठीक होती है। विलायती के लिए बलुआ और मटियार दोनों ही छोड़ देनी चाहिए। जल्दी तैयार होने वाली को बलुआ-दुमट और देर से होनेवाली को मटियार-दुमट में बोना चाहिए। देशी के लिए खाद नहीं दिया जाता। विदेशी के लिए प्रति एकड़ सवासौ मन के करीब सड़ा हुआ खाद दे देना चाहिए। इनके लिए सुपरफासफेट या हड्डी का चूर्ण ढाई मन प्रति

एकड़ के हिसाब से दिया जाय तो वह लाभप्रद होता है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। अन्तिम जुताई के पश्चात् विलायती मटर के लिए पानी देने की नालियाँ बना लेनी चाहिए। दो नालियों के बीच का अन्तर मटर की जाति पर निर्भर है। छोटी मटर के लिए ढाई-तीन फुट और बड़ी के लिए चार-पांच फुट का अन्तर ठीक होता है। नालियां दो फुट चौड़ी होनी चाहिए।

बोना—देशी मटर नालीवाले हल से खेतों में एक-एक फुट के अंतर पर बोई जाती है। विलायती मटर को पानी देने की नालियों के बीच की भूमि के दोनों छोर पर लगाना चाहिए। बीज इस तरह गिराना चाहिए कि उनमें दो-तीन इंच से अधिक अन्तर न हो। दो पंक्तियों के बीच का अन्तर दो फुट से चार फुट तक मटर की बाढ़ के अनुसार होना चाहिए। दोनों ही आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) में बोई जाती हैं। पहाड़ों पर गर्मी में बोते हैं। एक एकड़ के लिए देशी मटर के बीज करीब बीस सेर और विलायती के जाति-अनुसार पन्द्रह सेर से तीस सेर तक लगते हैं। बीज इस रीति से बोने चाहिए कि भारी मिट्टी में लगभग डेढ़ इंच और हल्की में करीब दो इंच गहरे हों।

निंदाई और सिंचाई—मटर में एक-दो बार निंदाई करनी पड़ती है। विदेशी को आवश्यकतानुसार सींचना चाहिए और पौधों के लिए सहारे का प्रबन्ध करना चाहिए।

फसल की तैयारी—जल्दी आनेवाली फसल पौष से फलियां देना शुरू करती है। देरवाली से फाल्गुन-चैत्र में मिलती रहती हैं। दूसरी फसल के लिए बीज सुखाकर चंवली के बीज की भांति रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—हरी फलियों के बीज की तरकारी बनाई जाती है। कुछ लोग कोंपलों की भी तरकारी बनाते हैं। हरे बीज तरकारियों को सुखाकर रखने की रीति में दी हुई रीति से सुखाकर रखे जायं तो अच्छी तरह से रह जाते हैं। कृत्रिम गर्म हवा में सुखाये जायं तो तापमान ३५ शतांश से अधिक नहीं होने देना चाहिए। तरकारी बनाने

के पहले सुखाई हुई मटर के दाने पांच-छः घंटे तक पानी में फूलने के लिए छोड़ देने चाहिए। ये दाने फूलकर बिल्कुल हरे दानों के समान हो जाते हैं। बीज कच्चे भी खाये जाते हैं। सूखे बीज की दाल बनाई जाती है। मटर की तरकारी रुचिकारक, बलदायक और दस्तावर होती है।

फलीदार फसलों में मटर ऐसी होती है। जिसके हरे बीज बहुत खाये जाते हैं कच्ची। सेवन से खाद्योज ए० बी० सी० की पूर्ति होती है।

किराओ Kirao *Pisum sativum Var. arvense*

इसका पौधा देशी मटर के पौधे-जैसा छोटे पत्तेवाला होता है। फली और बीज भी छोटे होते हैं। मटर के फूल सफेद रंग के लेकिन किराओ के गुलाबी और बैंगनी रंग के होते हैं। सूखे बीज धब्बेदार, हरे और पीले रंग के होते हैं। इसकी खेती देशी मटर की खेती की भांति होनी चाहिए।

चना Gram *Cicer arietinum*

इसके पौधे एक फुट से डेढ़ फुट ऊंचे होते हैं। फल बहुत छोटे और प्रत्यक फल में प्रायः एक-एक बीज रहता है। किसी-किसीमें दो या तीन भी रहते हैं। इसकी कई जातियां होती हैं। किसीके बीज सफेद, किसी-के लाल, किसीके काले और किसी के पीले होते हैं। किसी का दाना अच्छा बड़ा और किसीका किराओ के दाने जितना बड़ा होता है। तरकारी के लिए काबुली चना अच्छा होता है। इसका बीज बड़ा और सफेद रंग का होता है।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ जमीन को छोड़कर साधारण जुताई से यह सब जमीन में हो जाता है। खाद इससे पहली फसल को दिया जाता है।

बोना—यह आश्विन (सितम्बर-अक्तूबर) में बोया जाता है। प्रति-एकड़ बीस सेर से एक मन बीज की आवश्यकता होती है। पंक्तियां नौ-नौ इंच की दूरी पर होनी चाहिए। काबुली चनों के लिए यह अंतर एक फुट का कर देना चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—इसमें निंदाई की आवश्यकता नहीं होती परंतु यदि जंगली पौधे निकल आवें तो उन्हें अवश्य हटा देना चाहिए। काबुली चनों में पौधों की छंटनी करके उन्हें पांच-छः इंच की दूरी पर करा देना चाहिए। पौधों से शाखाएं अधिक फूटें, इसलिए ऊपर के बढ़ते हुए कोंपल एक-दो बार तोड़ दिये जाते हैं। तोड़े हुए कोंपलों की तरकारी बनाई जा सकती है। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो वहां करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—निंदाई के समय जो कोंपलें तोड़ी जाती हैं वे बोने के समय से महीने-डेढ़महीने में तैयार हो जाती हैं। हरे बीज माघ-फाल्गुन में प्राप्त किये जाते हैं। वैशाख तक फसल काट ली जाती है। पैदावार दस-बाहर मन प्रति एकड़ हो जाती है।

उपयोग और गुण—छोटे-छोटे कोंपलों की तरकारी बनाई जाती है। उन्हें सुखाकर भी तरकारी के लिए रख लेते हैं। हरे बीज की तरकारी और मिठाई बनाई जाती है। सूखे बीज से दाल और उसके बेसन से कई प्रकार के पकवान बनते हैं। हरे चने कच्चे भी खाए जाते हैं और भूंजकर भी खाते हैं। सूखे चने बालू में भूंजकर या पानीमें भिगोकर या उबालकर खाए जाते हैं। सर्दी के दिनों में चने के पौधों के पत्तों पर एक प्रकार का अम्ल होता है, जो प्रातःकालमें ओस-बिन्दु की भांति निकला हुआ दिखलाई पड़ता है। यह औषधि के काम में लाया जाता है। पेट के दर्द में इसका सेवन तत्काल आराम पहुंचाता है। इसे इकट्ठा करने के लिए एक कपड़ा सुबह के वक्त पौधों पर फिराया जाता है और जब वह भीग जाता है तो उसे निचोड़ लेते हैं। चना दस्तावर, बलदायक और खून को साफ करनेवाला होता है। कफ, पित्त और ज्वर का नाश करता है। लू (ग्रीष्म ऋतु की गर्म हवा) लग जाने पर सूखे कोंपलों के साग का प्रयोग लाभदायक होता है। भूसा पशुओं को खिलाया जाता है।

सॉयबीन Soybean *Glyeine max*

इसकी कई जातियां होती हैं। पौधे चंवली के पौधों से कुछ छोटे

होते हैं। फलियां किराओ की फलियों के समान होती हैं जिनपर छोटे-छोटे रोएं होते हैं। इसकी खेती चीनी और जापान में बहुतायत से होती है जहां पर इसका उपयोग कई पदार्थ बनाने के लिए किया जाता है। इसके बीज सफेद, काले, भूरे, बादामी इत्यादि कई रंग के होते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह साधारण जुताई से सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है। इसे खाद नहीं दिया जाता।

बोना—प्रति एकड़ दस-बारह सेर बीज बोये जाते हैं। बोने का समय वर्षा का प्रारम्भ है। इसकी पंक्तियां डेढ़ या दो फुट की दूरी पर होनी चाहिए। बीज इस अन्दाज से गिराना चाहिए कि दो-तीन इंच की दूरी पर गिरे। यदि खाद के लिए या पशुओं की खिलाने के लिए बोना हो तो पंक्तियों में एक फुट का अंतर ठीक होता है।

निंदाई और जुताई—एक-दो बार निंदाई करनी पड़ती है; फिर तो इसकी लताएं इतनी फैल जाती हैं कि खर-पतवार बढ़ने ही नहीं पाते। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—मार्गशीर्ष और पौष में हरी फलियों से तरकारी के लिए बीज प्राप्त किये जा सकते हैं। माघ में फसल काट ली जाती है। पैदावार पंद्रह-बीस मन प्रति एकड़ हो जाती है।

उपयोग और गुण—हरे दानों की तरकारी बनाई जाती है। पत्तियां पशुओं को खिलाई जाती हैं। बीज की दाल बनती है। इन्हें उबालकर या भूंजकर भी खाते हैं। कहीं-कहीं कहवे (Coffee) के बदले इसका उपयोग किया जाता है। नकली घी और पनीर (Cheese) इत्यादि भी इससे बनाते हैं। रोटी, बिस्कुट आदि खाद्य पदार्थों के बनने में भी इसका उपयोग किया जाता है।

तूवर, अरहर Pigeon pea *Cajanus cajan*

यह भी कई जाति की होती है। कोई सीधी, कोई अधिक फैलनेवाली, किसीमें फलियां शाखाओं पर बिखरी हुई, तो किसीमें गुच्छे-के-गुच्छे पाये

जाते हैं। जाति-अनुसार बीज का रंग काला, भूरा या सफेद होता है। पौधे चार फुट से आठ फुट तक ऊंचे होते हैं। फलियां छोटी, रोएंदार होती हैं जिनमें तीन-चार बीज रहते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह बलुआ को छोड़कर सब जमीन में हो जाती है। जुताई सात-आठ इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इसके लिए भी नहीं दिया जाता परन्तु हो सके तो बीस-पच्चीस सेर स्फुर प्रति एकड़ पहुंचे इतना फासफोरस-पूर्ता खाद दे देना चाहिए। कहीं-कहीं इसकी बाढ़ इतनी अच्छी होती है कि इससे जो पत्ते खेत में झड़ते हैं उनसे भूमि का उर्वरापन गोबर का खाद देने से जितना बढ़ जाता है उतना बढ़ जाता है।

बोना—वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में यह बोई जाती है। प्रति एकड़ आठ-दस सेर बीज की आवश्यकता होती है पंक्तियां दो-दो फुट की दूरी पर होनी चाहिए। जो तूवर जल्दी आनेवाली होती है उसके लिए पंक्तियां एक फुट से डेढ़ फुट की दूरी पर रखना उत्तम होगा।

निंदाई और सिंचाई—आवश्यकतानुसार निंदाई और सिंचाई करनी चाहिए। हर जगह सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। निंदाई के समय पौधों को छांटकर उन्हें जाति-अनुसार एक से दो फुट की दूरी पर कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी—जल्दी तैयार होनेवाली माघ-फाल्गुन में और देर से आनेवाली वैशाख तक तैयार होती है। तरकारी के योग्य हरी फलियां माघ से वैशाख तक मिलती रहती हैं। उपज पंद्रह-बीस मन तक हो जाती है। माघ-फाल्गुन से आनेवाली तूवर से छः-सात मन तूवर मिल जाती है। बीज चंवली के बीज की भांति सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—हरे बीज की तरकारी बनाई जाती है। सूखे बीज की दाल बनाते हैं। इसका भूसा पशुओं के लिए अच्छा माना गया है। सूखी टहनियां और पौधे टोकरियां बनाने और जलाने के काम में लाये जाते हैं। इसकी तरकारी और दाल रूखी और बादी करनेवाली होती है, परन्तु रक्त को साफ करती है।

: १७ :

अन्य साग-भाजी और मसाले

मकई, मक्का Maize *Zea mays*

इसके पौधों की ऊंचाई भूमि की उर्वरा शक्ति के अनुसार पांच फुट से आठ फुट तक हो जाती है। नर-फल पौधों के सिरे पर और भुट्टें पौधों के बीच धड़ पर लगते हैं। एक पौधे पर बहुधा एक, कभी दो और कभी-कभी दो से अधिक भुट्टे भी आ जाते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—यह मटियार मिट्टी को छोड़कर सबमें हो जाती है। जुताई साधारणतः छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इसे बहुत दे देना चाहिए, ताकि इसके बाद वाली फसल को न देना पड़े। दोसौ से ढाईसौ मन प्रति एकड़ तक देना ठीक होता है।

भुट्टा

बोना—खाद और सिंचाई के आधार पर इसे कभी भी बो सकते हैं, परन्तु साधारण तौर पर यह आषाढ़ (जून) में वर्षा के बाद ही बोई जाती है। प्रति एकड़ दस सेर बीज डालना चाहिए। पंक्तियां डेढ़ फुट से दो फुट की दूरी पर रखना ठीक होता है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का प्रबन्ध हो सके तो अच्छा है। यह क्रिया बैल या हाथ के हल द्वारा की जा सकती है। घने पौधों की छंटनी भी इसी समय करनी चाहिए। पौधों में एक फुट से डेढ़ फुट का अंतर ठीक होता है। वर्षा ऋतुवाली फसल को पानी नहीं देना पड़ता, परन्तु दूसरी को देना चाहिए।

फसल की तैयारी—दो-ढाई महीने में फसल तैयार हो जाती है। आषाढ़वाली फसल से भाद्रपद-अश्विन तक भुट्टे मिलते रहते हैं। कुछ आगे-पीछे बोने से कहीं-कहीं बारहों महीनों तक हरे भुट्टे प्राप्त किये जा

सकते हैं। हरे भुट्टों को यदि तोड़कर एक-दो दिन रख दिया जाय तो मिठास कम हो जाती है। उनकी सर्करा का स्टार्च बन जाता है। जहां-तक बने खाने के भुट्टों को सुबह ही तोड़ना चाहिए।

उपयोग और गुण—हरे भुट्टे उबालकर या आग में भूंजकर खाये जाते हैं। हरे भुट्टों के सेवन से खाद्योज 'बी' और 'सी' मिलते हैं। पीली मक्का से 'ए' की पूर्ति भी होती है। हरे दानों की तरकारी बहुत अच्छी बनती है। मक्का के आटे से रोटी बनाई जाती है। कई स्थानों में गरीबों का निर्वाह इसीसे होता है। पौधे पशुओं को खिलाये जाते हैं। मक्का बड़ी बलदायक होती है। परंतु कुछ बादी करती है। भुट्टों की मूंछ का सत अन्य देशों में औषधि के काम में लाया जाता है।

सिंघाड़ा Water-nut *Trapa bispinosa*

यह तालाब या पोखरों में जहां पानी भरा रहता है पैदा किया जाता है। बरसात के प्रारंभ में इसके फल पांव से दबाकर मिट्टी में गाड़ दिये जाते हैं। कुछ दिनों के बाद शाखाएं निकलकर मिट्टी में फैल जाती हैं, जिनमें से नई शाखाएं निकलती हैं। इन नई शाखाओं के पत्ते पानी की सतह पर तैरते रहते हैं। इनमें आश्विन में फूल आते हैं और कार्तिक में फल तैयार हो जाते हैं। मार्गशीर्ष तक सब फल चुन लिये जाते हैं। फलों को तोड़ने के लिए एक लकड़ी के टुकड़े के दोनों ओर दो उल्टे घड़े बांधकर पानी में छोड़ दिये जाते हैं। फल तोड़ने वाला, जैसे घोड़े पर बैठते हैं, उसी प्रकार लकड़ी पर बैठकर पत्तों को चीरता हुआ तालाब में घूमता-फिरता है। एक दूसरा घड़ा अपने साथ रखता है जिसमें फल तोड़कर डालता रहता है। कहीं-कहीं छोटी नौकाएं भी इस काम में लाई जाती हैं।

उपयोग और गुण—हरे फल कच्चे या उबालकर खाए जाते हैं। सूखे सिंघाड़े का आटा फलाहार के काम में लाया जाता है। यह ठण्डा पित्तनाशक और वीर्यवर्धक होता है।

मशरूम, छत्रक, धरती फूल, धरती फोड़

Mushrooms *Agaricus campestris*

यह एक प्रकार का छातानुमा छोटा-सा पौधा होता है, जो बरसात में खाद की ढेरी पर या अन्य सड़ते हुए सजीव पदार्थ पर निकल आता है। भारतवर्ष में पंजाब की तरफ कुछ लोग इसकी तरकारी बड़े चाव से खाते हैं। स्मरण रहे कि सब मशरूम खाने योग्य नहीं होते। कुछ जहरीले होते हैं। इसलिए जब खेती की जाय तो खानेवाले मशरूम की ही खेती करनी चाहिए। जो मशरूम जल्दी टूट जाय, जिसकी टोपी अच्छी बनी हुई हो, जो सफेद हो और जिसकी टोपी के नीचे की लकीरें गुलाबी रंग की हों वह मशरूम अच्छा होता है। जो पकाने पर पीला हो जाय वह जहरीला होता है। तोड़ने पर जो नीला रंग दे उन्हें कभी नहीं खाना चाहिए।

किसी तलघर, गुफा या अंधेरे घर में, जिसमें धूप न लगती हो, इसकी खेती हो सकती है। जिस घर में मशरूम लगाना हो उस घर की फर्श पर कुछ ईंट के टुकड़े बिछाकर उनपर मिट्टी और लीद के तीन-चार तह देकर उनको इतना दबाना चाहिए कि वह जमीन करीब नौ-दस इंच ऊंची हो जाय। अंतिम पर्त मिट्टी का होना चाहिए। फिर पानी देकर एकाध सप्ताह तक उसे सड़ने के बाद मशरूम के टुकड़े 'स्पान'[1] छः-छः इंच दूर और एक इंच गहरे लगा देने चाहिए। फिर पानी देकर छोड़ देने से सात-आठ सप्ताह में मशरूम निकल आते हैं और दो महीने तक तरकारी मिलती रहती है। पहाड़ों पर चैत्र से कार्तिक (मार्च से अक्तूबर) तक और मैदानों में श्रावण से माघ-फाल्गुन (जुलाई से फरवरी) तक लगा सकते हैं।

---

[1] लीद, मिट्टी और गोबर में मिलाकर मशरूम सुखा करके कई दिनों तक रखे जाते हैं उन्हें 'स्पान' कहते हैं। जहां आवश्यकता हो वहां लगाकर पानी दे देने से नए मशरूम निकल आते हैं।

सिंचाई—आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए और विशेष गर्मी की हालत में घर के फर्श पर भी पानी छींटते रहना चाहिए । ४८ से ५५ डिग्री (फेहरनहीट) का तापमान और ७० से ८५ शतांश वातावरण की नमी इसकी खेती के लिए अच्छी मानी गई है ।

उपयोग और गुण—मशरूम की तरकारी बनाई जाती है जो दस्तावर और कफनाशक होती है ।

केला Plantain *Musa sapientum*

इसकी खेती इसके फल के लिए की जाती है, परंतु अन्य भाग भी काम में लाए जाते हैं । इसकी कई जातियां हैं । कुछ ऐसी हैं जिनसे सन निकाला जाता है, कुछके फल पक जाने पर खाए जाते हैं और कुछ ऐसी जातियां भी हैं जिनके कच्चे केले ही तरकारी के काम में लाये जाते हैं । ऐसे केले यदि पकने दिये जायं तो वे स्वादिष्ट नहीं होते । उसी भांति जो केले पक जाने पर खाये जाते हैं उनकी तरकारी बनाई जाय तो वह भी स्वादिष्ट नहीं होती । तरकारीवाले केले खानेवाले केलों से कुछ बड़ होते हैं और गोल न होकर तीन कोनिये होते हैं । इनका छिलका भी कठोर होता है । केलों के थंभ की ऊंचाई भूमि की उर्वरा शक्ति तथा केले की जाति के अनुसार आठ-दस फुट से बीस फुट तक हो जाती है । जब थंभ डेढ़-दो साल के हो जाते हैं तो पत्तों के बीच से एक बड़ा फूल निकलता है, जिसकी पंखुड़ियों में केले की कलिया रहती हैं । ज्यों-ज्यों कलियां बढ़ती जाती हैं फूल की पंखुडियों झड़ती जाती हैं और फूल की डंडी के चारों ओर केले के गुच्छे बढ़ते जाते हैं । एक-एक गुच्छे में दस बारह से पंद्रह-बीस केले रहते हैं और एक-एक थंभ पर जाति-अनुसार चार-पांच गुच्छों से दस-पंद्रह गुच्छे रहते हैं । ये सब मिलकर धड़ कहलाते हैं ।

केला

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ को छोड़कर ये सब जमीन में हो

जाते हैं। जमीन की जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए और जिस स्थान पर रोप लगाए जायं उसे कम-से-कम एक फुट गहरा और उतना ही लंबा-चौड़ा खोदना चाहिए। फिर उस मिट्टी में दस-बारह सेर सड़ा हुआ खाद मिलाकर उस गढ़े को भर देना चाहिए। खाद यदि कम सड़ा हुआ हो तो भी कुछ हानि नहीं है।

बोना—केले की जाति के अनुसार दस फुट से बारह फुट के अन्तर पर उपर्युक्त रीति से तैयार किये हुए गढ़ों में केले के पोंच जो पुराने थंभ के आस-पास निकल आते हैं खोदकर लगाना चाहिए। इन्हें बरसात में लगाना ठीक होता है। प्रति एकड़ प्रथम बार पौने तीन सौ से चार सौ पेड़ लगाये जाते हैं। फिर तो पुराने पेड़ फल प्राप्त कर लेने पर काटकर फेंक दिये जाते हैं और उनकी जगह जो नये पौधे निकलते हैं वे ले लेते हैं।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और जहां आवश्यकता हो वहां सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई के समय जिन थंभों से फल प्राप्त कर लिये गये हों उन्हें काटकर एक गढ़े में डालते रहना चाहिए ताकि उनका खाद बन जाय। हर साल बरसात के प्रारंभ में प्रत्येक स्थान पर आधा सेर सुपरफासफेट या हड्डी का चूर्ण और पाव भर एमोनियम सलफेट और उतना ही पोटाश सलफेट दिया जा सके तो अच्छा होता है। पुराने थंभ के आसपास नये पोंच बहुत-से निकल आते हैं सो उनमें से दो-दो को रख-कर बाकी को निकाल देना चाहिए।

फसल की तैयारी—अच्छी जमीन और तरीदार वातावरण हुआ तो रोपने के समय से एक साल में फल प्राप्त हो जाते हैं नहीं तो डेढ़ साल में तो अवश्य आ जाते हैं। प्रति एकड़ करीब तीन सौ धड़ प्रति वर्ष मिल जाते हैं।

उपयोग और गुण—मांगलिक अवसर पर केले के थंभ से मंडप बनाये जाते हैं। इनसे सन भी प्राप्त किया जाता है। पापड़ बनाने में पानी की जगह यदि इनका रस काम में लाया जाया तो पापड़ अच्छे, हल्के और फैलनेवाले होते हैं। थंभ की राख से कपड़े धोये जायं तो अच्छे साफ हो

जाते हैं। थंभ के बीच में एक इंच से डेढ़ इंच मोटा सफेद भाग रहता है। उसकी भी तरकारी बनाई जाती है। कुछ लोग फूल की तरकारी बनाते हैं जो कृमिनाशक होती है। कुछ जाति के केले के फल भी सिर्फ इसी काम में लाए जाते हैं। केले का चूर्ण भी फलाहार के काम में आता है। केलों को कुछ देर पानी में उबालकर ठंडे पानी में डाल दिया जाय तो उनका छिलका जल्दी छूट जाता है। बाद में पतले-पतले टुकड़े काटकर सुखा सकते हैं और चूर्ण बना सकते हैं। मंदाग्नि (Dyspepsia) में इसके चूर्ण की रोटी से लाभ पहुंचता है। कुछ जातियां ऐसी होती हैं जिनके पके हुए फल वैसे ही खाए जाते हैं। इन्हें दही या दूध और चीनी के साथ मिलाकर भी खाते हैं। केला पाचनशक्ति तीव्र करता है। यह वीर्यवर्धक और बलदायक होता है। थंभ का रस सांप के विष को नष्ट करने के लिए भी काम में लाया जाता है।

पपीता, पपैया, अरण्ड ककड़ी Papaya *Curica papaya*

पपीते के पेड़ पंद्रह-बीस फुट ऊंचे होते हैं। कोई-कोई जाति ऐसी भी होती है जिसके पौधे सात-आठ फुट ऊंचे होते हैं और फल जमीन से चार-पांच फुट की ऊंचाई पर ही आ जाते हैं। पपीते के पेड़ में शाखाएं नहीं होतीं और जो कहीं निकल आवें तो उन्हें तोड़ डालना चाहिए। इसका कच्चा फल हरा और पका हुआ पीला होता है। अच्छी जाति के पपीते में बीज कम होते हैं और वह बहुत मीठा होता है। फलों का आकार नारियल के आकार जैसा होता है। वजन में ये सेर से दो सेर तक हो जाते हैं। लंका द्वीप की तरफ के पपीते बड़े मीठे और स्वादिष्ट होते हैं। ये दस-बारह इंच लम्बे, पांच-छः इंच मोटे और वजन में करीब तीन सेर तक हो जाते हैं।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई छः-सात इंच गहरी होनी चाहिए। जिस स्थान पर पौधे लगाए जायं उसे डेढ़ फुट गहरा और एक फुट लंबा-चौड़ा खोदकर उसकी मिट्टी में

आठ-दस सेर खाद मिला देना चाहिए।

बोना—आषाढ़ (जून) में इसके बीज नर्सरी में बोए जाते हैं। जब पौधे डेढ़-दो फुट ऊंचे हो जायं तो खेत में लगा देना चाहिए। नर्सरी में पौधे एक-एक फुट के अंतर पर और खेत में दस-दस फुट के अंतर पर होने चाहिए। एक एकड़ के लिए यदि दस-दस फुट पर लगाए जायं तो चार सौ पैंतीस पौधों की आवश्यकता होती है।

निंदाई और सिंचाई—साधारण निंदाई और आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए। प्रथम वर्ष में पौधों के बीच की जमीन में कोई फलदार फसल की तरकारी ले लेनी चाहिए।

फसल की तैयारी—यदि जमीन अच्छी हो तो लगाने के समय से एक साल में फल आने प्रारंभ हो जाते हैं। दूसरे और तीसरे साल में फल अच्छे आते हैं। पाँचवें और छठे साल में बहुत कम आते हैं, इसलिए चौथे साल की फसल लेकर पेड़ों को काट देना चाहिए। वैसे तो फल साल भर तक आते रहते हैं परन्तु जाड़े के प्रारम्भ में कुछ कम आते हैं और सरदी के कारण जल्दी पकते भी नहीं परन्तु जो पकते हैं वे अधिक मीठे होते हैं।

उपयोग और गुण—कच्चे फलों की तरकारी बनाई जाती है। इनसे दूध भी निकाला जाता है जो सुखाकर बेचा जाता है। ऐसे दूध का उपयोग औषधि के लिए किया जाता है। इस दूध से दूध बहुत जल्दी जम जाता है। फलों के बीज भी कहीं-कहीं खाए जाते हैं। गूदे से मुरब्बा, अचार आदि भी बनाए जाते हैं। पके फल पाचक, दस्तावर और बल-वर्धक होते हैं। बढ़ी हुई तिल्ली तथा पेट की व्याधियों के लिए इनका सेवन बड़ा अच्छा होता है।

सहजन Drumsticks *Moringa oleifera*

इसका पेड़ एक बार लगा दिया जाय तो कई वर्षों तक फल देता रहता है। इसकी दो जातियां हैं। एक ऐसी जिसमें सालभर तक फल आते रहते हैं। दूसरी में माघ-फाल्गन में फूल और चैत्र-वैशाख में फल

आते हैं। फलियां छोटी अंगुली-जैसी पतली और डेढ़-दो फुट लंबी होती हैं। इसके खेत-के-खेत नहीं लगाए जाते। बगीचों में घरों के आस-पास एक तरफ थोड़े से पेड़ लगा देने चाहिए। जहां लगाना हो वहां दो फुट गढ़ा खोदकर उसकी मिट्टी में आठ-दस सेर खाद मिला देने के पश्चात बरसात में किसी अच्छे पेड़ की शाख लाकर लगा देनी चाहिए। थोड़े ही दिनों में वह जड़ें फेंककर लग जाती हैं। लगाने के समय से दूसरे-तीसरे साल में कुछ फल प्राप्त होते हैं और फिर हर साल आते रहते हैं। जो जाति बारहमासी होती है उसमें सभी ऋतु में थोड़े-बहुत फल आते रहते हैं। दूसरी से चैत्र-वैशाख में मिलते हैं।

उपयोग और गुण—जड़, पत्ते, फल और फूल सबकी तरकारी बनाई जाती है। जड़ पाचक, उत्तेजक, क्षुधावर्धक और दस्तावर होती है। फल वातनाशक होते हैं। बढ़ी हुई तिल्ली और कलेजे की व्याधि में इसके सेवन से लाभ होता है।

इन फलों के सिवाय आम, कटहल, करोंदे, नींबू आदि कई फल हैं, जिनकी चटनियां, अचार आदि बनाये जाते हैं, जिनसे तरकारियां स्वादिष्ट की जाती हैं या जिनकी तरकारियां भी बनाई जाती हैं। ऐसे फलों की खेती फलों की खेतीवाले करते हैं। इस पुस्तक में इनका वर्णन कर विषय को बढ़ाना अनुचित समझकर छोड़ दिया गया है। लेखक की **'फलों की खेती और व्यवसाय'** नाम की पुस्तक में फलों की खेती का पूरा-पूरा वर्णन दिया गया है।

कुछ मसाले

सफेद जीरा Cumin *cuminum cyminum*

इसका पौधा डेढ़-दो फुट ऊंचा होता है और धनिए की भांति फलता है।

जमीन, जुताई और खाद—इसके लिए बलुआ-दुमट और दुमट जमीन अच्छी होती है। जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए। खाद

इससे पहलेवाली फसल को देना ठीक होता है।

बोना—जीरा बहुधा दूसरी फसल के साथ ही लगा दिया जाता है। मेथी, अफीम आदि की क्यारियों की पारियों पर लगा देने से हो जाता है। जब अकेली इसकी फसल ही लेनी हो तो एक-एक फुट की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए। एक एकड़ के लिए छः-सात सेर बीज की आवश्यकता होती है। इसके बोने का समय आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) है।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें आठ-नौ इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—फाल्गुन-चैत्र में फसल तैयार हो जाती है। एक एकड़ से चार-पांच मन जीरा प्राप्त हो जाता है। दूसरी फसल के लिए बीज बन्द बर्तन में रखना चाहिए।

उपयोग और गुण—बीज से तरकारियां और चटनियां सुगंधित की जाती हैं। उनका स्वाद भी अच्छा हो जाता है। पत्तों से भोज्य पदार्थ सजाए जाते हैं। जीरा पाचक, वातनाशक, ज्वरनाशक, और गर्म होता है। भूंजकर दही के साथ खाया जाय तो पेचिश में लाभ पहुंचाता है।

स्याह जीरा Carraway *Carum carvi*

इसके बीज से तरकारियां स्वादिष्ट की जाती हैं। खेती सफेद जीरे की खेती के समान ही होती है। पौधे दो-तीन फुट ऊंचे होते हैं। यह पाचक, गरम और बादी हरनेवाला होता है।

कलौंजी मंगरैला Simla Fennel or black cumin *Nigella sativa*

इसका पौधा एक फुट से डेढ़ फुट ऊंचा होता है।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ-दुमट और दुमट जमीन में साधारण जुताई से यह हो जाती है। खाद इससे पहलेवाली फसल को देना चाहिए।

आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) में इसके बीज क्यारियों में बोना चाहिए। पहाड़ों पर गर्मी में बोये जाते हैं। एक एकड़ के लिए आठ-दस सेर बीज बोने पड़ते हैं। पंक्तियां डेढ़-डेढ़ फुट के अंतर पर होनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—निंदाई के समय पौधों की छंटनी करके उन्हें छः-छः इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—चैत्र-वैशाख में फसल तैयार हो जाती है। प्रति एकड़ सात-आठ मन बीज पैदा हो जाता है।

उपयोग और गुण—तरकारी और नमकीन पकवानों को स्वादिष्ट करने तथा अचार इत्यादि में डाली जाती है। इसका उपयोग औषधि के लिए भी किया जाता है। ऊनी कपड़ों में कलौंजी के बीज रखे जायं तो उनका कीट से बचाव हो जाता है।

सोआ Dill *Peucedenum graveolens*

जमीन, जुताई और खाद—दुमट-जमीन में जिसमें इससे पहली फसल को खाद दिया हो, इसे बोना चाहिए। जुताई पाँच-छः इंच गहरी होनी चाहिए।

बोना—कार्तिक (अक्तूबर) में इसके बीज दस सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बोना चाहिए। पंक्तियां एक-एक फुट की दूरी पर होनी चाहिए। पहाड़ों पर इसे गर्मी में बोते हैं।

निंदाई और सिंचाई—जब पौधे तीन इंच ऊंचे हो जायं तो उनकी छंटनी करके उन्हें नौ-नौ इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

फसल की तैयारी—चैत्र तक फसल तैयार हो जाती है। पैदावार प्रति एकड़ आठ-दस मन तक हो जाती है।

उपयोग और गुण—पत्तियां शोरबे और दूसरी तरकारियों में डाली जाती हैं। बीज से तेल निकाला जाता है जो औषधि के लिए काम में

लाया जाता है। पेट के दर्द में बीज का उपयोग भी लाभदायक होता है। तरकारियों में भी बीज डाले जाते हैं। पत्तियों से भोज्य पदार्थ सजाए जाते हैं।

अजवायन Ajwan, Omum *Carum copticum*

इसका पौधा जीरे के पौधे-जैसा डेढ़-दो फुट ऊंचा होता है।

जमीन, जुताई और खाद—बलुआ और मटियार को छोड़कर सब जमीन में अच्छा हो जाता है। जुताई साधारण पांच इंच गहरी होनी चाहिए। खाद इससे पहलेवाली फसल को देना ठीक होता है।

बोना—कार्तिक (अक्तूबर) में इसके बीज छींटकर या पंक्तियों में पांच-छः सेर प्रति एकड़ के हिसाब के बोए जाते हैं। पंक्तियां एक-एक फुट के अन्तर पर रखनी चाहिए।

निंदाई और सिंचाई—जब पौधे दो-तीन इंच के हो जायं तो उनकी छंटनी करके उन्हें छः-छः इंच की दूरी पर कर देना चाहिए। सिंचाई की जहां आवश्यकता हो करनी चाहिए।

फसल की तैयारी—फाल्गुन तक फसल तैयार हो जाती है। प्रति एकड़ तीन-चार मन बीज प्राप्त हो जाते हैं।

उपयोग और गुण—नमकीन पदार्थों को स्वादिष्ट करने के लिए बीज का उपयोग किया जाता है। इनसे तेल भी निकाला जाता है। इसके सत (Thymol) का उपयोग औषधि के लिए किया जाता है। पेट के दर्द में अजवायन के बीज खाए जायं तो दर्द छूट जाता है। अजवायन पाचक, दस्तावर और वातनाशक होता है। कफ, शूल आदि रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

लौंग Cloves *Eugenia Syzygium* (*aromatica*)

इसका पेड़ तीस-चालीस फुट ऊंचा होता है। खेती दक्षिणी भारत और लंका द्वीप में होती है। सब जगह नहीं हो सकती। इसके लिए बलुआ ढालू जमीन अच्छी मानी गई है। इसे पैदा करने के लिए इसके बीज बोये

जाते हैं, जो पांच-छः सप्ताह में अंकुर फेंकते हैं। जब पौधे एक-एक फुट ऊंचे हो जाते हैं तो उन्हें पंद्रह-बीस फुट की दूरी पर लगा देते हैं। सात-आठ वर्ष में पेड़ फसल देने योग्य होते हैं और जब करीब बीस वर्ष के होते हैं तो अच्छी फसल देते हैं और पचास-साठ साल तक फसल मिलती रहती है। एक-एक पेड़ से प्रति वर्ष चार-पांच सेर लौंग प्राप्त किये जाते हैं। माघ-फाल्गुन में फलों की बिना खिली कलियां डंठल-सहित तोड़ ली जाती हैं। जब यह कलियां सूख जाती हैं तो लौंग बन जाती हैं।

उपयोग और गुण—लौंग का उपयोग मसाले और औषधि दोनों के लिए किया जाता है।। ये पाचक और अग्निवर्धक होते हैं। इनसे नेत्रों को लाभ पहुंचता है और रक्त की शुद्धि होती है। सिर-दर्द, दांत के दर्द और गठिया-बाई में इसके तेल से लाभ होता है।

काली मिर्च Pepper *Piper nigrum*

इसकी लता बहुवार्षिक होती है। पत्ते पान के पत्ते के आकार के होते हैं और फल पतली-पतली लताओं पर पचीस-तीस की संख्या में लगते हैं। जब फल पककर लाल रंग के होने लगते हैं। तब तोड़कर सुखा लिये जाते हैं। सूखने पर ये काले रंग के हो जाते हैं। काली मिर्च को सफेद मिर्च बनाने के लिए सात-आठ दिन तक पानी में भिगोकर रखते हैं और फिर मसलकर छिलका निकाल देते हैं। फलों को छिलका-रहित करने के लिए कलों का भी उपयोग किया जाता है।

इसकी खेती दक्षिण भारत में मलाबार और कोचीन तथा लंका, जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में होती है। बोने के लिए बरसात के प्रारम्भ में लताओं के टुकड़े सात-आठ फुट के अन्तर पर लगा दिये जाते हैं और लताएं टट्टियों पर चढ़ा दी जाती हैं। बहुधा कटहल, आम, काजू आदि वृक्षों के नीचे इसे लगा देते हैं और लता उनपर चढ़ जाती है। यह भी फलती रहती है और वे वृक्ष भी फलते रहते हैं। वैसे यह पचीस-तीस फुट ऊंची चढ़ जाती है किन्तु फल तोड़ने में कठिनाई न हो इसलिए इतनी

ऊंची नहीं चढ़ने देते। दस-बारह फुट की ऊंचाई तक चढ़ने दी जाती है। लगाने के बाद तीसरे साल से कुछ फल प्राप्त किये जाते हैं, परन्तु अच्छी फसल छठे साल से आती है और पचीस-तीस साल तक आती रहती है। ज्योंही कुछ फल पकने लगते हैं, उन्हें तोड़कर सुखा देते हैं जिससे झुर्रियां पड़ जाती हैं। इसे काली मिर्च कहते हैं। फलों को भिगोकर जब छिलका छुड़ा दिया जाता है तो सफेद मिर्च बन जाती है। प्रति वर्ष चैत्र से ज्येष्ठ तक फल तोड़े जाते हैं।

उपयोग और गुण—इनसे तरकारियां स्वादिष्ट की जाती हैं। पापड़ अचार आदि में भी इसे डालते हैं। यह तीक्ष्ण, पाचक, क्षुधावर्धक और कृमिनाशक होती है। ठंडी प्रकृतिवालों को इसका सेवन करते रहना चाहिए।

दालचीनी Cinnamon *Cinnamonum zeylanicum*

यह भी मलाबार और लंका द्वीप में होती है। इसे बीज और कलम दोनों से पैदा करते हैं। इसके पेड़ तीस-चालीस फुट से पचास-साठ फुट ऊंचे हो जाते हैं। लगाने के बाद तीसरे-चौथे साल से फसल ली जाती है। इसे लगाने के लिए दस-दस फुट की दूरी पर पतले-पतले पेड़ के गुच्छे लगाये जाते हैं। जिनमें से दो-दो साल की आयुवाले पेड़ काटते रहते हैं। इन काटे हुए पेड़ों पर डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर छाल की गहराई तक कटाव पर दिये जाते हैं और फिर लम्बे चीरे देकर छाल छुड़ा ली जाती है। छुड़ाई हुई छाल कुछ दिनों तक ढेरों में दबाकर रखते हैं और फिर साफ करके सुखाकर बड़े-बड़े टुकड़े बेच दिये जाते हैं। छोटे-छोटे न बिकने वाले टुकड़ों से तेल प्राप्त किया जाता है। एक मन टुकड़ों से करीब तीन छटांक तेल निकलता है जो औषधि के लिए काम में लाया जाता है।

उपयोग और गुण—तरकारियों को स्वादिष्ट करने तथा औषधि के लिए इसका उपयोग किया जाता है। दालचीनी तीक्ष्ण और गर्म होती है। वायुजनित रोगों का दमन करती है। सिर-दर्द में इसके तेल के लेप से लाभ पहुंचता है।

तेजपात Tejpat *Tamala obtusifolia*

तेजपात के पेड़ आसाम और पूर्वीय हिमालय के अधिक वर्षावाले स्थानों में होते हैं। ये दालचीनी की जाति के पेड़ हैं। इनकी छाल भी दालचीनी-जैसी कुछ हद तक काम में लाई जा सकती है। परन्तु अधिकतर पत्ते ही मसाले के काम में लाये जाते हैं जो सुगंधित और पाचक होते हैं। ये सुपारी तथा कटहल के पेड़ों के बगीचों में भी पाये जाते हैं। वैसे पेड़ों के बीज गिरने से जो नये पौध निकल आते हैं और जब वे लगभग एक फुट की ऊंचाई के हो जाते हैं तो उन्हें आठ-दस फुट की दूरी पर लगा देते हैं। जब बीज से पौधे तैयार करते हैं तो बीज बरसात के प्रारंभ में नर्सरी में गिराये जाते हैं, जहां से चार-पांच साल बाद खेतों में लगा देते हैं। पौधे लगाने के समय पांच-छः साल में पेड़ तैयार हो जाते हैं जिनसे कार्तिक से फाल्गुन तक पत्ते तोड़ते रहते हैं। जैसे लीची के फल, पत्ते और छोटी-छोटी टहनियोंसहित तोड़े जाते हैं, उसी भांति इसके पत्ते छोटी-छोटी टहनियोंसहित तोड़े जाते हैं, जिससे पेड़ों की काटछांट हो जाती है। पत्तों को चार-पांच दिन तक सुखाकर उनके छोटे-छोट बंडल बना देते हैं। जो पत्ते टूट जाते हैं उन्हें वैसे ही बांस की टोकरियों में भर-कर उनका चालान कर देते हैं। एक पेड़ से लगभग पंद्रह-सेर पत्ते प्रति-वर्ष मिल जाते हैं। पेड़ की आयु पचास से एक सौ वर्ष की मानी गई है।

उपयोग और गुण—पत्तों का चूर्ण गर्म मसालों में डाला जाता है जिससे तरकारियां स्वादिष्ट होती हैं। तेजपात उत्तेजक, पाचक, अधिक पेशाब लानेवाला तथा ज्वरनाशक माना गया है।

छोटी इलायची Cardamoms *Elettaria cardamomum*

इसकी खेती दक्षिण भारत में मलाबार, मैसूर और लंका द्वीप में होती है। पौधे दो-तीन फुट ऊंचे हल्दी के पौधे-जैसे होते हैं। ये तीन हजार से चार-पांच हजार फुट की ऊंचाई वाले स्थानों में अच्छी होती है। इसकी खेती में धूप और जोर की हवा के बचाव का प्रबन्ध होना चाहिए।

इसलिए पहाड़ों पर जंगलों में कुछ जमीन साफ करके इसे लगा देते हैं। वहांपर दरख्तों से छाया मिलती है और उन्हींसे हवा की रुकावट होती है। मैसूर में कहीं-कहीं इसे पनवाड़ियों में या खेतों में भी लगा देते हैं। इसे बीज से भी पैदा कर सकते हैं। परन्तु बहुधा पौधों की गांठें (Rhizomes) ही लगाई जाती हैं। प्रत्येक स्थान पर तीन-चार गांठें लगाते हैं। एक स्थान से दूसरा स्थान पांच-छः फुट की दूरी पर रखा जाता है। इलायची के पौधे तीसरे साल से फलना प्रारम्भ होते हैं परंतु अच्छी फसल छठे साल से प्राप्त होती है। प्रति एकड़ लगभग मन डेढ़-मन इलायची हो जाती है। फल साल भर आते रहते हैं जो पंद्रह-बीस दिन के अन्तर पर तोड़ लिये जाते हैं। अच्छी फसल गर्मी में प्राप्त होती है। पौधों से फल कैंची से पृथक् किये जाते हैं। जब फल तीन-चौथाई तैयार हो जाते हैं तब काट लिये जाते हैं। पूर्ण नहीं पकने दिये जाते क्योंकि पूर्ण पकने पर ये फट जाते हैं और बीज बिखर जाते हैं। फल काट लेने के पश्चात् धोकर सुखा करके बेच दिये जाते हैं। जब इनका आवरण सफेद करना होता है तो गंधक की धूनी दी जाती है। ढाइ मन इलायची के लिए एक सेर गंधक की आवश्यकता होती है।

उपयोग और गुण—मिष्ठान्न सुगंधित करने, मुखशुद्धि और औषधि के लिए इसका उपयोग किया जाता है। इससे कफ और पित्त के विकारों का दमन होता है और पाचन-शक्ति तीव्र होती है।

बड़ी इलायची Big cardamoms *Amoum subulatum*

इसकी जन्मभूमि नेपाल मानी गई है। उत्तर प्रदेश के तराई के भागों में भी यह पाई जाती है। इसके फल भूरे रंग के इलायची-जैसे तिकोनिये लेकिन आकार में इलायची से दुगने-तिगने बड़े होते हैं। बीज भी अधिक होते हैं। इलायची से सस्ते बिकने के कारण बहुत-सी जगह इलायची का काम इससे लिया जाता है। गर्म मसाले में भी इनके बीज डाले जाते हैं। इसके फल गर्मी में तोड़े जाते हैं।

निम्नलिखित वनस्पतियों की खेती अन्य देशों में की जाती है। भारतवर्ष में इनका आदर नहीं हुआ है। कहीं-कहीं बगीचों में इन्हें स्थान मिल जाता है। चूंकि इनकी खेती के अधिक प्रचार की संभावना नहीं है, इसलिए यहां पर संक्षिप्त वर्णन ही दिया जाता है। यदि किसीकी इच्छा हो तो थोड़ा-सा स्थान उन्हें बगीचों में एक ओर दे सकते हैं।

सिसरी Sage *Salvia officinalis*

इसके पत्तों में समोसे आदि बनाये जाते हैं। इसके लिए ऊंची बलुआ जमीन अच्छी होती है। यदि सावधानी से रखी जाय तो यह कई साल तक लगी रहती है। अश्विन-कार्तिक में इसके बीज नर्सरी में डालने चाहिए और जब पौधे दो-तीन इंच ऊंचे हो जायं तो खेतों में लगा देना चाहिए। पौधों में डेढ़ फुट का अंतर रखना ठीक होता है। निंदाई और सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए।

सेलेरिएक Celeriac *Apium graveolens*

इसके पत्तों से तरकारियां स्वादिष्ट की जाती हैं और डंडी से सलाद बनाई जाती है। बीज पहले नर्सरी में गिराकर जब पौधे दो-तीन इंच ऊंचे हो जायं तब खेतों में लगा देने चाहिए। पौधों में एक फुट का अंतर ठीक होता है। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

लेवेंडर Lavender *Lavendula officinalis*

इनकी खेती पत्ते और फूल के लिए विलायत में की जाती है। पत्तों से भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट किये जाते हैं और फूल से इत्र बनाया जाता है। भारतवर्ष में इसे कहीं-कहीं बगीचों में गमलों में स्थान दिया जाता है। यहांपर मैदानों में यह नहीं फूलता। पत्तों का उपयोग किया जा सकता है। एक बार लग जाने से यह कई साल तक लगा रहता है। पोदीना जिस रीति से लगाया जाता है उसी भांति इसे लगाना चाहिए।

सेवारी Savory *Satureia hortensis*

इटली में इसकी सुगंधित पत्तों के लिए खेती की जाती है

जिससे खाद्य पदार्थ और सलाद सुगंधित और स्वादिष्ट किये जाते है। इसके बीज आश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) में लगाने चाहिए। पौधों में दो-दो फुट का अंतर ठीक होता है। पत्ते सुखाकर रखे जा सकते हैं।

उदो Udo *Asalia cordata*

इसकी खेती जापान में पत्तोंकी डंडियों के लिए की जाती है जो दस-पंद्रह इंच लंबी होती हैं। वहां इनकी सलाद बनाई जाती है। डंडियां कभी-कभी सफेद भी की जाती हैं। पौधे पांच-छः फुट ऊंचे होते हैं। बीज सरदी में बो सकते हैं।

ओका Oca *Oxalis crenata*

इसकी खेती पेरु (दक्षिण अमेरिका) में अधिक होती है। तरकारीवाला कंद आलू की भांति जमीन में बैठता है। यह आकार में सुपारी-जैसा होता है। आलू की भांति उबालकर इसे खाते हैं। उसीके अनुसार तरकारी भी बनाई जा सकती है। पत्तों की डंडी से सलाद बनाते हैं। आलू की खेती के समान इसकी खेती की जा सकती है परंतु पंक्तियों में आलू की अपेक्षा कुछ विशेष अंतर होना चाहिए। पौधे-से-पौधा दो-ढाई फुट की दूरी पर होना चाहिए।

इसमें कुछ अम्ल की मात्रा विशेष होती है। इसलिए उसकी शांति के लिए उबालते समय थोड़ा-सा सोडा पानी में डाला जाता है। कुछ दिन तक कंद धूप में रख दिये जायं तो उनके अम्ल में परिवर्तन हो जाता है और वे मीठे हो जाते हैं।

ओका क्वीना Oca quina *Ullucus tuberosus*

इसकी खेती भी पेरु (दक्षिण अमेरिका) में होती है। तरकारीवाला भाग शकरकंद की तरह जमीन में बैठता है। लता जमीन पर फैली रहती है और जगह-जगह जड़ें फेंक देती है। पत्ते के जोड़ की जगह कंद बैठते हैं। एक-एक कंद डेढ़-दो इंच लंबा होता है। इसकी खेती शकरकंद को

खेती के समान करनी चाहिए और उपयोग शकरकंद-जैसा ही करना चाहिए।

सोलेनम कामरसोनी *Solanum commorsoni*

यह एक जाति का आलू होता है। इसकी खेती भारी जमीन में, जिसमें कुछ पानी रुकता हो, भी हो सकती है। पैदावार आलू के बराबर हो जाती है। आलू की खेती की भांति इसकी खेती होनी चाहिए। अभी इसका आगमन भारत वर्ष में नहीं हुआ है, लेकिन चूंकि इसमें पानी सहन करने की शक्ति अधिक है और पैदावार आलू के बराबर हो जाती है। सम्भव है, यह बरसात में मैदानों में लगाया जा सके, जबकि आलू नहीं लगाये जा सकते और यदि इसमें व्याधिरहित होने का गुण हुआ तो और भी अच्छा है। अभी इसके प्रयोग की आवश्यकता है। जबतक यथोचित जांच द्वारा इसके गुण सिद्ध न हो जायं भारत में इसके प्रवेश की विशेष आशा नहीं है।

परिशिष्ट—१

वनस्पति-शास्त्रानुसार साग-भाजी का वर्गीकरण

Natural Orders	नाम—साग-भाजी और मसाले
Amarantaceae	चौलाई, मरसा साग, लाल साग ।
Aroideae	अर्वी, सूरन ।
Chenopodiaceae	ओरेक, चार्ड, चुकंदर पोई, बथुआ, स्पिनेक ।
Compositae	आर्टिचोक ग्लोब, आर्टिचोक जेरुसलम, एंडाईव, कार्डन, कुसुम, डेंडेलियन, लेट्यूस शिकोरी, साल्सीफाई ।
Convolvulaceae	शकरकंद ।
Cruciferae	केल, कोलार्डस, क्रेस, गोभियां, ब्रसेल्स स्प्राउट्स, ब्रोकोली, मूली, मोगरी, राई, रूटेबागा, शलजम, सरसों ।
Cucurbitaceae	आल,उच्चे, ककड़ी, कद्दू, करेला, कुंदरू, खरबूजा, खीरा, घिया, तोरई, चथैल, चिंचड़ा, तरबूज, तोरई, दिलपसंद, परवल, फूट, स्क्वाश ।
Dioscoreaceae	गराडू, रतालू, सुथनी ।
Euphorbiaceae	टेपियोका ।
Gramineae	मक्का ।
Labiatae	पुदीना ।
Lauraceae	दालचीनी, तेजपात ।
Leguminosae	खिसारी, ग्वार, चना, चंवली, बीन, तूवर, मटर, मेथी, सायबीन, सेम ।

Natural Orders	नाम—साग-भाजी और मसाले
Liliaceae	एस्पेरेगस, प्याज़, लहसुन, लीक, शाईव, शेलाट, शीबाल ।
Malvaceae	भिंडी, पटुवा ।
Moringae	सहजन ।
Musaceae	केला ।
Myrtaceae	लौंग ।
Onagraceae	सिंघाड़ा ।
Papaveraceae	खसखस ।
Passifloreae	पपैया ।
Piperaceae	काली मिर्च ।
Polygonaceae	खट्टा पालक, रूबर्ब ।
Portulacaceae	कुलफा साग (लूणिया) ।
Ranunculaceae	कलौंजी ।
Scitamineae	अदरक, अरारुट, इलायची, हल्दी ।
Solanaceae	आलू, टमाटर, मिर्च, बैंगन ।
Umbelliferae	अजवान, गाजर, जीरा, धनिया, पार्स्निप, पार्सली, शेरविल, काला जीरा, सेलेरी, सोआ, सौंफ, स्किरेट ।

परिशिष्ट

भिन्न-भिन्न राज्यों में कुछ मुख्य-मुख्य

चै०—चैत्र ज्ये०—ज्येष्ठ श्रा०—श्रावण

वै०—वैशाख आषा०—आषाढ़ भा०—भाद्रपद

नाम साग-भाजी और पृष्ठ	बंगाल	बिहार	उत्तर प्रदेश
अदरक (१३४)	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.
अर्वी (१२४)	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	वै. से आषा.
आर्टिचोक (१७८)	ज्ये—आषा.	ज्ये.—आषा.	वै. से आषा.
आल (लौकी)	श्रा.—भा.	ज्ये.—आषा.	चै. से आषा.
(१९४)	मा.—फा.	मा.—फा.	
आलू (११३)	आश्वि.—का.	आश्वि.— का.	आश्वि.—का.
ककड़ी खीरा	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.
(२०१)	मा.—फा.	म.—फा.	आश्वि.—का.
ककड़ी रेती			
(२०३)	फा.—चै.	फा.—चै.	फा.—चै.
कद्दू (१९१)	फा.—चै.	ज्ये. से श्रा.	आ.—श्रा.
	श्रा.—भा.	मा.—फा.	मा.—फा.
कद्दू भूरा (१९३)	ज्ये.—आषा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.
करेला (१९८)	मा.—फा.	चै. से श्रा.	चै. से श्रा.
किराओ (२२०)	आश्वि.—का.	आश्वि.—फा.	आश्वि.—का.
खरबूजा (२०४)	फा.—चै.	का.—चै.	फा.—च.
गराडू, रतालू			
(१२५)	चै. से ज्ये.	चै. से आषा.	चै. से आषा.
गाजर (१०३)	आश्वि.—का.	भा. से का.	भा. से का.
गोभी गांठ (१३८)	भा. से आश्वि.	भा. से मार्ग	भा. से का.

—२

साग-भाजी बोने के समय का नक्शा

आश्वि०—आश्विन मार्ग०—मार्गशीर्ष मा०—माघ

का०—कार्तिक पौ०—पौष फा०—फाल्गुन

पंजाब	मध्यभारत और गुजरात	दक्षिण बम्बई और मद्रास	पहाड़ों पर
ज्ये.—आषा.	आषा.	आषा.—श्रा.	फा.—चै.
ज्ये.—आषा	आषा.	आषा.—श्रा.	फा.—चै.
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	श्रा.	फा.—चै.
ज्ये.—आषा.	आषा.—श्रा.	मा.—फा.	फा.—चै.
आश्वि.—का.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	फा. से वै.
मा.—फा.	का.	माघ	
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	ज्ये.—आषा.
		मा.—फा.	
फा.—चै.	फा.—चै.	फा.—चै.	ज्ये. से भा.
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	चै.—वै.	फा. से ज्ये.
मा.—फा.			
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	—
फा. से आषा.	आषा.—श्रा	मा.—फा.	—
आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का	फा. से ज्ये.
फा.—चै.	फा.—चै.	फा.—चै.	ज्ये. से भा.
ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	फा. से आषा.	भा. से ज्ये.
आश्वि.—का.	श्रा. से का.	श्रा. से मार्ग.	फा. से वै.
भा. से का.	भा. से का.	भा. से का.	फा. से ज्ये.

नाम साग-भाजी और पृष्ठ	बंगाल	बिहार	उत्तर प्रदेश
गोभी फूल (१७६)	भा. से आश्वि.	श्रा. से का.	आ. से का.
गोभी बंद (१५६)	भा. से आश्वि.	भा. से का.	भा—का.
ग्वार (२११)	आषाढ़ से	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.
घियातरोई (१९८)	चै. से ज्ये.	ज्ये.—आषा. माघ	वै. से आषा. माघ
चना (२२०)	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.
चंवली (२१०)	—	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.
चिचड़ा (१९५)	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.
चुकंदर (१०९)	आश्वि.—का.	भा. से का.	का. से पौ.
टमाटर (१८२)	भाषा. से का.	श्रा. से का.	श्रा. से का.
तरबूज (२०६)	मा.—फा.	पौ. से फा.	मा.—फा.
तरोई (१९६)	चै. से ज्ये.	ज्ये.—आषा. माघ	ज्ये.—आ.
तूवर (२२२)	आषा.—का.	आषा.—श्रा.	आषा.
धनिया (१७३)	आश्वि.—का.	मार्ग—पौ.	का.—मार्ग.
परवल (१८०)	आश्वि. –का.	आषा.—श्रा. आश्वि.—का	ज्ये.—आषा.
प्याज़ (१३९)	भा. से मार्ग.	मार्ग. से का.	का.—मार्ग.
बैंगन (१८५)	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.
	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.
	मा.—फा.	मा.—फा.	मा.—फा.
ब्रसेल्स स्प्राउटस (१५८)	आश्वि.—का.	भा. से का.	भा. से का.
भिंड़ी (१८७)	ज्ये. से भा.	आषा.—श्रा. माघ	चै. से आषा.
मटर (२१८)	आश्वि.—का.	आश्वि—का.	आश्वि.—का.
मक्का (२२४)	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	वै. से आषा.
मिर्च (१८८)	ज्ये—आषा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा. मा.—फा.

पंजाब	मध्यभारत और गुजरात	दक्षिण बम्बई और मद्रास	पहाड़ों पर
श्रा. से का.	भा.—आश्वि.	भा. से आश्वि.	फा. से वै.
भा. से का.	भा. से आश्वि.	भा. से आश्वि.	फा. से ज्ये.
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	फा.—चै.
ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	—
आश्वि.—का	आश्वि.—का.	आश्वि—का.	फा.—वै.
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	चै.—वै.
ज्ये.—आषा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	—
आश्वि.—का.	आश्वि.	आषा. से पौ.	चै.—वै.
श्रा. से का.	श्रा. से का.	श्रा. से पौ.	वै.—ज्ये.
मा.—फा.	मा.—फा.	माघ.—फा.	—
श्रा. से आश्वि.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	—
ज्ये.—आषा.			
आषा.	आषा.	आषा.	—
आश्वि.—का.	आश्वि. से पौ.	का. से पौ.	फा. से ज्ये.
आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	आषा.—श्रा.	—
आश्वि.—का.	भा. से का.	भा. से पौ.	चै. से ज्ये.
आषा—श्रा.	ज्ये.—आषा.	आषा.—श्रा.	ज्ये. से श्रा.
आश्वि.—का.	माघ.—फा.	माघ.—फा.	
आश्वि.—का.	भा. से का.	भा. से का.	वै. से ज्ये.
ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	आ.—श्रा.	वै. से ज्ये.
आश्वि—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	फा. से ज्ये.
ज्ये.—आषा	ज्ये.—आषा.	आषा.	चै. से भा.
फा.—चै.	भा.—आश्वि.	भा. से मार्ग.	चै. से ज्ये.
भा. से का.	भा. से का.	भा. से पौ.	चै. से ज्ये.
आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	चै. से ज्ये.
आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	चै. से ज्ये.

नाम साग-भाजी और पृष्ठ	बंगाल	बिहार	उत्तर प्रदेश
मूली (१०५)	आषा. से मार्ग.	आषा. से पौ.	आषा. से पौ.
मेथी (१६०)	आश्वि.—का.	आश्वि. से पौ	का. से मा.
मोगरी (१९०)	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.
लेट्यूस (१४७)	आश्वि.—का.	आश्वि. से मार्ग.	आश्वि. से पौ.
शकरकंद (११९)	आश्वि—का.	आश्वि.—का. माघ	आषा.
शलजम (१०८)	भा.—आश्वि.	श्रा.—भा. आश्वि.—का. (विदेशी)	श्रा. से आश्वि.
सरसों (१६३)	आश्वि.—का.	आश्वि.	आश्वि.—का.
साग (१६७)	चै. से आषा.	वै. से भा.	वै. से भा.
सेम (२१३)	आषा. से भा.	आषा.—श्रा.	आषा.
ब्राडबीन (२१४)	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	आश्वि.—का.
फ्रेंचबीन (२१५)	आश्वि.—का	भा. से का.	भा. से का.
सूरन (१२८)	आषा.—श्रा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.
हल्दी (१३२)	ज्ये.—आषा.	आषा.	ज्ये.—आषा.

पंजाब	मध्यभारत और गुजरात	दक्षिण बम्बई और मद्रास	पहाड़ों पर
आश्वि. से पौ.	आश्वि.—का. माघ—फा.	श्रा. से माघ.	चै. से ज्ये. —
आषा.	आषा.	आषा. आश्वि.—का.	
भा.—आश्वि.	भा. से का.	आश्वि.—का.	
			चै. से आषा.
आश्वि.—का.	आश्वि.	आश्वि.	चै. से आश्वि.
वै. से भा.	वै. से भा.	वै. से भा.	ज्ये.—आषा.
ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	वै. से श्रा.
आश्वि.—का.	आश्वि.—का.	का. से पौ.	चै. से आषा.
आश्वि.—का.	भा. से आ.	आश्वि.—का.	वै.—ज्ये.
ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	ज्ये.—आषा.	—
ज्ये.—आषा.	आषा.	आ.—श्रा.	फा.—च.

परिशिष्ट—३

साग-भाजियों में रासायनिक पदार्थों की मात्रा

शरीर के निर्माण, वृद्धि तथा जीर्णोद्धार के निमित्त जिन भोज्य पदार्थों का उपयोग किया जाता है उनमें जल, आमिष जातीय (Protieds), सर्करा जातीय (Carbohydrates), स्नेह जातीय (Fats), तंतुयुक्त (Fibre), कुछ लवण (Salts) और खाद्योज (Vitamins) पाये जाते हैं। इनमें से अंतिम पदार्थ बहुत ही न्यून मात्रा में रहते हैं। तथापि उनका स्वास्थ्य से अत्यंत ही घनिष्ठ संबंध है। ऐसे पदार्थों की आवश्यकता तथा उपयोगिता का विस्तृत वर्णन परिशिष्ट ४ में दिया गया है। यहांपर अन्य पदार्थों का कुछ वर्णन किया जाता है।

जल—यह पानी के रूप में वैसे तो काम में लाया ही जाता है परंतु अन्य खाद्य-सामग्री में भी यह उपस्थित रहता है। जल का महत्त्व सबको विदित ही है। खाद्य-पदार्थ इसीमें घुलते हैं और घुले हुए पदार्थों का शरीर के अवयव तरल पदार्थ के रूप में शोषण करते हैं, रक्त का दौरा बना रहता है और पसीने के द्वारा अनावश्यक पदार्थ बाहर निकलते हैं। शरीर के कोठे को शुद्ध कर अनावश्यक पदार्थों को मल-मूत्र के रूप में बाहर फेंकने में भी जल सहायक होता है।

आमिष जातीय पदार्थ—इन्हें मांसोत्पादक पदार्थ भी कहते हैं। इन्हीसे बच्चों के शरीर के अंग बनते हैं और परिश्रम द्वारा मनुष्यों के पट्ठों तथा अन्य अंगों का जो ह्रास होता है उनका जीर्णोद्धार होता है।

सर्करा जातीय पदार्थ—इनसे शरीर में उष्णता तथा कार्य करने की शक्ति पैदा होती है।

स्नेह जतीय पदार्थ—इनमें गुण तो सर्करा जातीय पदार्थों के ही होते हैं परंतु उनसे सवा दो गुणे अधिक गुणकारी होते हैं।

तंतुयुक्त पदार्थ—इनका शरीर के पोषण से तो कोई संबंध नहीं, परंतु संभवतः ये मल त्यागने में सहायक होते हैं।

लवण— ये अम्ल तथा क्षार या धातुओं के मेल से बने हुए होते हैं। वैसे तो अपनी-अपनी जगह सभी महत्त्व रखते हैं परंतु कइयों की आवश्यकता बहुत न्यून मात्रा में होती है जो भोजन-सामग्री द्वारा प्राप्त हो जाती है। इनमें विशेष महत्त्व फासफोरस, चूना और लोहे के लवणों का होता है। तांबे की अनुपस्थिति में लोहा काम नहीं कर पकता। इसलिए इसे भी महत्त्व दिया जा सकता है परंतु यह बहुत ही न्यून मात्रा में चाहिए। फा. का उपयोग दिमागी कोषों की बनावट में होता है। चूने के साथ मिलकर यह हड्डियां बनाता है। चूने का असर हृदय पर भी पड़ता है। लोहे का संबंध रक्ताणु की बनावट से है।

उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य के भोजन में एक चतुर्थांश भाग साग-भाजी का होना चाहिए। ऐसी सूरत में कौन-सी साग भाजी द्वारा भिन्न-भिन्न पदार्थों की पूर्ति कितनी होती है यह जानने के लिए यहां एक सारणी दी जाती है जिससे पाठक गणना कर सकते हैं।

साग-भाजियों में रासायनिक

ये अंक बाजार में जैसी साग-भाजियां मिलती हैं उनके न्यूनाधिकता हो सकती है, उसी प्रमाणानुसार दूसरे पदार्थों में भी

नाम	जल %	सर्करा जातीय %	आमिष जातीय %	स्नेह जातीय %
अदरक	८०.९	१२.३	२.३	
अर्वी	७३.१	२२.१	३.०	०.९
आल, लौकी	९६.३	२.९	०.२	०.१
आलू	७४.७	२२.९	१.६	०.५
ककड़ी, खीरा	९६.४	२.८	०.४	०.१
कद्दू	९२.६	५.३	१.४	०.१
कद्दू भूरा	९६.०	३.२	०.४	०.१
करेला	९२.४	४.२	१.६	०.२
कुसुम	८९.९	५.१	३.३	०.७
केला कच्चा	८३.२	१४.७	१.४	०.२
खिसारी (पत्ती)	८४.२	७.६	६.१	१.०
गाजर	८६.०	१०.७	०.९	०.१
गोभी गांठ	९२.१	५.९	१.१	०.२
गोभी फूल	८९.४	५.३	३.५	०.४
गोभी बंद	९०.२	६.३	१.८	०.१
ग्वार	८२.५	९.९	३.७	०.२
चने की कोंपल	६०.६	२७.२	८.२	०.५
चिचड़ा	९४.१	४.४	०.५	०.३
चुकन्दर	८३.८	१३.६	१.७	०.१
टमाटर	९४.५	३.९	१.०	०.१
टिंडा	९२.३	५.२	१.७	०-१
तरोई	९५.४	३.७	०.५	०.१
धनिया	८७.९	६.५	३.३	०.६
पालक	९१.७	४.०	१.९	०.९

पदार्थों की मात्रा[1]

विश्लेषण के हैं। साग-भाजियों की आयु-अनुसार जल की मात्रा में कुछ हेर-फेर होगा।

तंतुयुक्त %	खनिज Mineral matter %	खनिज पदार्थों में[2]		
		चूना Ca. %	स्फुर P. %	लोहा Fe. %
२.४	१.२	०.०२	०.०६	०.००२६
—	१.७	०.०४	०.१४	०.००२१
—	०.५	०.०२	०.०१	०.०००७
—	०.६	०.०१	०.०३	०.०००७
—	०.३	०.०१	०.०३	०.००१५
—	०.६	०.०१	०.०३	०.०००७
—	०.३	०.०३	०.०२	०.०००५
०.८	०.८	०.०२	०.०७	०.००२२
—	१.०	०.१८	०.०६	०.००७६
—	०.५	०.०१	०.०३	०.०००६
—	१.१	०.१६	०.१०	०.००७३
१.२	१.१	०.०८	०.०३	०.००१५
—	०.७	०.०२	०.०४	०.०००४
—	१.४	०.०३	०.०६	०.००१३
१.०	०.६	०.०३	०.०५	०.०००८
२.३	१.४	०.१३	०.०५	०.००५८
—	३.५	०.३१	०.२१	०.०२८३
—	०.७	०.०५	०.०२	०.००१३
—	०.८	०.२०	०.०६	०.००१०
—	०.५	०.०१	०.०२	०.०००१
—	०.६	०.०२	०.०३	०.०००९
—	०.३	०.०४	०.०४	०.००१६
—	१.७	०.१४	०.०६	०.०१००
—	१.५	०.०६	०.०१	०.००५०

नाम	जल %	सर्करा जातीय %	आमिष जातीय %	स्नेह जातीय %
पार्स्निप	७२.४	२३.२	१.३	०.३
पार्सली	६८.४	१९.७	५.९	१.०
प्याज़	८६.८	११.६	१.२	०.१
फ्रेंचबीन	९१.४	४.५	१.७	०.१
बथुआ	८७.९	३.७	४.७	०.४
बैंगन	९१.५	६.४	१.३	०.३
ब्रसेल्स-स्प्राउट्स	८४.६	९.२	४.७	०.५
भिंडी	८८.०	७.७	२.२	०.२
मक्का (हरी)	४९.४	१.१	४.३	०.५
मटर	७२.१	१९.८	७.२	०.१
मिर्च हरी	८२.६	६.१	२.९	०.६
मूली	९४.४	४.२	०.७	०.१
मेथी	८१.८	९.८	४.९	०.९
लहसुन	६२.८	२९.०	६.३	०.१
लीक	७८.९	१७.२	१.८	०.१
लेट्यूस	९२.९	३.०	२.१	०.३
शकरकंद	६६.५	३१.०	१.२	०.३
शलजम	९१.१	७.६	०.५	०.२
सरसों	८४.९	७.१	५.१	०.४
साग	८५.८	५.७	४.९	०.५
सूरन	७८.७	१८.४	१.२	०.१
सेम	८२.४	१०.०	४.५	०.१

तंतुयुक्त %	खनिज Mineral matter %	खनिज पदार्थों में चूना Ca. %	स्फुर P. %	लोहा Fe. %
१.७	१.१	०.०५	०.०४	०.०००४
१.८	३.२	०.३९	०.२०	०.०१७९
—	०.४	०.१८	०.०५	८·०००७
१.८	०.५	०.०३	०.०३	०.००१७
—	३.३	०.१५	०.०८	०.००४२
—	०.५	०.०२	०.०६	०.००१३
—	१.०	०.०५	०.०८	०.००२३
१.२	०.७	०.०९	०.०८	०.००१५
—	०.७	०.०१	०.१०	०.०००७
—	०.८	०.०२	०.०८	०.००१५
६.८	१.०	०.०३	०.०८	०.००१२
—	०.६	०.०५	०.०३	०.०० ०४
१.०	१.६	०.४७	०.०५	०.०१६९
०.८	१.०	०.०३	०.३१	०.००१३
१.३	०.७	०.०५	०.०७	०.००२३
०.५	१.२	०.०५	०.०३	०.०१२४
—	१.०	०.०२	०.०५	०.०००८
—	०.६	०.०६	०.०४	०.०००४
१.८	२.५	०.३७	०.११	०.०१२५
—	३.१	०.५०	०.१०	०.०२१४
०.०	०.८	०.०५	०.०२	०.०००६
२.०	१.०	०.०५	०.०६	०.००१६

[१] इस सारणी के अंक Dr. Aykroyd, Director, Nutrition Research Laboratories, Koonoor. Health Bulletin. No. 23, 1941 से लिये गए हैं।

[२] साग-भाजियों में अन्य खनिज पदार्थों की मात्रा, चूना, फा० और लोहे की मात्रा को पूर्ण खनिज पदार्थ की मात्रा में से कम कर देने से मालूम की जा सकती है।

परिशिष्ट—४

साग-भाजी और खाद्योज (विटामिस)

परिशिष्ट नं० ३ में यह बताया गया है कि खाने की वस्तुओं में पोषक पदार्थों के सिवाय कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जिन्हें खाद्योज पदार्थ या 'विटामिस' कहते हैं।

यदि हमारे भोज्य पदार्थों में विटामिस नहीं हों तो शरीर की बाढ़ और बनावट अच्छी नहीं होती। व्याधियों से बचने की शक्ति का ह्रास हो जाता है और सूखा, बेरीबेरी, स्कर्वी, पेलेग्रा इत्यादि कई प्रकार की व्याधियां आक्रमण कर बैठती हैं।

चूंकि हमारा देश शाकाहारियों का देश है और अन्य खाद्यों के सिवाय साग-भाजी द्वारा भी इन पदार्थों की पूर्ति हो सकती है, जहांपर पाठकों की जानकारी के लिए दो-चार शब्द दे दिए जाते हैं, ताकि पाठकगण इस जानकारी से लाभ उठाएं।

अभीतक खोज द्वारा जो खाद्योज पदार्थ निकाले गए हैं वे बहुत-से हैं और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। अभी इन सबका नामकरण भी ठीक से नहीं हुआ है। इन्हें अंग्रेजी वर्णमाला के नाम दे रखे हैं जैसे विटामिन 'ए', विटामिन 'बी' 'सी' आदि।

नित्य के भोजन में आटा, दाल, चावल, दूध, घी व मांस इत्यादि जो पदार्थ काम में लाए जाते हैं उनमें से अधिकांश में एक या अनेक विटामिस रहते हैं। परन्तु यहांपर सिर्फ उन विटामिस का वर्णन दिया जाता है जिनके विषय में काफी छानबीन हो चुकी है और जो साग-भाजी में पाए जाते हैं या जिनका परोक्ष रूप से साग-भाजी से संबंध है—जैसे 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' और 'जी'।

भिन्न-भिन्न विटामिस का वर्णन देने से पूर्व यह बता देना उत्तम

होगा कि साग-भाजियों को को काटकर धोने से कुछ विटामन धुलकर बह जाते हैं इसलिए काटने से पहले ही उन्हें धो डालना चाहिए। अगर बाद में धोने की आवश्यकता पड़े तो अधिक नहीं धोना चाहिए।

पकने से भी विटामिस का कुछ अंश नष्ट हो जाता है, इसलिए आवश्यकता से अधिक नहीं उबालना चाहिए। बहुधा मठा (छाछ) डालकर साग-भाजी खट्टी की जाती है। ऐसा करना अच्छा है, क्योंकि इससे विटामिस कम नष्ट होते हैं।

विटामिन 'ए'

इनका संबंध आंख की रोशनी से बहुत अधिक है। इनके पूर्ण अभाव में रतौंधी आने लगती है और अगर इनकी मात्रा कम रही तो आंख की ज्योति कम हो जाती है। इसके सेवन से केवल रतौंधीवाले ही नहीं, बल्कि जो आंखों की दुर्बलता (Colour Blindness) के कारण भिन्न-भिन्न रंगों को नहीं बता सकते, उनकी भी आंखें ठीक हो जाती हैं।

इसके सिवाय यदि निम्नलिखित अन्य लक्षण पाये जायं तो समझना चाहिए कि हमारे शरीर में विटामिन 'ए' की कमी है और ऐसे पदार्थ भोजन के काम में लाने चाहिएं जिनसे इसकी पूर्ति हो। आंखों का फूलना थोड़े-से परिश्रम से थकावट मालूम होना, सिर में दर्द रहना, जल्दी-जल्दी सर्दी लगना, मन का उत्साहहीन होना, त्वचा में रूखापन, बालों की चमक कम पड़ना और उनका झड़ना, दांतों का खराब होना और जल्दी गिर पड़ना, खांसी आना, बच्चे के फेफड़े तथा अंतड़ियों का बिगड़ना, बच्चों के शरीर की बाढ़ का रुकना, वजन नहीं बढ़ना और फोड़े-फुंसी होना इत्यादि। संक्षेप में यह कहना चाहिए कि इसकी कमी से शरीर में व्याधियों को रोकने की शक्ति कम हो जाती है। ऐसी सूरत में हमें ऐसी साग-भाजी काम में लानी चाहिए जिनसे विटामिन 'ए' की पूर्ति हो।

यथार्थ में देखा जाय तो साग-भाजियों में विटामन 'ए' नहीं होती; परन्तु उनका अग्रगामी 'केरोटीन' (Carotine) नामक एक पदार्थ

होता है जिससे यकृत (कलेजा) विटामिन 'ए' को बना लेता है। निम्न-लिखित सूची से ज्ञात होगा कि केरोटीन किन-किन साग-भाजियों में पाया जाता है।

हरा धनिया, साग, चने की भाजी, खिसारी की भाजी, कुसुम, सेलेरी, मेथी, पार्सला, गाजर, पुदीना, पालक, लेट्यूस, बन्दगोभी, हरी मिर्च, सूरन, ग्वार, टमाटर, फ्रेंचबीन, करेला, ब्रसेल्स स्प्राउट्स, चिचड़ा, लहसुन, मटर, कद्दू, अदरक, भिंडी, तरोइ, हरी मक्का, आलू अर्वी, फूलगोभी, गांठ गोभी, पार्स्निप, टिंडा, प्याज, सिंघाड़ा, शकरकंद तथा बैंगन इत्यादि।

उपर्युक्त सूची 'केरोटीन' की न्यूनाधिक मात्रा के अनुसार दी गई है। सबसे अधिक मात्रा धनिया में और सबसे कम शकरकंद में होती है; लेकिन धनिया अधिक नहीं खाया जा सकता, इसलिए इनमें से जो चीज अधिक मात्रा में खाने लायक हो उनका उपयोग करना चाहिए। इसी क्रमानुसार आगे की सूचियां भी दी गई हैं।

विटामिन 'बी'

इस पदार्थ के अभाव से शरीर निर्बल हो जाता है, स्मरण-शक्ति कम हो जाती है और बहुधा बेरीबेरी नाम का रोग हो जाता है। निम्नलिखित लक्षणों से विटामिन 'बी' की आवश्यकता समझनी चाहिए—

शरीर की कमजोरी, पट्ठों का ढीला पड़ना, अंगों में दर्द होना, पैरों का कमजोर होना, झिनझिनी आना, हाथ-पैरों में जलन होना, पैर तथा मुंह फूलना, पाकाशय में गड़बड़ी होना, भूख कम लगना, कब्जियत रहना, स्वास जल्दी-जल्दी चलना, दिल की धड़कन का बढ़ जाना, स्वभावमें चिड़-चिड़ापन आना आदि।

निम्नलिखित साग-भाजियों का सेवन करने से विटामिन 'बी' की पूर्ति हो सकती है।

मटर, फूलगोभी, पार्स्निप, लेट्यूस, अर्वी, लीक, मेथी, पालक, चुकंदर, गाजर, मूली, कच्चू, बंदगोभी, प्याज, सलजम, ककड़ी, ग्वार-

बीन, गांठगोभी, गराडू, रतालू, करेला, टमाटर, तरोई, भिंडी कद्दू, सूरन, आलू, बैंगन इत्यादि।

विटामिन 'सी'

'सी' के अभाव में शरीर निर्बल हो जाता है और स्कवी नामक व्याधि आक्रमण कर बैठती है। निम्नलिखित लक्षण 'सी' का अभाव दर्शाते हैं।

मसूढ़ों का फूलना, उसमें से खून का बहना तथा कभी-कभी घाव हो जाना, दांतों का जल्दी गिरना, बदबूदार श्वास, जीभ का फूलना व लाल हो जाना, तिल्ली का बढ़ना, भूख कम लगना, कब्जियत रहना, हाथ-पैरों में दर्द होना, मुंह पर छोटी-छोटी फुंसियों का होना, तथा आंखों में दर्द होना, त्वचा का रूखापन, शरीर का निर्बल होना, स्त्रियों में मासिक-स्राव की अधिकता और वजन घटना इत्यादि। जब व्याधि बहुत बढ़ जाती है तो कभी-कभी हृदय की गति बन्द हो जाती है और शरीरांत हो जाता है। विटामि 'सी' के सेवन से उपर्यक्त व्याधियों से बचने के अलावा शरीर में यदि कोई घाव हो तो वे शीघ्र भर जाते हैं।

निम्नलिखित साग-भाजियों के उपयोग से 'सी' विटामिन की पूर्ति हो सकता है।

पार्सली, मिर्च, साग धनिया, बंदगोभी, चुकंदर, करेला, ब्रसेल्स, स्प्राउटस, गांठगोभी, सेलेरी, फूलगोभी, ग्वार, पालक, शलजम, रूबर्ब, टमाटर, शकरकंद, बैंगन, आलू, मूली, भिंडी, पार्स्निप, लेट्यूस, फ्रेंचबीन, लहसुन, सेम, प्याज, लीक, अदरक, ककड़ी, गाजर, कद्दू इत्यादि।

विटामिन 'डी'

हड्डियों की बनावट में इसका बहुत महत्त्व है। हड्डियां चूना और स्फुर के मेल से बनती हैं, जिनका उचित परिणाम में उपयोग 'डी' की उपस्थिति में ही हो सकता है। इसके अभाव से बच्चों को सूखा रोग हो जाता है। हड्डियां ठीक से नहीं बन पातीं और दांत भी पूरे नहीं बनते। हड्डियां पतली और कमजोर हो जाती हैं। पेट बाहर निकल आता है और

पसलियां दब जाती हैं। सिर बड़ा हो जाता है। भौं के बाल लम्बे हो जाते हैं। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। गर्दन और सिर में पसीना बहुत आता है।

साग-भाजियों द्वारा तो इस पदार्थ की पूर्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यह बहुत कम मात्रा में कुछ ही सब्जियों में पाया जाता है। परन्तु यदि सब्जियों द्वारा विटामिन 'ए' की पूर्ति होती रहे तो दूध द्वारा जो विटामिन 'डी' मिलता है उसका पूर्ण उपयोग हो जाता है। मटर, धनिया, पोदीना अंकुरे हुए मूंग तथा चने में 'डी' विटामिन पाया जाता है।

विटामिन 'जी'

इसके अभाव से शरीर की बाढ़ ठीक से नहीं होती। कभी-कभी पैलेग्रा नाम की व्याधि हो जाती है। यह व्याधि अमरीका, इटली और रूस में जहां-जहां मक्का खाने का प्रचार है वहां अधिकतर होती हैं। 'जी' के अभाव से शरीर कमजोर हो जाता है और पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। शलजम, पालक फूलगोभी, शकरकंद, गांठ गोभी, आलू, मूली, टमाटर, प्याज आदि के सेवन से विटामिन 'जी' की पूर्ति होती है।

●

परिशिष्ट—५

मीट्रिक प्रणाली में परिवर्तन की सरल तालिकाएं

टन से मीट्रिक टन		पौंड से किलोग्राम		तोला से ग्राम		सेर से किलोग्राम		मन से क्विन्टल		मील से किलो मीटर	
टन	मी० टन	पौंड	कि० ग्रा०	तोला	ग्राम	सेर	कि० ग्रा०	मन	क्विन्टल	मील	कि० मी०
१	१.०२	१	०.४५	१	११.६६	१	०.९३	१	०.३७	१	१.६१
२	२.०३	२	०.९१	२	२३.३३	२	१.८७	२	०.७५	२	३.२२
३	३.०५	३	१.३६	३	३४.९९	३	२.८०	३	१.१२	३	४.८३
४	४.०६	४	१.८१	४	४६.६६	४	३.७३	४	१.४९	४	६.४४
५	५.०८	५	२.२७	५	५८.३२	५	४.६७	५	१.८७	५	८.०५
६	६.१०	६	२.७२	६	६९.९८	६	५.६०	६	२.२४	६	९.६६
७	७.११	७	३.९८	७	८१.६५	७	६.५३	७	२.६१	७	११.२७
८	८.१३	८	३.६३	८	९३.३१	८	७.४६	८	२.९९	८	१०.८८
९	९.१४	९	४.०८	९	१०४.९७	९	८.४०	९	३.३६	९	१४.४८
१०	१०.१६	१०	४.५४	१०	११६.६४	१०	९.३३	१०	३.७३	१०	१६.०९

गज से मीटर		इंच से मिलीमीटर		एकड़ से हेक्टर		वर्ग गज से वर्ग मीटर		गैलन से लीटर	
गज	मीटर	इंच	मि० मी०	एकड़	हेक्टर	व० ग०	व० मी०	गैलन	लीटर
१	०.९१	१	२५.४०	१	०.४०	१	०.८४	१	४.५५
२	१.८३	२	५०.८०		०.८१	२	१.६७	२	९.१०
३	२.७४	३	७६.२०	३	१.२१	३	२.५१	३	१३.६४
४	३.६६	४	१०१.६०	४	१.६२	४	३.३४	४	१८.१८
५	४.५७	५	१२७.००	५	२.०२	५	४.१८	५	२२.७३
६	५.४९	६	१५२.४०	६	२.४३	६	५.०२	६	२७.२८
७	६.४०	७	१७७.८०	७	२.८३	७	५.८५	७	३१.८२
८	७.३२	८	२०३.२०	८	३.२४	८	६.६९	८	३६.३७
९	८.२३	९	२२८.६०	९	३.६४	९	७.५३	९	४०.९१
१०	९.१४	१०	२५४.००	१०	४.०५	१०	८.३६	१०	४५.४६
		११	२७९.४०						
		१२	३०४.८०						

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्रमुख साहित्य

आत्मकथा (गांधीजी)	४.००	सर्वोदय-संदेश (विनोबा)	१.५०
आत्मकथा (संक्षिप्त) ,,	१.००	गांधीजी को श्रद्धांजलि ,,	०.३७
प्रार्थना-प्रवचन : दो भाग ,,	५.५०	भूदान-यज्ञ ,,	०.२५
गीता-माता ,,	४.००	राजघाट की संनिधि में ,,	०.६२
पन्द्रह अगस्त के बाद	२.००	विचार-पोथी ,,	१.००
धर्मनीति	२.००	सर्वोदय का घोषणा-पत्र ,,	०.२५
द० अफ्रीका का सत्याग्रह	३.५०	उपनिषदों का अध्ययन ,,	१.००
मेरे समकालीन ,,	५.००	कुछ पुरानी चिट्ठियां (नेहरू)	१०.००
आत्म-संयम ,,	३.००	इतिहास के महापुरुष ,,	३.००
गीता-बोध ,,	.५०	मेरी कहानी ,,	१०.००
अनासक्तियोग ,,	०.७५	,, (संक्षिप्त) ,,	२.५०
ग्राम-सेवा ,,	.३७	हिन्दुस्तान की समस्याएं ,,	२.५०
मंगल-प्रभात ,,	.३७	राष्ट्रपिता ,,	२.००
सर्वोदय ,,	.३७	राजनीतिसे दूर ,,	२.००
नीति-धर्म ,,	.३७	विश्व-इतिहास की झलक	प्रेस में
आश्रमवासियों से ,,	.४०	हिन्दुस्तान की कहानी (सं०)	२.५०
हमारी मांग ,,	१.००	गांधीजी की देन (रा० प्र०)	१.५०
एक सत्यवीर की कथा ,,	.२५	आत्मकथा ,,	१२.००
हिन्द-स्वराज्य ,,	.७५	राजाजी की लघुकथाएं (राजाजी)	१.५०
अनीति की राह पर ,,	१.००	महाभारत-कथा ,,	५.००
बापू की सीख ,,	.५०	कुब्जा-सुन्दरी ,,	२.२५
गांधी-शिक्षा : (तीन भाग)	.९२	शिशु-पालन ,,	.५०
आज का विचार : (दो भाग)	.७४	दशरथनन्दन श्रीराम	५.००
ब्रह्मचर्य : (दो भाग)	१.७५	मैं भूल नहीं सकता ,,	२.५०
गांधीजी ने कहा था : ९ भाग	२.७०	कारावास-कहानी	७.५०
शान्ति-यात्रा (विनोबा)	१.५०	गांधी की कहानी	१.५०
विनोबा के विचार : दो भाग	३.००	इंगलैंड में गांधीजी	१.२५
जीवन और शिक्षण ,,	२.००	बा, बापू और भाई	.५०
स्थितप्रज्ञ-दर्शन ,,	१.००	गांधी-विचार-दोहन	१.५०
ईशावास्यवृत्ति ,,	.७५	विनोबा के जंगम विद्यापीठ में	२.५०
ईशावास्योपनिषद् ,,	.१२	सन्त-सुधासार (सं०)	६.००
सर्वोदय-विचार ,,	१.१२	श्रद्धा-कण	.७५
स्वराज्य-शास्त्र (विनोबा)	.५०		

अयोध्याकाण्ड	१.००	रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	१.१२
भागवत-धर्म	७.००	रोटी का सवाल (क्रो०पा०)	३.००
मानवता के झरने	१.५०	नवयुवकों से दो बातें ,,	०.५०
बापू	२.००	पुरुषार्थ	६.००
रूप और स्वरूप	०.७५	काश्मीर पर हमला	२.००
डायरी के पन्ने	१.००	शिष्टाचार	०.५०
ध्रुवोपाख्यान	०.३०	तट के बन्धन	२.५०
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१.००	नवीन यात्रा	२.५०
मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१.५०	तूफान और ज्योति	२.५०
प्रेम में भगवान ,,	२.५०	भारतीय संस्कृति	३.५०
जीवन-साधना ,,	१.२५	आधुनिक भारत	५.००
कलवार की करतूत ,,	.३५	फलों की खेती	३.००
हमारे जमाने की गुलामी,,	१.००	मैं तन्दुरुस्त हूँ या बीमार?	०.५०
बुराई कैसे मिटे ? ,,	१.००	गांधीजी की छत्रछाया में	१.५०
बालकों का विवेक ,,	०.५०	भागवत-कथा	३.५०
हम करें क्या ? ,	४.००	जय अमरनाथ	१.५०
धर्म और सदाचार ,,	१.२५	हमारी लोक-कथाएं	१.५०
अंधेरे में उजाला ,,	१.५०	सस्कृत-साहित्य-सौरभ	
ईसा की सिखावन ,,	१.००	(३६ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	०.४०
कल्पवृक्ष	२.५०	समाज-विकास-माला	
जीवन-साहित्य	२.५०	(१६३ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	०.४०
साहित्य और जीवन	२.००	कृषि-ज्ञान-कोष	४.००
कब्ज	१.००	प्रकाश की बातें	१.५०
हिमालय की गोद में	२.००	ध्वनि की लहरें	१.५०
कहावतों की कहानियां	२.२५	गरमी की कहानी	१.५०
जीवन-संदेश	१.२५	धरती और आकाश	१.५०
अशोक के फूल	३.००	समुद्र के जीव-जंतु	१.५०
कां० का इतिहास (संक्षिप्त)	६.००	रूस में छियालीस दिन	३.००
सप्तदशी	२.००	मैं इनका ऋणी हूं	२.२५
रीढ़ की हड्डी	१.५०	सुभाषित-सप्तशती	२.५०
अमिट रेखाएं	३.५०	शारदीया	१.५०
तामिल-वेद	१.५०	आंसू और मुस्कान	१.००
हमारे गांव की कहानी	२.००	अमृत की बूंदें	१.००
खादी द्वारा ग्राम-विकास	०.७५	प्राकृतिक जीवन की ओर	१.५०
साग-भाजी की खेती	३.५०	कोई शिकायत नहीं	२.५०
पशुओं का इलाज	०.७५	कहिये समय विचारि	१.००